The Inter-Relationship Between The Prehistoric and Protohistoric Cultures of the Vindhyas and the Gangatic Plains

विन्ध्य क्षेत्र एवं गांगेय मैदान की प्रागैतिहासिक एवं आद्यैतिहासिक संस्कृतियों के अन्तर्सम्बंधों का अध्ययन

डी० फिल्० उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध ग्रन्थ
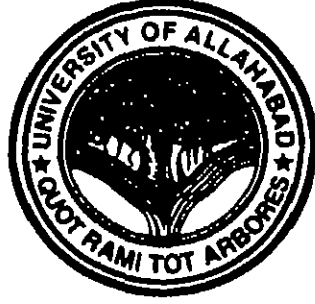
पर्यवेक्षक

प्रो० एस० सी० भट्टाचार्या

प्राचीन इतिहास, संस्कृति एव पुरातत्व विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

शोधकर्त्री

शिवांगी राव

शोध छात्रा
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

2002

प्राक्कथन

विन्ध्य क्षेत्र एवं मध्य गंगा घाटी के पुरास्थलो और पुरासस्कृतियो की जो खोज हुई हैं, उससे इन दोनों क्षेत्रो के अंतर्सम्बन्धो का क्या स्वरूप है, इस उद्देश्य से मैने दोनो क्षेत्रों की संस्कृतियों के अन्तर्सम्बन्धो पर कार्य करने का विचार किया। जिनके छत्र छाया मे मुझे शोध कार्य करना था। आदरणीय प्रो0 एस0 सी0 भट्टाचार्या जी ने अपना पूरा सहयोग और मार्ग दर्शन दिया किन्तु मेरे दुर्भाग्य से वे जल्दी ही 'सेन्टर ऑफ एडवान्स स्टडी' शिमला चले गये, इसलिए उनके मार्ग दर्शन का कुछ अभाव भी रहा। लेकिन उनके स्नेह और सहयोग के लिए मै उनकी चिर ऋणी हूँ, प्रो0 एस0 सी0 भट्टाचार्या जी के आदेश से मुझे अपना शोध कार्य प्रो0 जे0 एन0 पाल जी के मार्ग निर्देशन मे शोध कार्य पूर्ण करने में सफलता मिली, उन्ही के उत्साहवर्द्धन से मैंने अपना शोध कार्य शुरू किया। विन्ध्य क्षेत्र एवं मध्य गंगा घाटी के प्रागैतिहासिक एवं आद्यैतिहासिक संस्कृतियो के अन्तर्सम्बन्धो पर अभी तक ज्यादा कार्य नही हुआ है। इसी कारण विन्ध्य क्षेत्र एवं मध्य गंगा घाटी के प्रागैतिहासिक एवं आद्यैतिहासिक संस्कृतियो के अतर्सम्बन्धों का अध्ययन मेरे शोध का विषय बना।

उपलब्ध पुरातात्विक प्रमाणो के आधार पर विन्ध्य क्षेत्र एवं मध्य गंगा घाटी के प्रागैतिहासिक और आद्यैतिहासिक संस्कृतियो के क्रम क्रमश. पुरा पाषाण काल (केवल विन्ध्य क्षेत्र) मध्य पाषाण काल, नव पाषाण काल एव ताम्र पाषाण काल का विवेचन करने का प्रयास किया गया है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि अभी तक मध्य गंगा घाटी के किसी भी स्थल से पूर्व पाषाण काल के उपकरण नही प्राप्त हुए है। अत इस क्षेत्र में सस्कृतियो का प्रारम्भ मध्य पाषाण काल से प्राप्त होता है।

विन्ध्य क्षेत्र एव मध्य गंगा घाटी के प्रागैतिहासिक एवं आद्यैतिहासिक सस्कृतियो के अंतर्सम्बन्धो पर अध्ययन नामक शोध ग्रन्थ सात अध्यायों में विभाजित है।

अध्याय एक मे विन्ध्य क्षेत्र एव मध्य गंगा मैदान का भौगोलिक, आर्थिक एवं जनांकिकीय पृष्ठभूमि के अन्तर्गत स्थिति एवं विस्तार, भूगर्भिक संरचना, धरातलीय स्वरूप, जल-प्रवाह, कृषि,

मिट्टियाँ, जलवायु, प्राकृतिक वनस्पतियाँ, जीव-जन्तु और जनसंख्या आदि का वर्णन किया गया है।

अध्याय दो मे विन्ध्य क्षेत्र एव मध्य गगा घाटी के सास्कृतिक अनुक्रम जो क्रमशः पुरापाषाण काल से एन0 बी0 पी0 डब्ल्यू0 काल तक का वर्णन करने का प्रयास किया गया है। ध्यान देने योग्य बात है कि अभी तक मध्य गगा घाटी में किसी भी स्थल से पुरापाषाण काल के उपकरण नहीं प्राप्त हुए है। अत· इस क्षेत्र मे संस्कृतियो का प्रारम्भ मध्य पाषाण काल से प्रारम्भ होता है।

अध्याय तीन में विन्ध्य क्षेत्र की प्रथम सस्कृति, पुरापाषाण सस्कृति को उपस्थित करने का प्रयास किया गया है। उत्खननो से प्राप्त प्रमाणो के आधार पर पुरा पाषाणिक सस्कृतियों के विविध पक्षो पर प्रकाश डाला गया है।

अध्याय चार में विन्ध्य क्षेत्र एवं मध्य गंगा घाटी की मध्य पाषाणिक संस्कृति को उपस्थित करने का प्रयास किया गया है। सर्वेक्षित एवं उत्खनित स्थलो से प्राप्त प्रमाणो के आधार पर दोनो क्षेत्रो के मध्य पाषाणिक संस्कृतियों के अंतर्सम्बन्धो पर प्रकाश डाला गया है।

अध्याय पांच मे विन्ध्य क्षेत्र एवं मध्य गंगा घाटी की नव पाषाणिक संस्कृति के विवेचन प्रस्तुत किया गया है, इस अध्याय मे क्रमशः उत्खनित स्थलो का वर्णन, प्राप्त प्रमुख पुरावशेषो एव मानव की स्थायी आवास एवं कृषि परख, अर्थव्यवस्था की विशेषताओ का वर्णन किया गया है। इन्हीं बातो को ध्यान मे रखते हुए दोनो क्षेत्रो के नव पाषाणिक सस्कृतियो के अन्तर्सम्बन्धो पर विचार किया गया है।

अध्याय छः मे विन्ध्य क्षेत्र एव मध्य गंगा घाटी के ताम्र पाषाण काल के उत्खनित पुरास्थलो का विवरण एवं उनके अन्तर्सम्बन्धो पर विचार किया गया है।

अध्याय सात मे इस अध्ययन के निष्कर्षो का संक्षेप मे उपसहार के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

इस शोध कार्य में मुझे शोध निर्देशक प्रो0 एस0 सी0 भट्टाचार्या जी के प्रति, मुझे इस शोधकार्य मे पूर्ण सहयोग प्रदान करने के लिए विशेष रूप से आभारी हूँ।

अपने शोध कार्य के लिए जिनका मुझ पर विशेष अनुराग रहा और मेरे प्रेरक रहे, वो है प्रो0 जे0 एन0 पाल जी, उन्होने पुरातत्व विषय मे शोध शीर्षक का चयन करने में मेरी सहायता की, और

समय-समय पर मेरी दिशा निर्देशित करते रहे। साथ ही उनका मुझ पर विशेष कृपा और उनके असीम स्नेह के लिए मैं उनकी अनुग्रहीत हूँ साथ ही उनके परिवार से भी विशेष प्रोत्साहन मिला।

मै अपने समस्त गुरुजनो इलाहाबाद विश्वविद्यालय प्राचीन इतिहास, सस्कृति एवं पुरातत्व विभाग के विभागाध्यक्ष प्रो0 ओम प्रकाश, पूर्व विभागाध्यक्ष प्रो0 वी0 डी0 मिश्रा एव विभाग के गुरुजनों मे डा0 जयनारायण पाण्डेय, श्री ओम प्रकाश श्रीवास्तव, डा0 पुष्पा तिवारी, डा0 अनामिका राय, डा0 दीप कुमार शुक्ला, डा0 हर्ष कुमार, डा0 प्रकाश सिन्हा से मुझे निरन्तर प्रोत्साहन और सहयोग मिला है, इसके लिए मैं कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ।

मै अपने समस्त गुरुजनो एव शुभचिन्तको के प्रति आभारी हूँ, जिनके सहयोग, स्नेह, प्रेरणा और प्रोत्साहन से प्रस्तुत शोध कार्य सम्पन्न हो सका। मैं उन सभी विद्वानों एवं पुरातत्वविदो की विशेष आभारी हूँ। जिनके उद्धरण प्रस्तुत शोध ग्रन्थ की रचना सहायक एवं उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

मैने अपने शोधकार्य के लिए विभिन्न पुस्तकालयो, इलाहाबाद म्यूजियम लाइब्रेरी, बी0 एच0 यू0 केन्द्रीय पुस्तकालय, लखनऊ पुरातत्व निर्देशालय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, सस्कृति एव पुरातत्व विभाग की लाइब्रेरी, इलाहाबाद की जनरल लाइब्रेरी आदि से सहायता ली है। इसके लिए हम उपरोक्त संस्थानो के अध्यक्षों एव कर्मचारियो के प्रति आभारी हूँ।

मै अपने विभागाध्यक्ष प्रो0 ओम प्रकाश जी के प्रति, मेरे इस शोध कार्य मे पूर्ण सहयोग प्रदान करने के लिए मै विशेष रूप से आभारी हूँ।

अन्त मे अपने परिवारजनों के प्रति आभारी हूँ जिन्होंने असीम धैर्य का परिचय देते हुए मेरे मनोबल मे वृद्धि करते हुए मुझे निरन्तर प्रेरणा और सहयोग प्रदान किया।

साथ में उन सभी लोगों की आभारी हूँ जिन्होंने मुझे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से शोधकार्य मे सहयोग दिया एवं मेरे मनोबल को बढ़ाया। श्री राजेश मिश्र ने कम समय मे मेरी आवश्यकता को ध्यान मे रखते हुए स्वच्छ एवं त्रुटिविहीन कम्प्यूटर टाइपिग किया, इसके लिए मैं उनकी आभारी हूँ।

शिवांगी राव

दिनांक . 9 नवम्बर, 2002 **शिवांगी राव**

विषयानुक्रम

मानचित्रों की सूची

रेखाचित्रों की सूची

छायाचित्रों की सूची

तालिकाओं की सूची

अध्याय एक

विन्ध्य क्षेत्र एवं मध्य गंगा घाटी का भौगोलिक, आर्थिक एवं जनांकिकीय पृष्ठभूमि

- स्थिति एवं विस्तार
- भूगर्भिक संरचना
- जलवायु
- जल प्रवाह
- मिट्टियां
- प्राकृतिक वनस्पतियां
- कृषि
- जीव-जन्तु
- औद्योगिक विकास
- जनसंख्या

विन्ध्य क्षेत्र की भौगोलिक पृष्ठभूमि

स्थिति एवं विस्तार (विन्ध्य क्षेत्र या बुन्देलखण्ड-बघेलखण्ड का पठार) :

यह प्रदेश भारत के दक्षिणी पठार का उत्तरी मध्यवर्ती भाग है जो नर्मदा खड्ड के उत्तर मे गगा की घाटी और यमुना नदी के दक्षिण तथा विन्ध्य पर्वत के उत्तरी छोर पर 23° 52' उत्तरी अक्षांश से 26° 30' उत्तरी अक्षास तथा 78° 8' पूर्वी देशान्तर से 83° 33' पूर्वी देशान्तर तक 88,400 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र मे विस्तृत है। उत्तर की ओर यह गंगा नदी के मैदान मे विलीन हो गया है। यह प्रदेश पश्चिम मे मालवा के पठार, पूर्व में छोटा नागपुर के पठार तथा दक्षिण मे नर्मदा नदी की गहरी दरार घाटी द्वारा घिरा हुआ है। विन्ध्य क्षेत्र का पश्चिमी भाग बुदेलखण्ड तथा पूर्वी भाग बघेलखण्ड के नाम से जाना जाता है। इस प्रदेश का अधिकाश भाग मध्य-प्रदेश मे फैला हुआ है। उत्तर प्रदेश के कुछ दक्षिणी जिले इसके अन्तर्गत सम्मिलित होते है। बुन्देलखण्ड के अन्तर्गत आने वाले जिलों मे उत्तर प्रदेश के झांसी, ललितपुर, जालौन, हमीरपुर, महोबा, बांदा, शाहू-जी महाराज नगर, इलाहाबाद जिले के करछना, मेजा, चन्दौली जिले की चकिया आदि क्षेत्र आते है। इसके अलावा मध्य प्रदेश के प्रमुख जिलों मे भिण्ड, ग्वालियर, दतिया, शिवपुरी, सागर, टीकमगढ़, छतरपुर तथा पन्ना आदि जिले आते है। जबकि बघेलखण्ड के अन्तर्गत सीधी, रीवा, सतना, अम्बिकापुर तथा वर्तमान मे झारखण्ड के शाहाबाद, पालामाऊ आदि जिले आते हैं[1] (मानचित्र संख्या 1)।

भूगर्भिक संरचना :

भूगर्भिक संरचना के आधार पर समस्त प्रदेश को चार भागों मे बाँटा जा सकता है–

1 यहां आर्कियन क्रम से सम्बन्धित रवेदार आग्नेय एवं कायान्तरित चट्टाने दिखायी देती हैं जिन्हें सामान्य शब्दावली मे 'बुन्देलखण्ड नीस' के नाम से जाना जाता है। यहाँ पर विशेष प्रकार के ग्रेनाइट की चट्टाने पायी जाती है। बुन्देलखण्ड के मध्य प्रदेश वाले भाग में विन्ध्यन तथा आर्कियन

---

1 सिह, आर0 एल0 1971, *इण्डिया ए रीजनल जियोग्राफी*
पाल, जे0 एन0 1986, *आर्कियोलॉजी ऑफ सर्दन उत्तर प्रदेश* पेज नं0 2-3
अग्रवाल, के0 एम0 एल और एस0 एल0 गुप्ता, *भारत का भूगोल*। पेज नं0 489
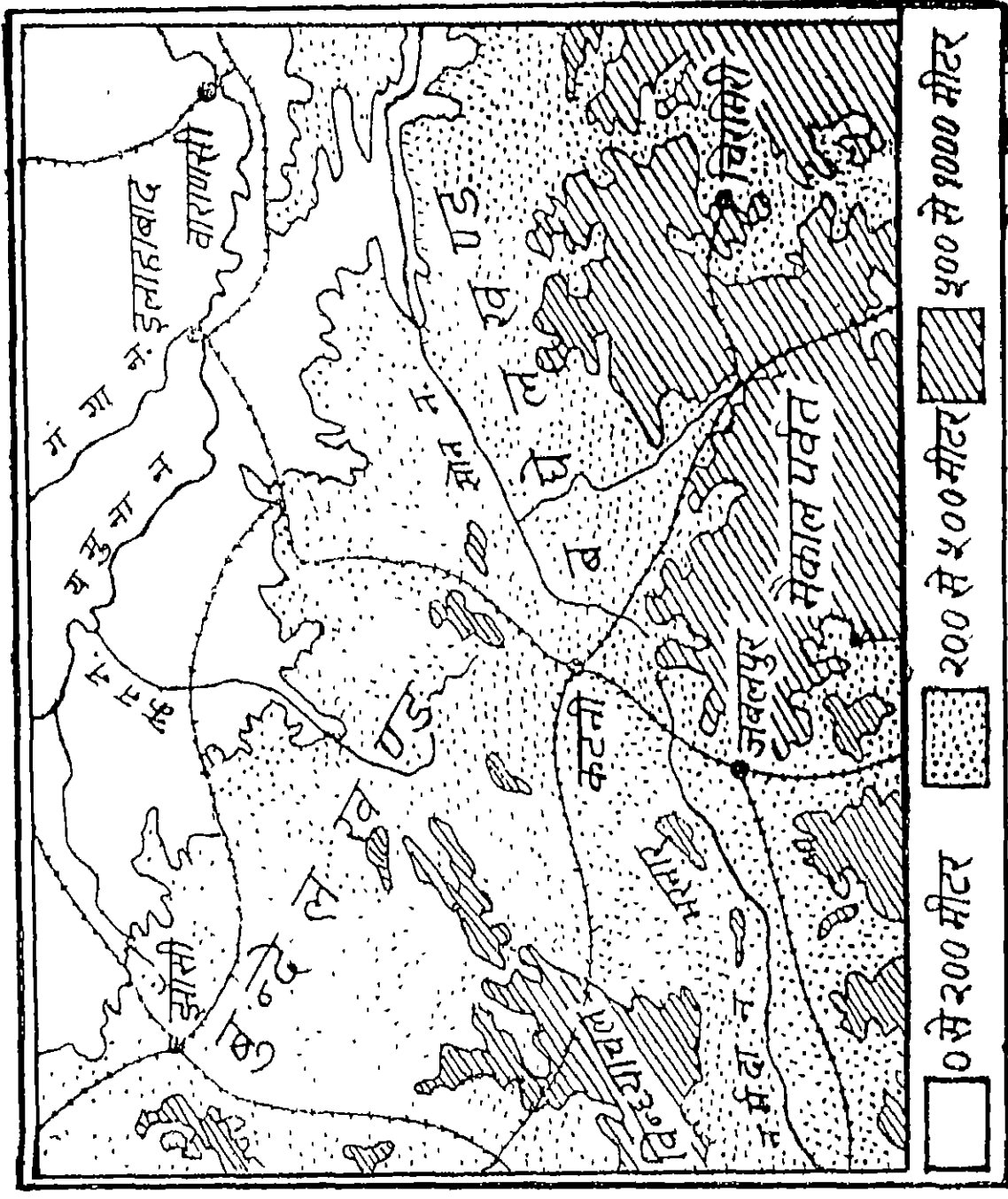
मानचित्र संख्या 1 - उत्तरी विन्ध्य क्षेत्र का विस्तार

के मध्य सक्रमण कालीन चट्टाने भी मिलती है। ग्रेनाइट और नीस चट्टाने मुख्य रूप से झांसी, ललितपुर तथा हमीरपुर का दक्षिणी भाग बादा पठार तथा मिर्जापुर के सिंगरौली आदि जिलो में पायी जाती है।

2. विन्ध्यन क्रम के पूर्व अथवा अरावली के बाद निर्मित होने वाली चट्टानें दतिया के उत्तरी भाग तथा छतरपुर (बीजावार क्रम) मे देखा जा सकता है। इसे सक्रमण क्रम के अन्तर्गत विस्थापित किया गया है। यह क्रम सोन नदी के दक्षिण और ललितपुर के दक्षिणी किनारे पर पायी जाती है। इसमे बालू प्रस्तर एव चूना पत्थर की चट्टानों के स्तरो के अन्दर लावा प्रविष्ट है। बीजावार क्रम मे कठोर एवं कोमल चट्टानें (उदाहरणर्थ क्वार्टजाइट बालू पत्थर तथा ग्रेनिटिक बालू पत्थर) उपस्थित है।

3 तृतीय प्रकार की चट्टाने विन्ध्यन क्रम से सम्बन्धित हैं। ये चट्टाने बुन्देलखण्ड ग्रेनाइट को अर्द्धवृत्त के रूप मे घेरे हुए है। इसके अन्तर्गत बालू पत्थर और चूना पत्थर की अवसादी चट्टानों की प्रधानता है। विन्ध्यन क्रम का विस्तार चम्बल से सोन नदी तक है। इसे दो क्रमो मे बाटा गया है :

1 निम्न विन्ध्यन क्रम 'सेमरी श्रृखला'

2. उच्च विन्ध्यन क्रम

निम्न विन्ध्यन क्रम निम्न भागो मे वर्गीकृत है :

(अ) बेसल स्टेज

(ब) पोर्सलानिट स्टेज

(स) खेजुआ स्टेज

(द) रोहतास स्टेज

उच्च विन्ध्यन क्रम तीन निम्न भागों मे वर्गीकृत है :

(अ) कैमूर सीरीज

(ब) रीवा सीरीज

(स) भाण्डेर सीरीज

4. चतुर्थ चट्टानों का क्रम आधुनिक निक्षेप के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है। इनमे नदी एवं

वायुजनित बालू, शिल्ट एव लोयस आती हैं। उत्तर मे यमुना की ओर बढ़ने पर लोयस की प्रचुरता देखने योग्य है।[1]

धरातलीय स्वरूप :

यदि विन्ध्य क्षेत्र का दक्षिणी भाग कटे फटे पठार का प्रतिरूप है तो उत्तरी भाग समतल मैदान से युक्त है। उत्तरी मैदान का फैलाव यमुना नदी के सहारे है। इसका निर्माण यमुना एवं उसकी सहायक चम्बल, बेतवा एवं केन नदियो के गाद से हुआ है। इसके दक्षिण बुन्देलखण्ड का पठारी भाग कगारो से युक्त है। दक्षिण की ओर बढ़ने पर धरातलीय ऊँचाई बढ़ती जाती है। इस भाग के बीच-बीच मे कठोर चट्टाने उभरी हुई दिखाई पड़ती हैं। इसमे विन्ध्यन पहाड़ियाँ उत्तर पश्चिम मे दतिया की शिवधा तहसील से प्रकट होकर दक्षिण मे नरवर तक विस्तृत है।[2]

जलवायु :

विन्ध्यन क्षेत्र का सम्पूर्ण भाग उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्र मे आता है। इस क्षेत्र की जलवायु पर बगाल की खाडी के मानसून एवं पश्चिमी राजस्थान की शुष्कता का प्रभाव दिखाई देता है। विन्ध्य क्षेत्र का सबसे गर्म महीना मई का होता है। यहा का प्रतिदिन का अधिकतम तापमान 42.6° से0 ग्रे0 तथा जनवरी का औसत तापमान 18.9° से0 ग्रे0 होता है। ग्रीष्मकालीन औसत तापमान 29.5° से0 ग्रे0 से 32° से0 ग्रे0 के मध्य रहता है। रात्रि का तापमान भी उच्च रहता है। मानसून के आगमन से तापमान में न्यूनता आ जाती है तथा सापेक्षित आर्दता अधिक हो जाती है। अक्टूबर के बाद तापमान स्वतः कम होने लगता है और रात्रियाँ प्रायः अधिक ठंडी होती हैं। यह प्रक्रिया फरवरी तक रहती है।[3]

मानसून की ऋतु मध्य जून से अन्तिम सितम्बर तक होती है। इस भाग मे दक्षिण-पश्चिम मानसून द्वारा लगभग 90% वर्षा प्राप्त होती है। यहाँ की वार्षिक औसत वर्षा 102 से0 मीटर है। शीत ऋतु में पश्चिमी अवदाव इस क्षेत्र को कुछ वर्षा प्रदान करते हैं।

नदियाँ एवं झीलें :

बुन्देलखण्ड का अपवाह तन्त्र यमुना के अन्तर्गत आता है जबकि विन्ध्यन बघेलखण्ड का गगा

---

1 पाल, जे0 एन0, 1986, *आर्कियोलॉजी ऑफ सर्दन उत्तर प्रदेश*, पृष्ठ 3-4

2. मिश्र, जगदीश प्रसाद, 1985, *भारत का भूगोल*, पृष्ठ 437

3 पाल, जे0 एन0, 1986, *आर्कियोलॉजी आफ सर्दन उत्तर प्रदेश*, पृष्ठ 3-4

और सोन के अन्तर्गत आता है। यमुना के मुख्य सहायक और उपसहायक नदियो मे बेतवा, केन, बाघइन और धसान *(बेतवा की सहायक)* नदियाँ मुख्य हैं। *गंगा की सहायक नदियों मे कर्मनाशा,* चन्द्रप्रभा, टोस, बेलन, लपारी तथा सोन की सहायक नदियो मे कन्हर, पाण्डु, लउवा और थेमा प्रमुख हैं।

यमुना नदी का दक्षिण कगार 15-45 मीटर ऊँचे है। यमुना नदी की तुलना में उसकी सहायक नदियों का महत्त्व सिचाई की दृष्टि से अधिक है। इन नदियों की जल प्रवाह क्षमता मे कालिक विविधता पाई जाती है।

बुन्देलखण्ड मे जलाशयो (ताल व तालाब) की बहुतायात है। बड़े जलाशयो में - पहुज, बरवा सागर, डकवा एवं परीछा आदि प्रमुख हैं। बड़वार, सिआवरी आदि प्राकृतिक झीले हैं। माता-टीला, ललितपुर तथा सपरार जलाशय कृत्रिम है जो नदियों पर बांधो द्वारा जल रोककर बनाये गये है। इसके अतिरिक्त पंचवारा झील, अटहरताल, मानिकपुर ताल, वेला ताल, राजपुरा सागर, मदन सागर, वीर सागर, जगत सागर, गोरा ताल गंगऊ इत्यादि प्रमुख हैं। नदियो के दोनो किनारे प्रायः गहरे खड्ड मिलते है। बेतवा, घसान तथा केन के किनारे सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश मे अपरदन निर्मित खड्डो का क्रमश 18 5, 6.3 तथा 1.4% मिलता है। जनपद के अनुसार बांदा में उत्तर प्रदेश के कुल खड्ड भूमि का 1.13%, हमीरपुर मे 10%, जालौन में 9.3% तथा झाँसी में 8.2% मिलता है।[1]

प्राकृतिक वनस्पतियाँ :

प्राकृतिक वनस्पति की दृष्टिकोण से इस क्षेत्र की स्थिति अच्छी नही है। चट्टानी धरातल, जलवायु की शुष्कता, वर्षा की कमी, लाल अन-उर्वरक मिट्टी युक्त अथवा कृषि के कारण यहां वनस्पतियो की अल्पता है। यहाँ पर प्रमुख रूप से मानसूनी पतझड़ वाले वन पाये जाते हैं। न्यून वर्षा एवं अनुपजाऊ मिट्टियो वाले ऊबड़-खाबड़ क्षेत्रो मे प्रायः कटीली झाड़ियां व छोटे-छोटे कांटेदार वृक्ष पाये जाते है। प्रमुख वृक्षों में साल, सागौन, बांस, महुआ, ढाक, शीशम, पीपल, नीम, सेमल, जामुन, कदम, कुर्च, चिलबिल, बड़हल आदि हैं।[2]

बुन्देलखण्ड के कुल क्षेत्रफल के 7.2 प्रतिशत भाग पर ही वनस्पतियाँ पायी जाती हैं। सबसे

1. मिश्र, जगदीश प्रसाद, 1985, *भारत का भूगोल,* पृष्ठ 438
2. पाल, जे0 एन0, 1986, *आर्कियोलॉजी ऑफ सदर्न उत्तर प्रदेश,* पृष्ठ 4-5

उपयोगी लकड़ी टीक है। इसके वृक्ष छोटे-छोटे टुकड़ो मे दिखाई पड़ते है। इसके अतिरिक्त सेमल, सलाई, बबूल, खैर, तेदू आदि के वृक्ष मिलते हैं। खैर के वृक्ष संख्या मे अधिक हैं परन्तु इनका यथोचित विदोहन नही हो रहा है। पन्ना एवं छतरगढ जनपदो मे तेदू के पेड़ो का बाहुल्य है। जालौन, हमीरपुर और बादा जनपदो मे जगलो को काटकर भूमि खेती के काम मे लायी जा रही है।[1]

निचले पहाड़ी एव पठारी ढ़ालो पर घास के मैदान पाये जाते है। झाड़ियां और घासें तो वैसे सभी जगह पर मिलते हैं परन्तु प्रदेश के पश्चिमी भाग जैसे कि जालौन, दतिया मे इसकी प्रधानता है। यहां की कास तथा कालिंजर घास विशेष उल्लेखनीय हैं जिसका उपयोग कागज बनाने के लिए किया जाता है और पशुओ के खाने के काम आती है। विभिन्न प्रकार की घासे वर्षा ऋतु मे बहुतायत मात्रा मे उगती है। यहाँ के वनो से प्रमुख रूप से इमारती व ईंधन की लकड़ी, गोद व लाख प्राप्त होता है।[2]

मिट्टियाँ :

विन्ध्य क्षेत्र मे पायी जाने वाली मिट्टियां चार समूहों में वर्गीकृत की जा सकती है। चट्टानी मिट्टियाँ - विन्ध्य पठार के ऊपर विकसित हुई है। बादा मे इसको पाठा मिट्टियां कहते है। इन मिट्टियों मे चिकनी दोमट से लेकर बलुई दोमट तक की विशेषता पायी जाती है।

निम्न क्षेत्र की मिट्टिया उत्तरी निचले भाग में प्राप्त होती है, यहाँ सबसे सर्वोत्तम प्रकार की मिट्टी पायी जाती हैं। इनमें मार, काबर, परुआ और राकर आदि मुख्य प्रकार की मिट्टियाँ है। इनका निर्माण अपरदनात्मक शक्तियो द्वारा हुआ है। मार चूना प्रधान मिट्टी है जिसका रंग काला होता है। इसमे कंकड़ की परत भी उपस्थित है। इस मिट्टी में जल सरक्षण की क्षमता सबसे अधिक होती है जिसके परिणामस्वरूप यह मिट्टी गेहूँ, चना एवं गन्ना की फसलों के लिए उपयोगी है। काबर मिट्टी भी उर्वरता की दृष्टि से मार मिट्टी के जैसे ही हैं।[3]

विन्ध्य क्षेत्र के पश्चिमी भाग (झासी) मे लाल एव पीली मिट्टी पायी जाती है। ये मिट्टियाँ ग्रेनाइट एव नीस के ऊपर पायी जाती है। स्थानीय भाषा मे इन मिट्टियो को मिश्रित रूप मे परुआ कहते है

---

1. मिश्र, जे0 पी0, 1985, *भारत का भूगोल*, पृष्ठ 438
2 अग्रवाल, के0 एम0 एल0 तथा एस0 एल0 गुप्ता, *भारत का भूगोल*, पृष्ठ 490
3 मिश्र, जगदीश प्रसाद, 1985, *भारत का भूगोल*, पृष्ठ 439

जिसमे विविध प्रकार की फसलें उगाई जाती है। इसमे रासायनिक तत्व जैसे लोहा, फासफेट एव नाइट्रोजन की कमी होती है।

नदीकृत मिट्टिया चट्टानों के बारीक कणो से मिलकर बनी होती है। इन्हें तीन वर्गों में बांटा गया है - तारी, कछार, रांकर मे रखा गया है।

कृषि :

विन्ध्य क्षेत्र का भू-भाग देश के अविकसित क्षेत्रो मे से एक हैं। यहाँ की अधिकांश आबादी कृषि पर ही आश्रित है। यहां पर कृषि परम्परागत एवं पुराने तौर तरीकों से की जाती है। धरातलीय विषमता के कारण कुल क्षेत्रफल के 40% भाग पर ही कृषि की जाती है। इस क्षेत्र मे किसी भी फसल का विशिष्टिकरण नहीं हुआ है। खाद्यान्न फसलों की अधिकता है। खरीफ की तुलना मे रबी अधिक महत्वपूर्ण है।[1]

चावल यहां की प्रमुख फसल है जो विशेष रूप से इस प्रदेश के उत्तरी भाग तथा सोन नदी की घाटी में पैदा किया जाता है। ज्वार, बाजरा, चना, कोदो, दाले तथा तिलहन यहां की अन्य फसलें है। यहां मिश्रित कृषि की जाती है। जैसे चना-तिलहन, चना-गेहूँ, ज्वार-अरहर, ज्वार-तिलहन-दालें, बाजरा-अरहर-मूंग आदि। कुल खेतिहार भूमि के 15% भाग में सिचाई द्वारा कृषि की जाती है। यहाँ पर सीमित सिंचाई के साधन उपलब्ध है। गेहूं कुल बोये गये क्षेत्र के 24% से अधिक भाग पर उत्पन्न किया जाता है। उत्तरी भाग के सिंचाई सुविधा वाले भागों मे यह अधिक बोया जाता है। जहां सिंचाई की सुविधा उपलब्ध नहीं है ज्वार-बाजरा उगाया जाता है। जौ की फसले भी ऐसे भागो मे उगाई जाती हैं। मानसून की अनिश्चितता एवं मिट्टी के स्वरूप के संदर्भ में यहां सिंचाई नितान्त आवश्यक है। बड़े-बड़े जलाशयों का प्रयोग सिंचाई के लिए किया जाता है। बेतवा, धसान एवं केन नदियो से निसृत नहरे उत्तरी भाग की सिंचाई की आवश्यकता की आपूर्ति करती है। सरकार द्वारा निर्मित बांध यथा माता टीला, ललितपुर, सप्रार भी कृषि विकास मे सहायक सिद्ध हो रहे है।[2]

जीव जन्तु :

वनो के तेजी से विनष्ट होने और अनियंत्रित ढंग से शिकार किये जाने के फलस्वरूप वन्य

1 मिश्र, जगदीश प्रसाद, 1985, *भारत का भूगोल*, पृष्ठ 439

2 अग्रवाल, के० एम० एल० और एस० एल० गुप्ता, *भारत का भूगोल*, पृष्ठ 480

प्राणियो की सख्या कुछ समय पहले की अपेक्षा काफी घट गई है। पठारी पर्वतीय क्षेत्रों मे अनेक प्रकार के जंगली पशु-पक्षी भी मिलते हैं। यहां पर चीता, भालू, सियार, लोमड़ी, नीलगाय, सूकर, भेड़िया, खरगोश, विभिन्न प्रकार के हिरण, बन्दर और लगूर बहुतायत से पाये जाते है। साप, नेवला, चूहा, गोह, बिचखोपरा सरीसृप आदि विन्ध्यक्षेत्र के सभी क्षेत्रों मे मिलते है। यमुना, केन, बघई, आदि नदियो मे मगर, घड़ियाल, कछुआ, केकड़ा और अनेक प्रकार की मछलियाँ मिलती हैं। विन्ध्य क्षेत्र के जंगलो मे मोर, तीतर, बटेर, फाख्ता, कौआ, तोता, गौरैया, कबूतर, नीलकंठ, चमगादड़, उल्लू, कठफोड़वा, गिद्ध, बाज आदि प्रमुख पक्षी मिलते हैं और जल पक्षियों में बतख, सारस, बगुला, चक्रवाक आदि पाये जाते है।[1]

औद्योगिक विकास :

खनिजो की उपलब्धि के बावजूद भी यहां उद्योगो का विशेष विकास नहीं हो पाया है। कच्चे माल की कमी, उद्योग के लिए आवश्यक संरचनात्मक वस्तुओ का अभाव तथा पूँजी की न्यूनता उद्योग के अविकास का मुख्य कारण है। जबलपुर मे सूती-वस्त्र, चीनी मिट्टी, काच, रसायन तथा हथियार बनाने तथा सतना में केबिल फैक्ट्री, कटनी, सतना, चुर्क, डाला तथा डालमिया नगर में सीमेण्ट, रेनूकूट मे एल्युमुनियम कारखाना, डालमिया नगर में कागज, रसायन व वनस्पति के कारखाने स्थित हैं। इसके अतिरिक्त यहां रीवा, सतना आदि मे हथकरघे के वस्त्र, बांस की चटाइयां व टोकरियां तथा लाख की चूड़ियां बनाने के व्यवसाय कुटीर धन्धों के रूप मे विकसित हुए हैं।[2]

बुन्देलखण्ड मे घरेलू तथा छोटे पैमाने पर कुछ उद्योग स्थापित किये गये हैं। जैसे लकड़ी की चिराई, लकड़ी का काम, चारकोल बनाना, चमड़े का काम, सूती कपड़ा तैयार करना आदि। यहां हस्तकरघा उद्योग के माध्यम से वस्त्र उद्योग कस्बों-गांवों में फैला हुआ है। ललितपुर की चदेरी साड़ियाँ विख्यात हैं। रानीपुर तथा मऊ में सूत का क्रय-विक्रय होता है। आटा, दाल तथा तेल मिलें भी पूरे क्षेत्र में बिखरी मिलती हैं। झांसी अब महत्वपूर्ण औद्योगिक केन्द्र बन गया है जहाँ बख्तरबंद गाड़ियों का उत्पादन होता है।[3]

---

1 पाल, जे0 एम0, 1986, *आर्कियोलॉजी ऑफ सदर्न उत्तर प्रदेश*

2. अग्रवाल, के0 एम0 एल0 और एस0 एल0 गुप्त, *भारत का भूगोल*, पृष्ठ 480

3 मिश्र, जगदीश प्रसाद, 1985, *भारत का भूगोल*, पृष्ठ 440

खनिज सम्पत्ति :

खनिज पदार्थों की दृष्टि से यह प्रदेश पर्याप्त धनी है। यहां पर कोयले की अनेक खाने पाई जाती हैं। जिनमें सिंगरौली, उमरिया तथा सोहागपुर की खाने उल्लेखनीय हैं। पन्ना में हीरा तथा रोहतास, रीवां, सतना, जबलपुर, कटनी तथा मिर्जापुर जिलों मे चूने का पत्थर भी पाया जाता है। हीरा मिश्रित चट्टानें रीवा क्रम से ऊपरी विन्ध्यन क्रम के बीच में एवं कैमूर बलुआ पत्थर के ऊपर उपस्थित हैं। यहां पर ग्रेनाइट, बालू पत्थर, शेल की बहुलता है। थोड़ी मात्रा में मैंगनीज, सिल्का, बाक्साइट, पाइराइट, तथा संगमरमर भी पाया जाता है।[1]

जनसंख्या :

2001 की जनगणना के अनुसार उत्तरी विन्ध्य क्षेत्र की जनसंख्या 316.47 लाख है। इस क्षेत्र का सबसे अधिक घनत्व वाला जिला इलाहाबाद है जिसका घनत्व 911 व्यक्ति वर्ग किलोमीटर है तथा सबसे कम घनत्व वाला जिला मध्य प्रदेश का पन्ना जिला है जिसका घनत्व 120 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है।

विन्ध्य क्षेत्र की 2001 का स्त्री-पुरुष अनुपात 880 प्रति 1000 है सबसे अधिक स्त्री-पुरुष अनुपात रीवा जिले का 939 है। तथा सबसे कम स्त्री-पुरुष अनुपात हमीरपुर जिले का 852 प्रति 1000 है।

2001 की जनसंख्या वृद्धि की दृष्टि से कुल जनसंख्या की औसत वृद्धि दर 25 53 प्रतिशत है। सबसे अधिक जनसंख्या वृद्धि दर सोनभद्र जिले की 26.31 प्रतिशत है तथा सबसे कम मध्य प्रदेश की भिण्ड जिले की जहां जनसंख्या वृद्धिदर 17.06 प्रतिशत है।[2]

---

1 अग्रवाल, के० एम० एल० और एस० एल० गुप्ता, *भारत का भूगोल*, पृष्ठ 490

2 *भारत सरकार जनगणना*, 2001

गंगा घाटी की भौगोलिक पृष्ठभूमि

गंगा घाटी का मैदानी विस्तार :

गंगा का मैदान उत्तर मे हिमालय और दक्षिण मे विन्ध्य पर्वत शृखला के मध्य में स्थित है। गगा के मैदान को तीन प्रमुख भागों में बाँटा जा सकता है :

(1) ऊपरी गागेय मैदान या गंगा-यमुना-दोआब जो मोटे तौर पर पूर्व में इलाहाबाद तक फैला हुआ है।

(2) मध्य गांगेय मैदान जो मोटे तौर पर पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा बिहार तक फैला हुआ है।

(3) निम्न गंगा मैदान जो पश्चिम बंगाल और डेल्टा तक है।

साधारण रूप से गंगा नदी के समानान्तर बहने वाली यमुना नदी उच्च गंगा घाटी की दक्षिणवर्ती सीमा का निर्धारण करती हैं। यद्यपि यमुना तथा उसकी सहायक बनास, सिंधु, बेतवा, केन, टोन्स एवं सोन नदियो के द्वारा राजस्थान और मध्य प्रदेश के एक विस्तृत भू-भाग का जल निस्तारण गंगा के द्वारा ही होता है। किन्तु उच्च गगा घाटी में प्रायः यमुना का उत्तरवर्ती क्षेत्र ही लिया जाता है।

पश्चिम में यमुना नदी तथा पूर्व मे 100 मीटर समोच्च रेखा के मध्य स्थित उच्च गंगा घाटी उत्तर प्रदेश के लगभग 1,49,129 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र के अन्तर्गत स्थित है। उत्तर मे यह क्षेत्र 300 मीटर की समोच्च रेखा के घेरे मे है, जिसमे शारदा के पश्चिम स्थित हिमालय के कुमायुं गढ़वाल तक का क्षेत्र आता है। उच्च गगा घाटी की पूर्व दिशा का विस्तार नेपाल की अन्तर्राष्ट्रीय सीमा तक है तथा दक्षिण में बुन्देलखण्ड व उच्च गंगा घाटी के मध्य सीमा का कार्य करती है।

उच्च गंगा घाटी की मुख्य नदी गगा है जिसकी दो प्रधान नदियाँ घाघरा तथा गोमती आगे चलकर मध्य गगा घाटी मे गगा में विलीन हो जाती है। प्रायः सभी नदियाँ उत्तर, पश्चिम, दक्षिण, पूर्व धारा मे ही बहती है। हिमालय से उत्पन्न नदियो मे गंगा तथा उसकी सहायक नदियाँ यमुना, रामगंगा तथा घाघरा आदि प्रमुख हैं।[1]

---

1 सिह, आर0 एल0, 1971, *इण्डिया · ए रीजनल जियोग्राफी*, पृष्ठ 124

मध्य गंगा का मैदानी विस्तार :

मध्य गगा घाटी उत्तर से दक्षिण में लगभग 330 किलोमीटर 24° 31′ उत्तर से 27° 50′ उत्तरी अक्षांश और पूर्व से पश्चिम लगभग 600 किलोमीटर 81° 47′ पूर्वी देशान्तर से 87° 50′ पूर्वी देशान्तर के मध्य 160,000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैला हुआ है। मध्य गंगा मैदान के अन्तर्गत पूर्वी उत्तर प्रदेश और लगभग सम्पूर्ण बिहार प्रान्त सम्मिलित है। इसके अन्तर्गत पूर्वी उत्तर प्रदेश का एक तिहाई भाग और आधा उत्तरी बिहार सम्मिलित है।[1] गंगा का यह मध्यवर्ती मैदान उत्तर मे हिमालय पर्वतीय प्रदेश तथा दक्षिण मे विन्ध्य का पठारी भाग तथा छोटा नागपुर के पठार से घिरा है (मानचित्र संख्या 2)। इस प्रकार उत्तर तथा दक्षिण दिशाओ में प्राकृतिक स्थला कृतियाँ इसकी सीमा निर्धारित करती हैं पर पश्चिमी तथा पूर्वी सीमाओ का निर्धारण करने वाली प्राकृतिक स्थलाकृतियो का अभाव है। पश्चिम मे गंगा के ऊपरी मैदानी भाग से इस समतल मैदान का ढ़लाव इतनी मन्द गति से हुआ है कि दोनो मैदानी क्षेत्रो को एक दूसरे से अलग करना किसी प्रकार से सम्भव नहीं है। इसी प्रकार पश्चिम से पूर्व दिशा में भी गंगा का मध्यवर्ती मैदानी भाग समतल, मन्द ढाल के रूप में गगा के निचले मैदानी भाग का रूप ग्रहण करता है। किसी प्रकार की प्राकृतिक सीमा का निर्धारण पूर्व दिशा में भी सम्भव नही है। पश्चिमी एव पूर्वी दोनो किनारों पर कोई भिन्नता उस मध्यवर्ती मैदानी व इसके दोनो सीमाओ के पार स्थित मैदानी भागो मे दृष्टिगोचर नही होती।

मध्य गंगा घाटी की संस्कृति तथा आर्थिक व्यवस्था ही इसे एकता प्रदान करती है। इस क्षेत्र की उत्तरी सीमा भारत-नेपाल की अन्तर्राष्ट्रीय सीमा है तथा दक्षिण में 150 मीटर की समोच्च रेखा इसकी सीमा निर्धारित करती है। इसी प्रकार पूर्व मे इसकी सीमा पश्चिमी बंगाल की पश्चिमी प्रशासनिक सीमा तथा पश्चिम मे उत्तर प्रदेश के पूर्वी दो मण्डलो गोरखपुर तथा वाराणसी पश्चिमी सीमा मान ली जाती है।[2]

मध्य गगा घाटी के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश मे इलाहाबाद की हड़िया और फूलपुर तहसीलें, मिर्जापुर जिले का कुछ उत्तरी भाग, वाराणसी, भदोही और चन्दौली जिले, प्रतापगढ़ की पट्टी तहसील, जौनपुर, सुल्तानपुर और कादीपुर तहसीलें, फैजाबाद, टाण्डा और अकबरपुर तहसीलें, गोण्डा की

---

1. मिश्र, जगदीश प्रसाद, 1985 - *भारत का भूगोल,* पृष्ठ 409
2 सिह, आर0 एल0 1971 *इण्डिया : ए रिजनल जियोग्राफी,* पृष्ठ 183-184

मानचित्र संख्या 2 - मध्य गंगा घाटी का विस्तार

बलरामपुर और उतरौला तहसीले, बस्ती, गोरखपुर, देवरिया, बलिया, गाजीपुर तथा आजमगढ़ जिले एवं बिहार में तिरहुत, भागलपुर (किशनगंज तहसील को छोड़कर) और पटना संभाग सम्मिलित है।[1]

धरातलीय स्वरूप :

मध्य गगा घाटी अपनी उत्तरी व दक्षिणी सीमा, कुछ सीमावर्ती भू-भाग को छोड़कर गगा मैदान का ही एक अग है। यह मैदान उत्तर में शिवालिक हिमालय व दक्षिण मे प्रायद्वीपीय उच्च प्रदेश का कुछ भू-भाग शामिल है। समुद्र तल से औसत ऊँचाई 100 मीटर से भी कम है। वैसे उत्तर पश्चिम मे यह ऊँचाई 130 मीटर तक है। पश्चिमी सीमा पर ऊचाई 105 से 130 मीटर तक मिलती है। पूर्वी सीमा पर कोसी मैदान मे यह ऊँचाई 30 मीटर रह जाती है। इस मैदान का ढाल उत्तरी भाग मे उत्तर-पश्चिम व पश्चिम में दक्षिण-पूर्व व पूर्व की ओर है। दक्षिण भाग मे ढाल दक्षिण-पश्चिम से उत्तर-पूर्व दिशा मे है।

मध्य गागेय मैदान में काप मिट्टी की गहराई औसत रूप से 1300 से 1400 मीटर के बीच है। हिमालय की ओर गहराई 8000 से 10000 मीटर तक है तथा यह दक्षिण की ओर कम होती जाती है।

मध्य गांगेय मैदान के उत्तरी भाग में ऊपरी-गंगा मैदान की अपेक्षा खादर का विस्तार अधिक है। यहा नदियां अपने बाढ़ मैदानो का भारी फैलाव रखती हैं। कोसी नदी के द्वारा यहाँ हर साल बाढ़ आती है। यह अपने साथ भारी मात्रा में मिट्टी बहा कर लाती है, जिसको यह अपने प्रवाह मार्ग व तल पर जमा देती है जिससे मध्य गगा मैदान गहरा नही रहता है और वर्षा का जल इधर-उधर बह जाता है। यह नदी बराबर अपना प्रवाह मार्ग बदलती रहती है। उत्तरी गोलार्द्ध की अन्य नदियों की तरह यह नदी अपने दाहिने किनारे को पीछे ढकेलती हुई पश्चिम की ओर सरकती जा रही है जिससे अनेक बूढ़ी नदियाँ बनती जा रही हैं। कोसी योजना के निर्माण के बाद प्रवाह मार्ग मे परिवर्तन पर काफी नियंत्रण हो गया है।[2]

---

1. बसल, सुरेश चन्द्र, 1997, *भारत का भूगोल,* पृष्ठ 670-671
2 बसल, सुरेश चन्द्र, 1997, *भारत का भूगोल,* पृष्ठ 671-672

जलवायु :

मध्य गागेय मैदानी स्थलाकृति, उत्तर में हिमालय पर्वत की स्थिति तथा बगाल की खाड़ी से दूरी मध्य गंगा घाटी की जलवायु को प्रभावित करती है और समुद्र से ज्यो-ज्यों पश्चिम दिशा मे दूरी बढ़ती जाती है। महाद्वीपीय प्रभाव इसके मौसमी तापमान पर पड़ता हुआ दिखाई पड़ता है।[1] यह उपोष्ण जलवायु पेटी मे स्थित है, लेकिन फिर भी मानसूनी हवाओ का प्रभुत्व रखता है जो यहां की मानवीय व आर्थिक परिस्थितियों पर भारी प्रभाव डालती है।

शीतकाल मे तापमान दक्षिण से उत्तर की ओर कम हो जाते हैं। जनवरी का न्यूनतम तापमान 13° सेण्टीग्रेड से औसत 25° सेण्टीग्रेट रहता है। शीत लहर के पड़ने से कभी-कभी तापमान काफी गिर जाता है। तापमान के अधिक गिरने से मटर, सरसो, मसूर, रबी की फसल को नुकसान पहुँचता है।

ग्रीष्मकाल मे मार्च से जून तक तापमान बढ़ जाता है। उत्तरी भाग की अपेक्षा दक्षिणी भाग अधिक गरम रहता है। गर्मियों में लू भी चलने लगती है।[2]

मध्य गांगेय मैदान मे 90 प्रतिशत वर्षा मानसून हवाओं से होती हैं। उच्च हिमालय पर्वत के दक्षिणी ढ़ाल सागर की दिशा मे स्थित होने के कारण वर्षा ऋतु में समुद्र की ओर से बहने वाली वाष्प युक्त हवाओं से भरी वर्षा होती है। जून से वर्षा काल शुरू होकर अक्टूबर के आरम्भ तक रहता है। पूर्वी भाग मे नारवेस्टर हवाओं से मार्च-अप्रैल-मई में भी वर्षा होती है। मध्य गांगेय मैदान मे वर्षा का भाग हिमालय से गंगा की ओर जाने पर घट जाता है। पूर्वी भाग में वर्षा का औसत 170 सेण्टी मीटर तक रहता है जबकि पश्चिम भाग में 100 सेंटी मीटर वर्षा होती है। कभी-कभी गंगा का मैदान वर्षा के अभाव मे अकालग्रस्त हो जाता है। कभी-कभी अक्टूबर माह मे जब मानसून जल्दी आ जाता है, खरीफ फसलो पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। रबी की बुवाई पर भी इसका असर पड़ता है।[3]

---

1. मिश्र, जगदीश प्रसाद 1985 भारत का भूगोल, पृष्ठ 411
2. बंसल, सुरेश चन्द्र, 1997, *भारत का भूगोल*, पृष्ठ 670-671
3. मिश्र, जगदीश कुमार 1985 *भारत का भूगोल*, पृष्ठ 411

तालिका 1

तापमान (सेंटीग्रेट)

मासिक औसत तापमान	जनवरी		फरवरी		मार्च		अप्रैल		मई		जून	
	a	b	a	b	a	b	a	b	a	b	a	b
	23 3	9 7	27.2	11 5	33 3	17.0	39 1	21 9	41 4	26 1	38 5	27 3

औसत मासिक तापमान	जुलाई		अगस्त		सितम्बर		अक्टूबर		नवम्बर		दिसम्बर	
	a	b	a	b	a	b	a	b	a	b	a	b
	33 0	26 1	32.5	26 2	31 9	25.3	32 7	21 0	29 5	13 3	25 5	9 5

a - अधिकतम तापक्रम

b - न्यूनतम तापक्रम

औसत वार्षिक तापक्रम	
a	b
32 3	19.6

इस तालिका के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मध्य गंगा घाटी का वार्षिक अधिकतम तापमान 32.3 सेण्टीग्रेट तथा न्यूनतम तापमान 19.6 सेण्टीग्रेट होता है।

तालिका 2

सामान्य वर्षा

	जनवरी	फरवरी	मार्च	अप्रैल	मई	जून
औसत मासिक वर्षा (मिलीमीटर)	21.7	9.1	16.2	3.4	7.7	1 3.4
	जुलाई	अगस्त	सितम्बर	अक्टूबर	नवम्बर	दिसम्बर
	273 7	289.6	261 0	50.3	8 8	2.7

औसत वर्षा	वार्षिक वर्षा
87 3	1047.6

इस तालिका के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मध्य गंगा घाटी का औसत वर्षा 87.3 मि0 मीटर तथा वार्षिक वर्षा 1047.6 मि0 मीटर होती है।

जल प्रवाह :

मध्य गागेय मैदान मे जल प्रवाह रेखाओ का बड़ा महत्त्व है क्योंकि जल प्रवाह के कारण मध्य गंगा घाटी के मैदान मे भौतिक दृष्टि से कुछ अन्तर दृष्टिगोचर होता है। इस सम्पूर्ण मैदानी भाग मे गगा नदी प्रमुख है जो कि इस भाग मे पश्चिम से प्रवेश करके दक्षिण पूर्व दिशा मे प्रवाहित होती है। गंगा से निकलकर समुद्र मे गिरने वाली कई शाखाएं इस निचले मैदानी भाग के अपवाह तन्त्र मे अपना स्थान रखती हैं।

गंगा की सहायक नदियो में घाघरा तथा उसकी सहायक कुआनो, राप्ती, छोटी गण्डक, गण्डक, बूढ़ी गण्डक, कोशी, वरुणा, गोमती तथा उसकी सहायक सई एवं सोन नदियाँ उल्लेखनीय है। घाघरा नदी मे हर वर्ष बढ़ आती है। घाघरा, सरयुपार मैदान की प्रमुख नदी है। गंगा के दक्षिणी मैदान की अपेक्षा उत्तरी मैदान मे बाढ़ो का प्रकोप अधिक रहता है।

हिमालय से निकलने वाली अनेक सतत् वाहिनी नदियाँ अपना लम्बा मार्ग तय करते हुए उत्तर दिशा में गंगा नदी मे प्रवेश करती हैं तथा पठारी भाग से निकलने वाली नदियो मे सोन को छोड़कर छोटी और तीव्र गति से बहने वाली दक्षिणी भाग को पार कर गंगा मे मिलती हैं। नदियां उत्तर-पश्चिम दिशा से दक्षिण पूर्व दिशा मे प्रायः एक दूसरे के सामान्तर बहती हुई न्यून कोणाकार होकर मुख्य धारा से मिलती हैं। खादर क्षेत्र जो नदियो के किनारे बसे हैं, बाढ़ के समय पानी भर जाता है। गंडक नदी अपने मार्ग परिवर्तन का नमूना समय-समय पर प्रस्तुत करती है।[1]

बागर क्षेत्र पश्चिम से पूर्व दिशा मे संकुचित हो जाते हैं। इस क्षेत्र मे बहुत सी धुनषाकार झीलें भी हैं। मध्य गांगेय मैदान के उत्तर की सीमा मे रामगढ़, चण्डी, बखिरा आदि बड़े-बड़े ताल तथा चिलु-आलिखिया तथा अनेक अन्य ताल पूर्वी भाग में हैं। उत्तरी बिहार में अनेक तालो के अतिरिक्त नदियो के मार्ग परिवर्तन से लम्बे और कम चौड़े अनेक तालाबी क्षेत्र तथा झीले देखने को मिलती हैं।[2]

मिट्टियाँ :

आर्द्रता युक्त चिकनी मिट्टी तराई क्षेत्रों में अधिक पाई जाती है जो अपने आर्द्रता और उर्वरता के कारण धान की खेती के लिए अत्यन्त उपयुक्त होती हैं।[3] मध्य गांगेय मैदान के तराई क्षेत्रों को छोड़कर सभी जगह काप मिट्टियां पायी जाती है। यहां की मिट्टियो का वर्गीकरण इस प्रकार है :

(अ) तराई मिट्टी :

भारी नमी वाली चीका प्रकार की मिट्टी 15-30 किलोमीटर चौड़ी पेटी में मध्य गांगेय मैदान

---

1 मेमोरिया, चतुर्भुज, 2002, *भारत का वृहत् भूगोल* पृष्ठ 855

2. मिश्र, जगदीश प्रसाद, 1985, *भारत का भूगोल*, पृष्ठ 409

3. मिश्र, जगदीश प्रसाद, 1985, *भारत का भूगोल*, पृष्ठ 411

की उत्तरी सीमा पर गोडा से लेकर बस्ती, गोरखपुर, देवरिया, चम्पारन जिले के उत्तरी भू-भाग पर मिलती है। यहाँ से लम्बी घासों व वनो को साफ करके भूमि को कृषि योग्य बनाया गया है। यहा की प्रमुख फसल चावल है।

(ब) पर्वतीय व वन मिट्टी :

यह चम्पारन जिले के उत्तरी भाग पर पायी जाती है।

(स) कांप मिट्टियाँ :

मध्य गागेय क्षेत्र मे पायी जाने वाली कांप मिट्टियाँ अपनी संरचना, रंग, नमी की मात्रा आदि दृष्टि से यह भिन्नताये रखती हैं। खनिज जीवांश पर्याप्त मात्रा मे काप मिट्टियों से मिलते है लेकिन इनमे नाइट्रोजन का अभाव है। ये मिट्टियाँ आधुनिक समय की हैं। ये मिट्टियाँ दो प्रकार की हैं -

(i) खादर मिट्टी :

यह भारी नमी वाली कांप मिट्टी है जो नदियो के प्रवाह मार्गों, बाढ़ के मैदानो व पुराने प्रवाह मार्गों पर वितरित हैं। इस मिट्टी मे छोटे-छोटे कण अधिक मात्रा में शामिल हैं। घाघरा, गण्डक व सोन नदियो के क्षेत्रो मे यह रेतीली है। बिना सिंचाई के कृषि सम्भव है। बारीक कण वाले भू-भागो पर चावल, मोटे कण वाले भू-भागों पर गन्ना प्रमुख फसल है।

(ii) बांगर मिट्टी :

चीका दोमट से बलुई प्रकार की पुरानी कांप मिट्टी है, जो नदियों के बाढ़ मैदान से दूर ऊँचे भू-भागो पर पाई जाती है। यह भारी जल-सग्रह की क्षमता रखने के कारण काफी उपजाऊ है। यह मिट्टी चावल उत्पादन के लिए काफी उपयुक्त हैं।[1]

प्राकृतिक वनस्पति :

चम्पारन के उत्तरी क्षेत्र तथा तराई के कुछ भाग तथा मध्य गंगा घाटी के नदी के कुछ किनारों को छोड़कर शेष पूरे क्षेत्र मे प्रारम्भिक समय से मानव का निवास रहा है। इस समतल मैदानी भाग

---

1 बंसल, सुरेश चन्द्र, 1997, *भारत का वृहत् भूगोल*।

मे अपवाह तन्त्र के अनुकूल होने तथा मिट्टी के उर्वरक होने के कारण यहाँ साल, महुआ, बेर, जामुन तथा शीशम के वृक्ष मिलते हैं।[1] हजारों वर्षों से यह क्षेत्र कृषि के अन्तर्गत रहा है। बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण प्राकृतिक वनस्पतियो का विनाश हो रहा है। यहा केवल तराई के क्षेत्रों मे जहाँ-जहाँ कृषि के अनुपयुक्त तथा दलदली भूमि है वहां वनो के रूप मे प्राकृतिक वनस्पतिया सुरक्षित हैं। इसमे साल वृक्षो के वन महत्वपूर्ण हैं। वृक्षों के अतिरिक्त इनमें नरकुल, मूंज तथा सवाई आदि बड़ी घासे प्राप्त होती हैं। कहीं-कही शुष्क क्षेत्रो मे जो कृषि के अन्तर्गत नही है पीपल, इमली, महुआ, नीम और ढाक के वृक्ष दिखायी देते है। नदियों के मध्यवर्ती रेतीली दियारा भूमि पर शीशम, इमली, सरकण्डे व सरपत घास के जंगल पाये जाते हैं। साल के वृक्ष उत्तरी गोरखपुर, सहरसा तथा पूर्णियां जिले मे मिलते हैं। उत्तरी बिहार के मैदान मे दलदली वनस्पति तथा फलो के उद्यान पाये जाते हैं। आम, जामुन, नीबू आदि के अतिरिक्त लकड़ी के वृक्षो मे शीशम मुख्य हैं। गंगा के मध्यवर्ती मैदान में सवाई घास विशेष रूप से प्राप्त होती है। निचली गंगा-घाघरा, दोआब में अधिकतर जिले जैसे गाजीपुर, जौनपुर, उत्तरी बिहार के मुजफ्फरपुर, दरभंगा तथा सहरसा मे वन क्षेत्र अत्यन्त अल्प मात्रा मे प्राप्त होते हैं।[2]

कृषि :

मध्य गंगा घाटी मे उपजाऊ काप मिट्टी तथा प्रतिवर्ष बाढ़ के समय उसका नवीनीकरण, तथा समतल धरातल के कारण कृषि योग्य भूमि के विभाजन मे अन्तर्प्रान्तीय विभिन्नता पायी जाती है। दक्षिण बिहार के मैदान के पश्चिमी भाग मे कृषि हेतु भूमि सम्पूर्ण क्षेत्र की 64% है। पूर्वी भागो में 80% तथा उत्तरी बिहार के मैदान मे 80% है।[3]

मिट्टी की अधिक आर्द्रता होने के कारण इस भू-भाग में खरीफ की फसलों का अधिक महत्व है। यहा कृषि कार्य मई-जून मे ही प्रारम्भ हो जाती है। इस कारण यहां खरीफ की फसले भदई एव अगहनी तथा रबी की तीन फसले अपना स्थान ले लेती है। अगस्त, सितम्बर में भदई धान की फसल तैयार हो जाती है। रबी की फसल के लिए वही खेत उपलब्ध हो जाते हैं।

---

1 सिंह, आर० एल०, 1971, *इण्डिया · रिजनल जियोग्राफी*, पृष्ठ 204

2 मिश्र, जगदीश प्रसाद, 1985, *भारत का भूगोल*, पृष्ठ 412

3. आर० एल० सिह, 1971, *इण्डिया · रिजनल जियोग्राफी*, पृष्ठ 204

देश के विभाजन के पश्चात अधिक वर्षा वाले क्षेत्र मे जूट की खेती की जाने लगी। फैजाबाद तथा वाराणसी मण्डलो मे धान तथा गेहूँ का अनुपात लगभग बराबर ही रहता है। इन दोनों जनपदो में खरीफ की फसल मे ज्वार, बाजरा का अच्छा स्थान रहता है। धान तथा गेहूँ के बाद मक्के का तीसरा स्थान है। अन्य फसलों मे चना, तिलहन आदि प्रमुख है। दलहन तथा तम्बाकू की खेती भी यहां होती है। उत्तरी मैदानी भागो मे गन्नों की खेती की जाती हैं।

पूर्वी उत्तर प्रदेश के मैदानी भाग, मे गंगा-घाघरा सिंचाई वाले क्षेत्र हैं। वाराणसी में कर्मनाशा नदी तथा चन्द्रप्रभा से निकली नहरो से सिंचाई होती है। फैजाबाद, गोरखपुर, गोण्डा, सुल्तानपुर और बस्ती जिले मे झीलों, एवं तालाबो से सिंचाई होती है।[1]

जीव-जन्तु :

मध्य गागेय मैदान मे वनो का तेजी से विनाश होने और अनियंत्रित ढंग से शिकार किये जाने के फलस्वरूप जीव-जन्तुओ की संख्या में कमी आई है। मध्य गांगेय मैदान सबसे उपजाऊ तथा घना बसा हुआ क्षेत्र है। यहां की वनस्पतियां बहुत विस्तृत क्षेत्र में फैली हुई हैं इसीलिए यहाँ जंगली जीव-जन्तु भी अधिक पाये जाते हैं। मुख्य रूप से काला हिरण, चीतल, नीलगाय, लकड़बग्घा, भालू, सियार, लोमड़ी, साही आदि पाये जाते हैं। वनस्पति वाले क्षेत्रों का कृषि क्षेत्रो में परिवर्तन और स्वतन्त्रता के बाद आसानी से सुलभ बन्दूको ने लगभग पूरे तौर पर चीतल और काले हिरण को और अन्य जन्तुओं की आबादी को कम कर दिया।[2]

औद्योगिक विकास :

मध्य गंगा के विस्तृत मैदानी भाग मे खनिजो का अभाव है अतः यहां कृषि से उपलब्ध संसाधनों पर ही उद्योग आधारित हैं। इस भू-भाग का चीनी प्रमुख उद्योग है जिसके अधिकांश कारखाने चम्पारन, सारन, देवरिया, गोरखपुर मे हैं। उत्तर में चीनी के कारखाने पटना, गया, शाहाबाद, बलिया, आजमगढ़, जौनपुर, फैजाबाद, सुल्तानपुर वाराणसी में हैं। सूती वस्त्र उद्योग पटना, मधुबनी, बिहार शरीफ, बक्सर, गया, मुबारकपुर, मऊ, वाराणसी, जलालपुर, टाण्डा तथा खलीलाबाद में स्थापित हैं। वाराणसी अपनी बनारसी रेशमी साड़ियों के कारण देश भर में विख्यात है। मिर्जापुर

---

1 मिश्र, जगदीश प्रसाद, 1985, *भारत का भूगोल*, पृष्ठ 412

2 पाल, जे० एन०, प्रतापगढ़ जनपद में *पुरातात्विक अन्वेषण मानव अंक* पृष्ठ 1

एवं भदोही 'कालीन उद्योग केन्द्र' देशी एवं विदेशी बाजारों को कालीन का निर्यात करते है। इस मैदानी भाग के मध्यवर्ती दक्षिणी-पश्चिमी भाग में डालमिया नगर एक प्रमुख औद्योगिक केन्द्र है जहाँ कागज, सीमेण्ट, चीनी, रसायन, कार्ड बोर्ड, प्लाईवुड, वनस्पति तेल तथा अन्य कई उद्योग हैं। मुंगेर मे भारत का सिगरेट का सबसे बड़ा कारखाना है। पटना, भागलपुर, गया, मुजफ्फरपुर, दरभगा, गोरखपुर, तथा मिर्जापुर आदि नगरो में इण्डस्ट्रियल स्टेट की स्थापना कर अनेक मध्यम एव लघु श्रेणी के उद्योगो को विकसित किया गया है।[1]

जनसंख्या :

गगा के इस मध्यवर्ती समतल मैदानी भाग में अपवाह तन्त्र के अनुकूल होने, मिट्टी के उर्वरक होने तथा कृषि योग्य भूमि का क्षेत्रफल सर्वाधिक होने के कारण कृषिगत कार्य मे सुगमता से मानव के भरण-पोषण का वहन करने के फलस्वरूप उस पर आधारित जनसंख्या का वितरण विश्व के कृषि भूमि पर आश्रित अधिक जनसंख्या के क्षेत्रों मे इस क्षेत्र को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हैं।[2]

2001 की जनगणना के अनुसार मध्य गांगेय मैदान की जनसख्या 1030.50 लाख है, मध्य गागेय मैदान के सबसे अधिक जनसख्या वाला जिला बिहार का मुजफ्फरपुर है जिसकी कुल जनसख्या 37.43 लाख है और सबसे कम जनसंख्या वाला जिला बिहार के लखीसराय की है जिसकी कुल जनसख्या 8.01 लाख है।

1991 से 2001 के बीच मध्य गांगेय मैदान की जनसंख्या की औसत वृद्धिदर 26 53 प्रतिशत है। इस क्षेत्र का सबसे अधिक वृद्धिदर वाला जिला बिहार का पूर्णिया जहाँ वृद्धिदर 35.23 प्रतिशत है और सबसे कम बिहार के नालन्दा जिले की है जहाँ की औसत वृद्धिदर 18.64 प्रतिशत है।

2001 में स्त्री-पुरुष का कुल अनुपात 936 व्यक्ति प्रति हजार है सबसे अधिक स्त्री-पुरुष अनुपात बिहार के शिवान जिले की है जहाँ कि औसत अनुपात 1033 व्यक्ति प्रति हजार है। तथा सबसे कम स्त्री-पुरुष अनुपात पटना जिले के 833 व्यक्ति प्रति हजार है।

---

1. मिश्र, जगदीश प्रसाद, 1985, *भारत का भूगोल*, पृष्ठ 413
2. मेमोरिया चतुर्भुज, 2002, *भारत का वृहत भूगोल*

घनत्व की दृष्टि से इस क्षेत्र का औसत घनत्व 964 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है। सबसे अधिक घनत्व वाला जिला उत्तर प्रदेश का वाराणसी का है जहाँ का घनत्व 1995 व्यक्ति प्रति किलोमीटर है और सबसे कम बिहार के औरंगाबाद जिले का घनत्व 607 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है।[1]

1 भारत सरकार जनगणना, 2001

अध्याय दो

विन्ध्य क्षेत्र और मध्य गंगा के मैदान का सांस्कृतिक अनुक्रम

- पुरा पाषाणिक संस्कृतियां (केवल विन्ध्य क्षेत्र)
- उच्च पुरा पाषाण काल और मध्य पाषाण काल के बीच की संक्रमण कालीन (अनुपुरापाषाण) संस्कृति
- विन्ध्य क्षेत्र एवं मध्य गंगा घाटी की मध्य पाषाण कालीन संस्कृतियां
- विन्ध्य क्षेत्र एवं मध्य गंगा घाटी की नव पाषाण कालीन संस्कृतियां
- विन्ध्य क्षेत्र एवं मध्य गंगा घाटी की ताम्र पाषाण कालीन संस्कृतियां
- प्रारम्भिक ऐतिहासिक संस्कृति

पुरापाषाणिक संस्कृति

प्रातिनूतन काल मानव के उद्भव एवं विकास का काल माना जाता है तथा प्रागैतिहासिक काल मानव के प्रादुर्भाव से लेकर इतिहास की लिखित सामग्री की प्राप्ति के पूर्व का समय कहा जाता है। इसके प्रारम्भ की अनुमानित तिथि 20 या 30 लाख ई0 पू0 है। प्रागैतिहास शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग करने का श्रेय 1851 ई0 में डैनियल विल्सन को है।[1] प्रागैतिहासिक काल के अध्ययन एव अनुसंधान के लिए दो प्रकार की रूप रेखा प्रचलित है - प्रथम तकनीकि रूपरेखा और द्वितीय सामाजिक, आर्थिक रूपरेखा। तकनीकी रूपरेखा के अनुसार मनुष्य ने सबसे पहले उपकरण बनाने के लिए पाषाण का उपयोग किया और कालान्तर मे तांबे एवं कास्य धातु के उपकरण बनाना सीखा तथा अन्त मे लोहे के उपकरण बनाने की जानकारी हासिल की। इस प्रकार प्रागैतिहासिक तकनीकी रूपरेखा से सम्बन्धित जो विचारधारा लोकप्रिय हुई वह इस प्रकार है - 1. पाषाण काल, 2. ताम्र - कांस्य काल, 3. लौह काल। इस विचार धारा के प्रवर्तन का श्रेय डेनमार्क के सी0 जे0 थामसन नामक विद्वान को दिया जाता है।[2]

सामाजिक आर्थिक रूपरेखा के अनुसार वन्यता, पशुचारण, कृषि पर आधारित स्थायी समाज और सभ्यता से चार अवस्थाए स्वेन के निल्सन नामक विद्वान ने सर्वप्रमुख प्रस्तुत किया। कुछ समय पश्चात् एडवर्ड टेलर और डी0 एच0 मारगन ने इस सामाजिक रूपरेखा को परिष्कृत एवं संशोधित करके वन्यता, ग्राम्यता और सभ्यता की तीन अवस्थाओं को निरूपित किया।[3] इस विचार धारा को प्रागैतिहासिक अध्ययन एवं अनुसंधान के क्षेत्र मे विशेष लोकप्रिय बनाने का श्रेय वी0 गार्डन चाइल्ड[4] को है।

जॉन लुब्बॉक ने सन् 1865 ई0 में पाषाण काल को पुरापाषाण काल और नवपाषाण काल इन दो भागों मे विभाजित किया किन्तु 1887 ई में फ्रांस की 'मास द एजिल' नामक गुफा के उत्खनन

---

1 बिल्सन, डैनियल, 1951, *दि आर्कियोलॉजी एण्ड प्रोहिस्टरिक एनेल्स आव स्काटलैण्ड*, पृष्ठ 1

2. डैनियल, जी0 ए0, 1942, दि थ्री एज से उद्धरित। वर्मा, आर0 के0 *भारतीय प्रागैतिहासिक सस्कृतियां*

3. डैनियल ग्लिन 1964, *आइडिया आव प्रीहिस्ट्री*, पृष्ठ 66

4 चाइल्ड, वी0 गार्डन, 1942, मैन मेक हिम सेल्फ से उद्धरित, *सोशल इवोल्यूसन*, 1951, पृष्ठ 24

के फलस्वरूप इन दोनों पाषाणकालो के बीच में मध्य पाषाण काल प्रस्तावित किया गया।[1] इस प्रकार तकनीकी बनावट, प्रयुक्त पत्थर और आकार प्रकार के आधार पर मानव संस्कृति की प्रारम्भिक अवस्था - पाषाणयुग के मोटे तौर पर अब तीन भेद माने जाते हैं जो इस प्रकार है -

1. पुरा पाषाण काल (पैलियोलिथिक)
2 मध्य पाषाण काल (मेसोलिथिक)
3. नव पाषाण काल (नियोलिथिक)

पुरा पाषाण काल (पैलियोलिथिक) :

पुरापाषाण काल मानव तकनीकी विकास का आदि काल या शैशव काल है। इस काल मे मानव आखेट और आत्मरक्षा हेतु पत्थर के औजार बनाता था। आग की खोज तो कर लिया था किन्तु कृषि, मृद्भाण्ड और भण्डार संग्रह सम्बन्धी उसे ज्ञान नही था। भारत मे सर्वप्रथम रार्बट ब्रूसफुट ने 1863 ई0 मे मद्रास के समीपस्थ पल्लवरम् नामक स्थान से पुरापाषाणिक उपकरण खोजकर प्रागैतिहासिक अध्ययन का श्री गणेश किया। ब्रसफूट का लगभग 40 वर्षों का संकलन इस समय मद्रास संग्रालय में संग्रहीत है[2]। तब से लेकर आज तक विद्वानों ने भारत के विभिन्न क्षेत्रों में पुरापाषाणिक उपकरण खोज निकाले हैं।

विन्ध्य क्षेत्र मे मानव का अस्तित्व प्रागैतिहासिक काल के पुरा पाषाणकाल से ही था इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण विन्ध्य क्षेत्र के विविध स्थलों से प्राप्त पाषाण काल के उपकरणों से होती है। पुरा पाषाणकालीन मानव तत्कालीन जटिल परिस्थितियों पर निर्भर था। इसलिए उसने वन्य पशुओं से सुरक्षा और उनके आखेट से अपनी क्षुब्धा निवारण हेतु विभिन्न प्रकार के पुरा पाषाणिक उपकरणो का निर्माण किया। पुरा पाषाण काल मे मानव नदियों के किनारे अथवा जंगलों की तलहटियों में, किसी जलाशय के समीपस्थ रहना पसन्द करता था। क्योंकि वहाँ पर उसे अपने उपकरण बनाने के लिए पर्याप्त पत्थर मिल जाया करता था और जंगली पशु पक्षियों के शिकार, प्राकृतिक कन्दमूल, फल, फूल आदि खाद्य पदार्थों के सग्रहण से अपना उदर पोषण करता था तथा वहाँ पर उसे पीने के लिए पानी की भी सुविधा थी। पुरा पाषाण काल का समय बहुत लम्बा रहा। इसीलिए विद्वानों ने पुरा पाषाण को तीन भागों में विभाजित किया है[3] :

---

1. लुब्बाक, जॉन, 1865, *प्रीहिस्टरिक टाइम्स* से उद्धरित पाण्डेय, जे0 एन0 1995, पुरातत्व विमर्श, पृष्ठ 194
2 मैटिलेट, जी, 1903, *प्रीहिस्टरिक टाइम्स* से उद्धरित, वर्मा, आर0 के0 भारतीय प्रागैतिहासिक संस्कृतिया पृष्ठ 38
3 पन्त, पी0 सी0, 1982, *प्रोहिस्टारिक* उत्तर प्रदेश, पृष्ठ 242

1. निम्न पुरापाषाण काल

2. मध्य पुरापाषाण काल

3. उच्च पुरापाषाण काल

विन्ध्य क्षेत्र में निम्न पुरापाषाण के पुरास्थल तीन प्रकार की स्थितियों मे मिलते हैं -

1. खुले स्थानों मे स्थित पुरास्थल

2. गुफाएं एवं शिलाश्रय

3. नदियो के अनुभागो के जलोढ़ ग्रैवेल और मिट्टी के जमाव।

खुले स्थानो पर स्थित पुरास्थलो का अध्ययन बेलन तथा सोन नदियो की घाटियों तथा मध्य प्रदेश के रायसेन तथा सतना जिले के मैहर नामक स्थान पर किया गया है। इसी श्रेणी के पुरास्थल पहाड़ियो के ऊपर, उनकी तलहटी मे तथा समतल मैदान में प्रायः स्थित मिलते हैं। जहां पर पास मे ही नदी अथवा झरने के रूप मे हर ऋतु में पेयजल का साधन सुलभ थे। पूर्णतः निर्मित अर्धनिर्मित तथा टूटे उपकरण एव उपकरणों के निर्माण में प्रयुक्त सामग्री ऊपरी सतह पर बड़ी संख्या मे मिलती है।

निम्न पुरा पाषाण काल के उपकरण मैहर (खुले स्थलों में), भीमबैठका (शिलाश्रयों में), बेलन घाटी, अदवा घाटी, सोन घाटी (नदियो में) मे समय-समय पर प्रतिवेदित होते रहे हैं।

मैहर के तीसरे स्तर के जमाव से निम्न पुरापाषाण काल के हैण्डएक्स, क्लीवर, स्क्रेपर, चापर, पेबुल पर बने उपकरण, क्रोड एवं फलक आदि प्राप्त हुए है। इनके अलावा पाषाण के हथौडा, निहाई आदि प्राप्त हुए है।[1]

भीमबैठका के एश्यूलन जमाव से कुल 18,721 उपकरण प्राप्त हुए है। इसी जमाव से फर्श मिले हैं जो आवास स्थल का संकेत करते हैं। इस प्रकार भीम बैठका के उत्खनन से गुफा एवं शिलाश्रयों मे एश्यूलन मानव के रहने, कार्य करने आदि के विषय मे जानकारी मिली है।

विन्ध्य क्षेत्र का निम्न पुरापाषणिक स्थलो की दृष्टि से विशेष महत्त्व है। इस क्षेत्र के सभी स्थलों पर निम्न पुरा पाषाणिक मानव उपकरण निर्माण के लिए क्वार्टजाइट पत्थर का प्रयोग किया। इन

---

1. पाण्डेय, जे0 एन0, 1995, *पुरातत्व विमर्श,* पृष्ठ 242

स्थलो से प्राप्त अधिकाश उपकरण अर्द्धनिर्मित अवस्था मे ही मिलते हैं। उनमे फलको और कोरों की संख्या अधिक है। अवेवीलियाँ प्रकार के हैण्डएक्स, क्लीवर तथा स्क्रेपरो की गणना की जा सकती है। पेबुल पर बने उपकरण नहीं मिले है। यहाँ से उपकरणो में मूठ लगाने के स्पष्ट प्रमाण मिले है। बेलन घाटी में निम्न पुरापाषाण कालीन स्तर या प्रथम ग्रैवेल से बहुत अधिक संख्या मे बांस इक्वस तथा एलीफस के जीवाश्मित अवशेष मिले हैं।

सोन घाटी के सिहावल जमाव के निक्षेपण के समय ही प्रागैतिहासिक मानव का पर्दापण हो चुका था, उसके बाद से सोनघाटी में मानव निरन्तर रहा। इस जमाव तथा उत्तरवर्ती पहाड़ियो पर स्थित स्थलो से बहुत अधिक संख्या में निम्न पुरापाषाण कालीन उपकरण मिले हैं। अधिकांश उपकरण नये हैं। इस समय मानव बेलनाकार हथौड़ा पद्धति से परिचित थे।

मध्य पुरापाषाण काल :

विन्ध्य क्षेत्र के मध्य पुरा पाषाणिक उपकरण मैहर - II, भीमबैठका तथा बेलन एवं मध्य सोन घाटी के पुरास्थलों से प्राप्त हुए हैं।

मैहर - II के उत्खनन के फलस्वरूप 20 से0 मी0 मोटे लाल रग के जमाव के नीचे से मध्य पुरापाषाण काल के उपकरण मिले हैं। उपकरणो मे कोर, डिस्क्वायड, स्क्रेपर, फलक, पुनर्गढित फलक आदि प्रमुख हैं। उपकरण क्वार्टजाइट पर बने है।

बेलन अनुभाग के अध्ययन से हमे इस बात के सकेत मिलते हैं कि विभिन्न युगों में जलवायु एक जैसी नही रही होगी। कभी क्षेत्र अतिवृष्टि से प्रभावित हुआ, तो कभी अल्प वृष्टि से, इस अनुभाग के विभिन्न स्तरो मे मानव द्वारा निर्मित उपकरण मिलते हैं। बेलन अनुभाग के अध्ययन से यह पता चलता है कि किस तरह निम्न पुरापाषाण युगीन संस्कृति ने लगभग डेढ़ लाख वर्ष पहले मध्य पुरा पाषाण कालीन सस्कृति मे अपने को रूपान्तरित कर लिया। उपकरण इस काल में पत्थर के ही थे लेकिन उनके आकार-प्रकार मे परिवर्तन हो गया हस्तकुठार और विदारक की जगह ले ली नोक और खुरचनियो ने छिद्रक भी महत्वपूर्ण उपकरण था। मध्य पुरा पाषाण काल के उपकरण निम्नपुरा पाषाणकाल के उपकरणो से छोटे हैं, लेकिन निम्न पुरापाषाण एव मध्य पुरा पाषाण काल के उपकरणो के तुलनात्मक अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि तकनीकी दृष्टि से मनुष्य निश्चित रूप से प्रगति पथ पर अग्रसर था।

उच्च पुरापाषाण काल :

उच्च पूर्व पाषाण काल के सन्दर्भ में बेलन घाटी सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों मे से एक है। इस प्रकार के भू-वैज्ञानिक स्तरित जमाव अन्यत्र कम मिले हैं बेलन घाटी का पांचवा जमाव मध्य पुरापाषाण काल, उच्च पुरापाषाण काल के परिवर्तन का स्तर है। तीसरा जमाव उच्च पुरापाषाण काल से सम्बन्धित है। बेलन अनुभाग के अध्ययन से सकेत मिलता है कि जिस समय यह सस्कृति विकसित हो रही थी, यह क्षेत्र सूखे के दौर से गुजर रहा था। बेलन की उपत्यका से इस काल से जुड़े पुरावशेषों मे हड्डी की बनी स्त्री की प्रतिमा का उल्लेख किया जा सकता है। इस काल में कुछ धार्मिक मान्यताओ का विकास होने लगा था। सम्भवतः उस युग तक पहुँचते-पहुँचते मानव के मन में मातृ देवी के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो चुकी थी। इस तरह के साक्ष्य मध्य प्रदेश के सीधी जिले मे बाघोर प्रथम नामक स्थल से (पूजा स्थल) भी उद्घाटित हुए हैं। बेलन घाटी मे देवघाट और महगड़ा के प्रातिनूतन कालीन जमावो से प्राप्त होने वाली रेडियो कार्बन तिथियाँ उच्च पुरा पाषाण कालीन संस्कृति की तिथि निर्धारण मे सहायक साक्ष्य देती हैं। देवघाट से प्राप्त होने वाली तिथि इस संस्कृति की प्राचीनता को जहाँ 24 हजार ई0 पू0 के आस-पास ले जाती है, वही महगड़ा के पास से प्रातिनूतन काल के जमाव से प्राप्त होने वाली तिथि 10 हजार वर्ष तक इस संस्कृति के रहने का संकेत देती है।

उच्च पुरापाषाण काल एवं मध्य पाषाण काल की संक्रमण कालीन संस्कृति :

मध्य गंगा घाटी में कुछ दशक पूर्व मानव इतिहास के ज्ञान का सूत्र ऐतिहासिक काल से पहले नही पहुँच पाता था। मध्य गंगा घाटी मे इलाहाबाद विश्वविद्यालय द्वारा किये गये खोजों ने इसे भारत के प्रैगातिहासिक मानचित्र पर रख दिया है।[1] मध्य गंगा घाटी को प्रारम्भिक नूतन काल के अन्तर्गत रखा गया है।[2] मध्य गंगा घाटी मे दक्षिण से मध्य पाषाणिक मानव के आगमन के प्रमाण मिलते है। इस क्षेत्र की प्रथम पाषाण सस्कृति मध्य पाषाण काल से सम्बन्धित है (मानचित्र संख्या 3), अन्वेषण के फलस्वरूप मध्य पाषाण काल के 198 पुरास्थलों के विषय मे जानकारी प्राप्त हुई है जिनको उपकरणों के आकार-प्रकार तथा निर्माण की तकनीकी में भिन्नता के आधार पर तीन उपकालों में विभाजित किया गया है।

---

1 शर्मा, जी0 आर0 और अन्य, 1980, *बिगिनिंग्स ऑफ एग्रीकल्चर*, इलाहाबाद

2. शर्मा, जी0 आर0, 1975 - सीजनल माइग्रेशन्स एण्ड मेसोलिथिक लेक कल्चर्स ऑफ द गंगा वैली, *के0 सी0 चट्टोपाध्याय मेमोरियल वाल्यूम*, पृष्ठ 9

मानचित्र संख्या 3 - विन्ध्य क्षेत्र में मध्य पाषाणिक और नव पाषाणिक स्थल

1. अनुपुरापाषाण काल
2. अज्यामितीय मध्य पाषाण काल
3. ज्यामितीय मध्य पाषाण काल

अनुपुरापाषाण काल :

अनुपुरापाषाण काल, उच्च पूर्व पाषाण और मध्य पाषाण काल के संक्रमण का द्योतक है।[1] विन्ध्य क्षेत्र में बेलन नदी के तट पर स्थित एक स्थल चोपनी माण्डों का उत्खनन किया गया है। इस स्थल की प्रथम संस्कृति अनुपुरापाषाण काल से सम्बन्धित है। उपकरणो से सम्बन्धित जमाव अधिक मोटा नही है इससे ज्ञात होता है कि ये स्थल स्थायी आवास के लिए नहीं थे। पाषाण कालीन मानव ने सर्वप्रथम इसी काल मे गोलाकार झोपड़ियाँ बनाकर आवास प्रारम्भ किया। गंगा घाटी की इस प्राचीनतम् सस्कृति ने पाषाणकालीन मानव के ऋतुनिष्ठ आगमन का भारत में प्राचीनतम् प्रमाण प्रस्तुत किया है जबकि विन्ध्य क्षेत्र की सूखे की विभीषिका से बचने के लिए मनुष्य जीविका की तलाश मे नदी घाटियो को पार करता हुआ उत्तर की ओर आया। सम्भवत. उसका इस क्षेत्र में आना कुछ समय के लिए था अनुकूल मौसम में वे पुन· अपने मूल क्षेत्र मे लौट जाता था। उपकरणों के अध्ययन से यह साक्ष्य मिले हैं कि संस्कृति के विन्ध्य क्षेत्र के उपकरण गंगा घाटी के उपकरणो से बडे थे। गंगा घाटी की उपकरणो की यह आकार गत न्यूनता गंगा घाटी में पत्थर पिण्ड की अनुलब्धता के कारण थी, इसीलिए कोर से तब तक ब्लेड निकाला गया जब तक वह अत्यन्त छोटे नही हो गये।

गंगा घाटी के इस प्राचीनतम संस्कृति के प्रमाण अभी तक 6 स्थलों से प्राप्त हुए हैं - इलाहाबाद मे अहिरी (25° 21′ 0″ उत्तरी अक्षांश, 82°16′ 0″ पूर्वी देशान्तर), बनारस में गढ़वा (25° 23′ 45″ उत्तरी अक्षाश, 82° 53′ 45″ पूर्वी देशान्तर), प्रतापगढ़ में सुलेमान पर्वत (25° 59′ 23″ उत्तरी अक्षांश, 82° 16′ 12″ पूर्वी देशान्तर), मन्दाह (25° 59′ 0″ उत्तरी अक्षांश, 82° 2′ 35″ पूर्वी देशान्तर) तथा साल्हीपुर (26° 0′ 10″ उत्तरी अक्षांश, 82° 4′ 30″ पूर्वी देशान्तर) ये स्थल धनुषाकार झीलों अथवा इन झीलों से निकलने वाली सरिताओं के तट पर स्थित हैं।

---

1. पाण्डेय, जे0 एन0 1995 - *पुरातत्व विमर्श*

अनुपुरापाषाण कालीन इन स्थलो से अत्यधिक मात्रा में पाषाण उपकरण एक प्रकार की कड़ी मिट्टी (प्लास्टिक क्ले) के जमावो मे बिखरे हुए मिलते हैं। अभी तक इस संस्कृति के किसी स्थल का उत्खनन नही हुआ है। लेकिन इन स्थलो की सतह से जो उपकरण एकत्र किये गये हैं वे सभी काले, लाल, पीले तथा सफेद चर्ट पर निर्मित है। उन पर रासायनिक काई लगी हुई है। कुछ उपकरण चाल्सेडनी पर बने हुए उपलब्ध हुए हैं। इन स्थलो से पूर्ण निर्मित उपकरणों के साथ निर्माण की विभिन्न अवस्थाओ मे उपकरण, क्रोड, फलक आदि प्राप्त होते हैं इससे यह पता चलता है कि इन उपकरणो का निर्माण इन्ही स्थलों पर किया गया है। क्योंकि गंगा के मैदान में इन पत्थरो का स्रोत नही था पाषाण कालीन मानव विन्ध्य क्षेत्र से पत्थर के पिण्ड लेकर गंगा घाटी मे आता था और यही पर उपकरणो का निर्माण करता और शिकार करता था। जलवायु परिवर्तन तथा तत्कालीन जनसंख्या में वृद्धि इस आवागमन का कारण रहा होगा। उपकरण समुदाय में भूथड़े, ब्लेड, नोक, खुरचनी समानान्तर बाहु वाले ब्लेड, तक्षणी, अर्द्ध चन्द सम्मिलित हैं[1]। इन उपकरणों के अतिरिक्त पाषाण पुरासामग्री मे ब्लेड, फलक कोर आदि हैं। ये अधिकांशतः टूटे हुए हैं।

विन्ध्य क्षेत्र मे उच्च पूर्व पाषाण काल के उपकरण सीमेण्टेड ग्रैवेल तृतीय से मिलते हैं। इस जमाव से दो कार्बन तिथियाँ प्राप्त हुई हैं। जो 23840 ± 830/760 ई0 पू0 और 17765 ± 340 ई0 पू0 है। इस आधार पर विन्ध्य क्षेत्र की उच्च पूर्व पाषाण काल तथा मध्य पाषाण काल के सक्रमण कालीन संस्कृति को 17,000 ई0 पू0 के बाद का माना गया है। गगा घाटी की इस संस्कृति को भी यही समय प्रदान किया जा सकता है। अनुपुरापाषाण काल में स्थायी आवास के प्रमाण नही मिलते हैं।

उत्तरी विन्ध्य क्षेत्र एवं मध्य गंगा घाटी की मध्य पाषाण कालीन संस्कृतियां

विन्ध्य क्षेत्र में मध्य पाषाणिक पुरास्थल मोरहना पहाड़, बघहीखोर एवं लेखहिया का उत्खनन 1962-63 एवं 1963-64 दो उत्खनन सत्रो में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास विभाग के तत्वावधान में किया गया।

मोरहना पहाड़, बघहीखोर तथा लेखहिया शिलाश्रय मिर्जापुर जिले मे भैसोर ग्राम से लगभग 5 किलोमीटर की दूरी पर मिर्जापुर से दक्षिण की ओर जाने वाली ग्रेट दकन रोड पर स्थित है।

---

1 पाल, जे0 एन0, 1986 - माइक्रोलिथिक इडस्ट्री ऑफ दमदमा, *पुरातत्व* - 16, पृष्ठ 1-5

मोरहना पहाड़ (24° 30' उत्तरी अक्षांश, 82° 31' पूर्वी देशान्तर) :

मोरहना पहाड़ शिलाश्रय संख्या 4 के अन्दर तथा शिलाश्रय संख्या 1 के बाहर स्थित खुले क्षेत्र मे एक-एक खन्तिया आर0 के0 वर्मा द्वारा डाली गयीं। शिलाश्रय संख्या 4 के अन्दर कुल 55 सेमी मोटा मध्य पाषाणिक जमाव प्रकाश मे आया जिसे चार स्तरों में विभाजित किया गया है। मोरहना पहाड़ शिलाश्रय संख्या 1 के बाहर जो खन्ती डाली गई थी उसमे 1.15 मीटर मोटा निक्षेप मिला है जिसे छः विभिन्न स्तरों में बाटा गया है। इनमें से पांच स्तरों से मध्य पाषाणिक लघु पाषाण उपकरण प्राप्त हुए हैं। छठवा स्तर अपघटित आधार-शिला का ही भाग है। इस स्तर से किसी प्रकार के कोई पुरावशेष नहीं मिले हैं। पाचवां स्तर बालू एवं बलुआ पत्थर के टुकड़ो से निर्मित हैं। इस स्तर से अज्यामितीय लघु पाषाण उपकरण प्राप्त हुए हैं। प्रमुख उपकरणो में कुण्ठित ब्लेड, चान्द्रिक, बेधक, स्क्रेपर आदि हैं। चौथे तथा तीसरे स्तरो से ज्यामितीय लघु पाषाण उपकरण प्राप्त हुए हैं। द्वितीय एवं प्रथम स्तरो से हस्त निर्मित मृद्भाण्डों के टुकड़ों के साथ-साथ लघुतर आकार के मध्य पाषाणिक उपकरण प्राप्त हुए हैं।[1]

बघहीखोर (24° 48' 30'' उत्तरी अक्षांश, 82° 5' पूर्वी देशान्तर) :

बघहीखोर शिलाश्रय मोरहना पहाड़ के पूर्व मे लगभग 1 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। यहां पर शिलाश्रय नं0 1 में 12 × 6 फीट की एक खन्ती 1 फीट 10 इंच की अधिकतम गहराई तक खोदी गई थी, जिसके फलस्वरूप लगभग 55 सेमी मोटा मध्य पाषाणिक निक्षेप प्रकाश मे आया था, जिसे चार स्तरों में विभाजित किया गया। मोरहना पहाड़ के उत्खनन से प्राप्त परिणामों से मिलता-जुलता लघु पाषाण उपकरणों का विकासात्मक क्रम बघहीखोर के उत्खनन से भी ज्ञात हुआ है। उपकरणो के निर्माण के लिए चर्ट, चाल्सेडनी एवं उसी प्रकार के पत्थरों का प्रयोग किया गया है।[2]

लेखहिया (24° 47' 30'' उत्तरी अक्षांश, 82° 8' 7'' पूर्वी देशान्तर)

लेखहिया शिलाश्रय भैंसोर ग्राम के पूर्व में लगभग 3 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। इस मध्य

---

1 पाण्डेय, जे0 एन0, 1995, पुरातत्व विमर्श, पृष्ठ 289

2. वर्मा, आर0 के0, 1977, *भारतीय प्रागैतिहासिक संस्कृतियाँ*, पृष्ठ 247

पाषाणिक पुरास्थल पर स्थित पांच शिलाश्रयों मे से चार चित्रकारी से युक्त हैं। शिलाश्रय सख्या 1 में 6.2 × 3.1 मीटर आकार की खन्ती डाली गई, जिसमे 48 से0 मी0 मोटा निक्षेप प्राप्त हुआ, जिसे चार स्तरों मे विभाजित किया गया। यहां से निर्माण की विभिन्न अवस्थाओ वाले लघु पाषाण हजारो की संख्या मे कंकालों के साथ प्राप्त हुए थे।[1]

लेखहिया शिलाश्रय संख्या 2 के बाहर स्थित क्षेत्र मे 7 × 3 मीटर आकार की तीन खन्तियां डाली गई। 1.1 मीटर मोटे निक्षेप को संरचना एवं रंग के आधार पर 9 विभिन्न स्तरों में विभाजित किया गया। इनमे से ऊपर के 8 स्तरो से लघु पाषाण उपकरण मिले हैं, जिन्हें अज्यामितीय तथा ज्यामितीय उपकरणो की चार श्रेणियों मे विभाजित किया गया है :

1 अज्यामितीय मृद्भाण्ड-रहित लघु पाषाण उपकरण
2 ज्यामितीय मृद्भाण्ड-रहित लघु पाषाण उपकरण
3. ज्यामितीय मृद्भाण्ड-सहित लघु पाषाण उपकरण
4. लघुतर ज्यामितीय मृद्भाण्ड-सहित लघु पाषाण उपकरण

लेखहिया के शिलाश्रय सख्या 1 से मध्य पाषाणिक लघु पाषाण उपकरणों के अतिरिक्त सत्रह मानव कंकाल प्राप्त हुए है। स्तरीकरण के आधार पर चौदह मानव कंकालो को आठ काल खण्डो में विभाजित किया गया है। यहां के कंकालों के अस्थि अवशेषों का अस्थि परीक्षण लुकास (J. R. Luckas) ने किया था। लुकास के अनुसार 10 कंकाल पुरुष के तथा 4 ककाल स्त्री के थे।

मध्य पाषाणिक स्थलो में प्रारम्भिक और परवर्ती चरणो का विभाजन अज्यामितीय और ज्यामितीय लघु पाषाण उपकरणो के आधार पर किया गया है। अज्यामितीय उपकरण वाले स्थल प्रारम्भिक मध्य पाषाण काल और ज्यामितीय उपकरण वाले स्थल परवर्ती मध्य पाषाण काल की संस्कृति के अन्तर्गत आते हैं।

मध्य गगा घाटी में सबसे अधिक लगभग 172 स्थल अज्यामितीय लघु पाषाण उपकरणो वाले हैं। इस चरण के प्रमुख स्थलो में इलाहाबाद मे कुढ़ा (25° 35' 4" उत्तरी अक्षांश, 81° 43'

1. मिश्र, वी0 डी0 1977, *सम एस्पेक्ट्स ऑफ इण्डियन आर्कियोलॉजी*, पृष्ठ 56-57

17'' पूर्वी देशान्तर) भीखमपुर (25° 31' 58'' उत्तरी अक्षांश, 81° 44' 41'' पूर्वी देशान्तर), इमलीडीह (25° 31' 58'' उत्तरी अक्षांश, 81° 49' 3'' पूर्वी देशान्तर), प्रतापगढ़ में हडडीभिदुली (25° 50' 38'' उत्तरी अक्षाश, 81° 48' 25'' पूर्वी देशान्तर) कन्धई मधुपुर (25° 59' 50'' उत्तरी अक्षांश, 82° 4' 0'' पूर्वी देशान्तर) आदि स्थलों का उल्लेख किया जा सकता है।

गंगा घाटी मे अभी तक लगभग 21 स्थल ज्यामितीक लघु पाषाण उपकरणों वाले स्थल प्रकाश मे आये है। उल्लेखनीय स्थल हैं इलाहाबाद के बिछिया (25° 34' 13'' उत्तरी अक्षांश, 81° 43' 25'' पूर्वी देशान्तर), प्रतापगढ़ के भेवनी (25° 59' 50'' उत्तरी अक्षांश, 82° 9' 20'' पूर्वी देशान्तर), धर्मनपुर (26° 1' 0'' उत्तरी अक्षांश, 82° 5' 10'' पूर्वी देशान्तर), उतरास (25° 58' 30'' उत्तरी अक्षांश, 82° 8' 30'' पूर्वी देशान्तर)। ज्यामितिक लघु पाषाण उपकरणों वाले तीन स्थलों का उत्खनन भी हुआ है। जिससे इस संस्कृति के विविध पक्षों पर प्रकाश पड़ा है। ये उत्खनित स्थल हैं प्रतापगढ़ मे स्थित सराय नाहर राय, महदहा और दमदमा।

सराय नाहर राय (24° 48' उत्तरी अक्षांश, 81° 50' पूर्वी देशान्तर) :

प्रतापगढ़ से 15 किलोमीटर दक्षिण पश्चिम मे एक धनुषाकार झील के किनारे स्थित है। यह झील अब सूख चुकी है। सराय नाहर राय मे किये गये उत्खनन से लघु पाषाण उपकरण, गर्त चूल्हे, कब्रो मे दफनाएं हुए नर ककाल आदि प्राप्त हुए है।

सार्वजनिक गर्त चूल्हा तथा फर्श के प्रमाण मिले हैं जिससे पता चलता है कि ये लोग सामूहिक रूप से रहते थे। इस फर्श के चारों ओर चार गोलाकार गड्ढे मिले है जिनमें लट्ठा गाडकर छत बनायी जाती थी। गर्त चूल्हे गोल, अण्डाकार अथवा असामान्य हैं। चूल्हे दो बार प्रयोग करने के प्रमाण मिले हैं।

चूल्हो से जानवरो की जली, अधजली बहुत सी हड्डियाँ मिली हैं। इनका उपयोग भोज्य सामग्री के रूप में हुआ होगा। ये लोग गाय, भैस, भेंड़, बकरी, हाथी, कछुआ, मछली को जानते थे। डा0 आलूर के अनुसार सभी पशु जंगली थे।

सराय नाहरराय के उत्खनन से मध्य पाषाणिक लोगों के शवाधान प्रणाली पर विस्तृत प्रकाश पड़ा है। शवों को अण्डाकार, छिछली कब्रों में दफनाया जाता था। कब्र मे मृतक को रखने से पहले

3-4 सेमी मोटी मिट्टी की लेयर बिछाई जाती थी मृतक का सिर पूर्व दिशा मे, पैर पश्चिम मे और सांगोपांग लिटाकर रखा जाता था। एक हाथ शरीर के बगल में तथा दूसरे पेट पर रखकर दफनाने की परम्परा थी। मरने के बाद किसी दूसरे जीवन की कल्पना करते थे इसीलिए कब्रों में लघु पाषाण उपकरण जानवरों की हड्डियाँ तथा घोघे आदि मिले हैं। कब्रो को ढँकते समय चूल्हों की राख भी प्रयुक्त होती थी। एक कब्र में चार मुर्दे एक साथ दफनाये हुए मिले हैं। जिसमे पहले एक पुरुष तथा नारी उसके ऊपर वही क्रिया के कंकाल मिले हैं। नारी दोनो मे ही बाई ओर है। क्या ये पति-पत्नी थे?

इस स्थल से चाल्सेडनी, अगेट, जैस्पर और कार्नेलियन आदि पत्थरों पर निर्मित लघु-पाषाण उपकरण निर्माण की विभिन्न आवस्थाओ में प्राप्त हुए है। उपकरण समुदाय मे नोक, भूथड़े ब्लेड, फलक, अर्द्धचन्द्र, विषमबाहु, खुर्चनी तथा तक्षणी का उल्लेख किया जा सकता है। हड्डियों पर बने उपकरणो की संख्या कम है। लेकिन कुछ पशुओ के सींगो से जमीन खोदने का काम लिया जाता था।

महदहा (25° 58' 2'' उत्तरी अक्षांश, 82° 11' 30'' पूर्वी देशान्तर) :

गंगा घाटी का यह पुरास्थल पट्टी तहसील मुख्यालय से 5 किलोमीटर उत्तर तथा प्रतापगढ़ से 31 किलोमीटर उत्तर पूर्व में गोखुर झील के पश्चिम तट पर महदहा गाव से पूर्व में स्थित है। यह पुरास्थल 8000 वर्ग मीटर क्षेत्र मे फैला हुआ है। 1978 मे प्रो0 जी0 आर0 शर्मा के निर्देशन में वी0 डी0 मिश्र तथा जे0 एन0 पाल ने उत्खनन, बचाव कार्य किया था।

मदहदा के आवास तथा शवाधान क्षेत्र मे मध्य पाषाणिक मानव के सांस्कृतिक अवशेष 60 सेमी0 मोटे जमाव में दबे पड़े हैं। इतने मोटे जमाव से इस स्थल पर मध्य पाषाणिक मानव के एक लम्बे समय तक रहने का बोध होता है। इस जमाव से जली हुई हड्डियाँ तथा लघु पाषाण उपकरणो के अवशेष मिले हैं।

उत्खनित कब्रगाहो के अध्ययन के आधार पर उन्हें चार कालखण्डों मे विभाजित किया गया है। महदहा के कब्रगाह से कुल 30 शवाधनो का उत्खनन किया गया है। यहाँ की समाधियाँ भी छिछली और अण्डाकार हैं जिनमें मृतकों को सिर पश्चिम में तथा पैर पूर्व मे करके सांगोपांग लिटाकर

दफनाया गया है। अधिकतर मृतको के कपाल बायीं ओर झुके हुए हैं।

दो समाधियों में दो युग्म शवाधान के प्रमाण मिले है। दोनों शवाधानो मे पुरुष आभूषण युक्त थे। शवाधान - IX के ककाल मे हिरण शृंगो की पाँच छल्लो की माला थी तथा शवाधान - V का पुरुष 12 छल्लों की माला गले मे पहने था। बायें कान में कुण्डल धारण किये था।

उत्खनन मे 35 गर्त चूल्हे मिले हैं। इनमे पशुओं की हड्डियाँ भी मिली हैं। एक चूल्हे मे भैंसे का पूरा शिर मिला था।

उत्खनन से प्राप्त पशुओ के हड्डियों के अध्ययन से स्पष्ट है कि ये लोग साभर, चीतल, बारहसिघा, जंगली सुअर, गैण्डा, हाथी आदि से परिचित थे, जो उनकी भोजन था।

उत्खनन मे लघु पाषाण उपकरणो मे ब्लेड, शर, भुथड़े, पार्श्व ब्लेड, अर्द्ध चान्द्रिका, स्क्रेपर, त्रिभुज, खातयुक्त ब्लेड, बेधक, समलम्ब चतुर्भुज प्राप्त हुए थे। इन्हे चाल्सेडनी, चर्ट, कार्नेलियन अग्रेट, क्वार्टज आदि पर बनाया गया था। हड्डी के उपकरण अधिक संख्या में मिले है। यहाँ से सिल, लोढ़े भी मिले है जिनका उपयोग बीजान्नो को पीसने के लिए किया जाता था।

दमदमा (26° 10' 0'' उत्तरी अक्षांश, 82° 10' 36'' पूर्वी देशान्तर) :

दमदमा का पुरास्थल महदहा से 5 किलोमीटर उत्तर-पश्चिम में बारीकलां गाँव के पास स्थित है। यह पुरास्थल पीली नदी की सहायक तम्बूरा नाले की दो भुजाओ के संगम पर स्थित है। यहाँ पर 8,750 वर्ग मीटर के क्षेत्र में उत्खनन किया गया जिसके परिणामस्वरूप 1.5 मीटर मोटा आवासीय जमाव प्रकाश मे आया है जिसे 10 स्तरों में विभाजित किया गया है।

यहाँ पर पाँच सत्रो में किये गये उत्खनन से गंगा के मैदान की मध्य पाषाणिक सस्कृति के महत्वपूर्ण पक्षो पर प्रकाश पड़ा है। यहां से 41 मानव शवाधान प्रकाश में आये हैं। यहाँ पर 5 समाधियों में युग्म शवाधान के प्रमाण मिले हैं और एक समाधि मे 3 कंकाल मिले हैं। कुछ शवाधानो में लघु पाषाण उपकरण, हड्डी के लम्बे शर, हाथी दांत का छिद्रित लटकन आदि भी मिले है। कब्रगाह आवासीय क्षेत्र में थे। कुछ कब्रो की भूमि जली हुई है लगता है कि दफनाने से पूर्व अग्निक्रिया भी की जाती रही होगी।

इस पुरास्थल से गर्त अथवा छिछले चूल्हे भी मिले हैं जिनमें जली पशुओं की हड्डियाँ मिली हैं।

उत्खनन में सभी स्तरो से चर्ट, चाल्सेडनी, क्वार्टज, अगेट, कार्नेलियन आदि पत्थरों पर निर्मित लघु पाषाण उपकरणो मे ब्लेड, भुथड़े पार्श्व ब्लेड, त्रिभुज, समलम्ब चतुर्भुज, स्क्रेपर, छिद्रक, अर्द्धचन्द्रिका आदि सम्मिलित है। सभी स्तरों से प्राप्त सिल-लोढ़े विशेष उल्लेखनीय हैं। इनकी अर्थ व्यवस्था मे अनाजो का महत्व पशु मांस से अधिक था।

यहा से दो कार्बन तिथियाँ उपलब्ध हैं। जो क्रमशः 8640 ± 65 तथा 8,365 ± 65 वर्ष प्राचीन है।[1]

दोनो क्षेत्रों की मध्य पाषाणिक संस्कृति शिकार, मत्स्य पालन एवं गहन संचयन अर्थ व्यवस्था से संबंधित है तथा मध्य पाषाणिक संस्कृति सम्बन्धी आवास स्थल प्रकाश में आये हैं। विन्ध्य क्षेत्र के उत्खनित मध्य पाषाणिक पुरास्थलो मे बघईखोर, मोरहना पहाड़, लेखहिया, चोपनीमाण्डो, घघरिया, बघोर-II, मेरहौली और बांकी मुख्य हैं तथा गगा घाटी में सराय नाहर राय, महदहा, दमदमा मुख्य हैं। इन स्थलो के उत्खनन से मध्य पाषाणिक उपकरणो के तकनीकी एवं आकारिकी विकास की विविध अवस्थाओं की जानकारी प्राप्त हुई है।

विन्ध्य क्षेत्र के मध्य पाषाणिक लोग शिलाश्रय अथवा खुले आसमान में 3 मीटर व्यास वाली छोटी झोपड़ियों में रहते थे। ये झोपड़ियाँ खम्भों पर आधारित थी। इनकी फर्श चौरस बलुआ पत्थर के टुकड़ो से बनी थी। दीवारें नरकूल एवं बांस की बनी पट्टियों से बनी थी। चोपनी माण्डो के अन्तिम अवस्था के फर्श पर लघु पाषाण उफकरण, निहाई, हथौड़ा, गोल पत्थर, सिल-लोढ़ा, आदि पाये गये हैं। स्पष्टतया ये झोपड़ियाँ मात्र निवास के लिए नही थी, बल्कि ये अन्य प्रकार के क्रिया कलापो जैसे लघु पाषाण उपकरणों के निर्माण, भोजन पकाने आदि के लिए भी प्रयुक्त होती थी। मध्य गंगा घाटी के मध्य पाषाण संस्कृति के लोग गोलाकार झोपड़ियों में रहते थे। लेकिन इन झोपड़ियो का निर्माण किस तरह किया गया इसके बारे मे जानकारी नहीं है। स्तम्भगर्त के प्रमाण सिर्फ सराय नाहर राय के सामुदायिक झोपड़ी के फर्श और चोपनी माण्डो के फर्शों से प्राप्त हुए हैं। ये फर्श कई पर्तों मे प्राप्त होती है। फर्श के भीतर तथा बाहर गोलाकार गर्त चूल्हे प्राप्त हुए हैं। विन्ध्य

---

1 वर्मा, आर० के०, मिश्रा, बी० डी०, पाण्डेय, जे० एन० और पाल, जे० एन० - 1985, ए प्रिलिमिनरी रिपोर्ट ऑन दि इक्सकैवेशन्स एट दमदमा, 1982-1984। *मैन एण्ड इनवायरनमेण्ट-9*, पृष्ठ 46-65

क्षेत्र से भी एक सामुदायिक चूल्हे का साक्ष्य मिला है जो दो झोपड़ियों के बीच में खाली जगह में गड्ढे वाले चूल्हे बनाये जाते थे।

मध्य पाषाणिक मानव वन्य अनाजों को एकत्र करते थे, जो केवल सिल-लोढ़े से ही प्रमाणित नही होता बल्कि जले हुए मिट्टी के टुकड़ों मे बन्द वन्य चावल की भूसी से भी प्रमाणित होता है। गंगा घाटी का मध्य पाषाणिक मानव भी भोजन मे वन्य अनाजो का प्रयोग सिल-लोढ़े से पीसकर करता था।[1]

मध्य पाषाणिक संस्कृति की अन्तिम अवस्था में मृद्भाण्ड कला उद्योग का शुभारम्भ हुआ, जिसके प्रमाण मोरहना पहाड़, बघही खोर, लेखहिया, चोपनी माण्डों एवं घघरिया नामक उत्खनित पुरास्थलों से मिलता है। यहां से प्राप्त पात्रों मे साधारण किनारे वाले तसले एवं छोटे कलश मुख्य है। ये पात्र छोटे है अत. इनका प्रयोग खाने या पीने के लिए ही होता रहा होगा, भण्डारण के लिए नहीं।[2]

विन्ध्य क्षेत्र के शैलचित्रो से मध्य पाषाणिक मानव के सामुदायिक जीवन के कुछ पहलुओं पर प्रकाश पड़ता है, जैसे - नृत्य करते पुरुष-महिलाएं, शिकार करते हुए, पशुओ को फंसाने एवं मत्स्यपालन के दृश्य। ये चित्र उनके सौदर्य बोध को प्रदर्शित करने के अलावा सामाजिक जीवन के विविध पहलुओ को भी उजागर करती हैं।[3]

विन्ध्य क्षेत्र की तरह गगा घाटी के मध्य पाषाणिक सस्कृति की अर्थ व्यवस्था भी शिकार एव संचयन पर आधारित थी। सराय नाहर राय, महदहा एव दमदमा से अनेक चूल्हों के साक्ष्य मिले हैं। इन चूल्हो से जले मिट्टी के ढेर, राख एव जली पशुओं की हड्डियाँ प्राप्त हुई हैं। इन चूल्हों मे घास एव पत्तियो के साथ पशु मांस भूना जाता था। सराय नाहर राय से एक सामूदायिक चूल्हा प्राप्त हुआ है। भैसे, दरियाई घोड़े, हिरन, बारहसिंघा, हाथी, सुअर आदि जंगली पशुओ का शिकार किया जाता था।[4] ये लोग वन्य अनाजो को भी एकत्र करते थे[5]। जिसका प्रमाण दमदमा, महदहा से प्राप्त चौरस

---

1 शर्मा, जी0 आर0 और बी0 बी0 मिश्रा, 1980, *इक्सकैवेशन एट चोपनी माण्डो*, डिपार्टमेन्ट ऑफ एसिएन्ट हिस्ट्री, कल्चर एण्ड आर्कियोलॉजी, यूनिवर्सिटी ऑफ इलाहाबाद

2. पाल, जे0 एन0, 1985, *आर्कियोलॉजी ऑफ सार्दन उत्तर प्रदेश*, सेरेमिक इन्डस्ट्री ऑफ नार्दन विन्धायज, इलाहाबाद

3 पाल, जे0 एन0, 1997, *सेरेमिक इन्डस्ट्री ऑफ दि मेसोलिथिक पीरियड ऑफ दि विन्ध्याज*, इन वी0 डी0 मिश्रा और जे0 एन0 पाल (स0) इण्डियन प्रीहिस्ट्री, 1980

4 आलूर, ए0 के0, 1980, फार्नर रेमाइन फ्राम दि विन्ध्याज एण्ड दि गंगा वैली, इन दि शर्मा, जी0 आर0 कृत *बिगनिग ऑफ एग्रीकल्चर*, इलाहाबाद

5 शर्मा, जी0 आर0, *बिगनिग ऑफ एग्रीकल्चर*, इलाहाबाद

चक्कियो एव सिल-लोढ़े से मिलता है। यहां पर लेप किये हुए गड्ढे मिले हैं कुछ गड्ढो में कई बार लेप किया गया है। कुछ गड्ढे पूरे पके हैं, कुछ आधे। कुछ गड्ढों में जली मिट्टी के टुकड़े, पशुओ की हड्डियाँ एव राख नहीं प्राप्त हुए हैं। ऐसे गड्ढो के बारे में स्पष्ट रूप से कुछ नही कहा जा सकता। इन उथले गड्ढो को वन्य अनाजो के भण्डारण हेतु प्रयोग किया जाता रहा होगा। लघु पाषाण उपकरणों में परिष्कृत ब्लेड, पृष्ठ ब्लेड, हसुंवे, खुरचनी (स्क्रेपर), वाणाग्र, त्रिभुज और समलम्ब चतुर्भुज आदि मुख्य हैं। इन उपकरणों का प्रयोग शिकार करने एवं घास काटने के लिए किया जाता था। महदहा एवं दमदमा से प्राप्त अनेक हड्डी के बने उपकरणों का प्रयोग इन्हीं कार्यों मे किये जाते थे।

दोनो क्षेत्रों के कुछ मध्य पाषाणिक स्थलो से विस्तृत मानव शवाधान के प्रमाण प्राप्त हुए हैं जिससे मध्य पाषाणिक लोगों की सामाजिक सरचना के संबंध मे जानकारी प्राप्त होती है।[1] मध्य पाषाणिक मानव अपने मृतकों को उसी क्षेत्र में दफन करते थे, जिस क्षेत्र मे वे रहते थे, तथा दैनिक जीवन के विविध क्रिया कलाप करते थे। विन्ध्य क्षेत्र मे मध्य पाषाणिक मानव अपने मृतको को शिलाश्रयो मे दफन करते थे। गगा घाटी के सराय नाहर राय, महदहा, एवं दमदमा नामक मध्य पाषाणिक स्थलों के शवाधान एवं गर्त चूल्हे एक ही क्षेत्र मे स्थित हैं।

सराय नाहर राय, महदहा एव दमदमा की समाधियाँ छिछली और अण्डाकार हैं। समाधियो मे कंकालो का सिर पश्चिम मे पैर पूरब में करके दफनाये गये हैं लेकिन महदहा एवं दमदमा मे पूर्व-पश्चिम दिशा में भी कंकाल मिलते हैं। यह सम्भव है कि मानव शवाधान की दिशा मे यह अन्तर दो भिन्न जन जातियो से सम्बन्धित हो। महदहा से एक मानव कंकाल मिला है जिसके दोनों पैर ऊपर की ओर मुड़े हैं, बायां हाथ कमर के नीचे है तथा दाहिना हाथ दोनों जांघों के मध्य स्थित है। चूँकि इसकी हड्डियो मे कोई विकृति नहीं है तथा घुटने के पास उर्वस्थि में विच्छेद है इससे सन्देह है कि यह व्यक्ति पहले दण्डित किया गया होगा, और मृत्यु के बाद इसे इस स्थिति मे दफन कर दिया गया होगा।

तुलनात्मक अध्ययन में मध्य गंगा घाटी के महदहा, दमदमा के मध्य पाषाणिक शवाधान तथा विन्ध्य क्षेत्र के लेखहिया, बघहीखोर शिलाश्रय के मध्य पाषाणिक शवाधान पुरातात्विक दृष्टि से

---

1. चाइल्ड, वी0 जी0, 1963, *पुर्वोक्त*, पृष्ठ - 53

रुचिकर हैं। दोनो क्षेत्रों मे मृतको को आवासीय क्षेत्रों मे दफन किया जाता था। विन्ध्य क्षेत्र के शवाधान महदहा शवाधान से अधिक विस्तृत थे। यहा लेखहिया से सत्रह मानव कंकाल मिले है। महदहा तथा विन्ध्य क्षेत्र के कब्रो मे पश्चिम की ओर सिर करके तथा पूर्व दिशा में पैर करके दफनाया हुआ मानव कंकाल मिला है। इसके अपवाद हैं महदहा में दिक्-स्थापना पूर्व पश्चिम मे है।

साक्ष्यों से प्रतीत होता है कि विन्ध्य क्षेत्र के मध्य पाषाणिक लोगों की मृत्यु कम उम्र मे हो जाती थी। बघहीखोर शिलाश्रय से 20-21 वर्ष की एक युवती का कंकाल मिला है। इसी प्रकार लेखहिया मे 12 ककालो की उम्र आंकी गयी है इसमे से 10 युवक 20 वर्ष से अधिक उम्र के तथा दो तरुण अवस्था के थे।

महदहा के मध्य पाषाणिक मानव विन्ध्य क्षेत्र के मानव के तुलना मे अधिक लम्बे, सुगठित शरीर वाले थे। महदहा के सबसे लम्बे मानव की लम्बाई 1.80 मीटर, जबकि लेखहिया के मानव की लम्बाई 1.75 मीटर थी। इस तरह दोनो क्षेत्रो मे पाये गये ककालो के मध्य विरोधाभाष है।[1]

महदहा में गर्त चूल्हे सराय नाहर राय की तरह गोल अथवा अण्डाकार हैं लेकिन कभी-कभी इन चूल्हों को गीली मिट्टी से लीपा जाता था। मिट्टी का यह लेप भी पक गया है। सम्भवतः लेपयुक्त गर्त चूल्हो मे मांस पिण्ड रखकर इन पर घास-फूस रख दिया जाता था और मिट्टी के टुकड़ों से ढँककर आग लगा दी जाती थी। यही कारण है कि इन चूल्हों मे जली हड्डियाँ और राख के अतिरिक्त जली मिट्टी के टुकड़े भी प्राप्त होते हैं। आवास स्थल और बध क्षेत्र से लगे हुए झील में जानवरों की हड्डियाँ लघु पाषाण उपकरण प्राप्त हुए है।

यहां से जिन जानवरो की हड्डियाँ मिली हैं। उनमें बैल, जंगली भैंस, हिरण, बारहसिंघा, सुअर, दरियाई घोड़ा, गैंडा, हाथी आदि का उल्लेख किया जा सकता है। ये सभी जानवर जंगली थे। पशु पालन का कोई प्रमाण नही मिलता है। लेकिन आदमगढ़, बघोर आदि से पालतू एवं वन्य दोनों प्रकार के पशुओ के अस्थि अवशेष प्राप्त हुए हैं।

विन्ध्य क्षेत्र एव मध्य गंगा घाटी के मध्य पाषाणिक स्थलो से लघु पाषाण उपकरण प्राप्त हुए हैं। सिल-लोढ़े दोनो क्षेत्रों से मिले हैं। महदहा से हड्डी के बने उपकरण प्राप्त हुए हैं।

---

1 शर्मा, जी0 आर0, वी0 डी0 मिश्रा, डी0 मण्डल, बी0 बी0 मिश्रा एवं जे0 एन0 पाल, 1980, *बिगनिंग ऑफ एग्रीकल्चर*, इलाहाबाद, पृष्ठ 113

उत्तरी विन्ध्य क्षेत्र एवं मध्य गंगा घाटी की नव पाषाण कालीन संस्कृतियां

दोनो क्षेत्रो की मध्य पाषाण संस्कृति की परवर्ती अवस्था मे वन्य अनाजों का एकत्र, पीसने वाले उपकरणों जैसे चक्की एव सिल का अधिक उपयोग, अर्ध स्थायी अधिवास, पारिवारिक जीवन की संकल्पना का विकास, मृद्भाण्डो का प्रचलन आदि इस तथ्य की ओर स्पष्ट संकेत करते हैं कि इस क्षेत्र की नव पाषाणिक सस्कृति के उद्भव का बीजारोपण विन्ध्य क्षेत्र की मध्य पाषाणिक सस्कृति से हुआ। विन्ध्य क्षेत्र के नव पाषाणिक संस्कृति के उत्खनित पुरास्थलो में कोलडिहवा, महगडा, पंचोह, इन्दारी, टोकवा एवं कुन्झुन मुख्य हैं तथा गंगा घाटी के नवपाषाणिक स्थलों में चिरांद, चेचर, कुतुबपुर, सेनुवार, ताराडीह, इमलीडीह एवं सोहगौरा मुख्य हैं। लघु पाषाण उपकरण उद्योग, नवपाषाणिक गोलाकार कुल्हाड़ियाँ एवं डोरी छाप पात्र (कटोरे और घड़े) आदि विन्ध्य क्षेत्र एव गगा घाटी के नव पाषाणिक संस्कृति की सामान्य विशेषताएं हैं। दोनों क्षेत्रो की भौतिक संस्कृति के तुलनात्मक अध्ययन से संकेत मिलता है कि गगा घाटी की नव पाषाणिक संस्कृति विन्ध्य क्षेत्र की नव पाषाणिक संस्कृति से बहुत अधिक प्रभावित है। यद्यपि समृद्ध, हड्डी पर बने उपकरण उद्योग, मृद्भाण्ड कला उद्योग, आग में पकाने के बाद पात्रों पर की गयी चित्रकारी, पात्रों पर चित्रण एवं पत्थरों के मनके यह प्रदर्शित करते है कि विन्ध्य क्षेत्र की तुलना मे गंगा घाटी की नवपाषाणिक संस्कृति अधिक विकसित थी।

महगड़ा[1] के क्षैतिज उत्खनन से पता चला है कि नव पाषाण कालीन लोग गोलाकार या अण्डाकार झोपड़ियो मे रहते थे। गोलाकार झोपड़ियो का व्यास 6.4 से 4 3 मीटर है। इन झोपड़ियों की छत खम्भों पर आधारित थी। इनकी दीवारें बांस बल्ली और घास-फूस से भी बनाई जाती थी जिस पर मिट्टी का मोटा लेप भी लगाया जाता था, जिसके प्रमाण बांस-बल्ली के छाप से युक्त जली मिट्टी के टुकड़ो के रूप में प्राप्त हुए हैं। इस समय झोपड़ियाँ दूर-दूर स्थित थी। दो-तीन झोपड़ियों से मिलकर एक घर बनता था। प्रत्येक घर अपने में आत्मनिर्भर था, जिसमे खाद्य परिचालन एवं खाद्य उत्पादन सम्बन्धी उपकरण होते थे, जैसे चक्की, सिल-लोढ़ा, मृद्भाण्ड, मृण्मनके, लघु पाषाण उपकरण, अस्थि उपकरण आदि। झोपड़ियो से प्राप्त की गयी इन पुरावशेषों के विश्लेषण से किसी विशिष्ट सामाजिक विभिन्नता का पता नही चलता।[2]

---

1. शर्मा, जी0 आर0, 1980, *बिगनिंग ऑफ एग्रीकल्चर*

2 मण्डल, डी0 1997, नियोलिथिक कल्चर ऑफ दि विन्ध्याज · इक्सकैवेशन एट महगड़ा, बी0 डी0 मिश्रा और जे0 एन0 पाल *इण्डियन प्रीहिस्ट्री*, 1980

गगा घाटी के नवपाषाणिक पुरास्थल चिरांद में हुयी लम्बवत उत्खनन से गोलाकार एवं अर्द्धगोलाकार झोपड़ियों के प्रमाण प्राप्त हुए हैं।[1] इनमें भी नरकुल एवं बांस के छाप से युक्त जले हुए मिट्टी के टुकड़े प्राप्त हुए हैं।[2]

विन्ध्य क्षेत्र एवं गंगा घाटी के नव पाषाणिक मानव चावल की कृषि करते थे। चिरांद से गेहूँ, जौ, मूंग आदि के प्रमाण प्राप्त हुए है। बड़ी संख्या में प्राप्त सिल-लोढ़ा भी इसका द्योतक है कि उनकी अर्थव्यवस्था मे कृषि का बड़ा योगदान था। पालतू जानवरों में भेंड़, बकरियाँ मुख्य थे। लघु पाषाण उपकरणो में जैसे सूजे, त्रिभुज, अस्थि बाणों आदि की प्राप्ति से यह कहा जा सकता है कि अभी भी लोग वन्य जानवरो जैसे हिरण, बारहसिंघा, सुअर (विन्ध्य क्षेत्र में) तथा हाथी, गैंडा, हिरण बारहसिंघा (गंगा घाटी में) आदि का शिकार करते थे। मछलियाँ, कछुआ एवं पक्षियो की हड्डियाँ भी काफी सख्या मे मिली है।

नव पाषाण संस्कृति के मृद्भाण्ड कला उद्योग से भी उनके आत्मनिर्भर खाद्य उत्पादन अर्थ व्यवस्था के स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं। दोनों क्षेत्रों के नव पाषाणिक पुरास्थलों से हाथ से बने हुए बर्तन मिले हैं। विन्ध्य क्षेत्र से रस्सी छाप पात्र परम्परा, खुरदरे पात्र परम्परा, ओपदार लाल पात्र परम्परा और ओपदार काली पात्र परम्परा के बर्तन मिले हैं जबकि गंगा घाटी से लाल, भूरे, काले एवं काले और लाल पात्र परम्परा के मिट्टी बर्तन प्राप्त हुए हैं। यहां से कुछ बर्तन ऐसे भी मिले हैं जो धीरे-धीरे चाक पर घुमाकर बनाया गया है। टोंटीदार कटोरे दोनों क्षेत्रों से प्राप्त हुए है। प्रमुख पात्रो में गहरे एव छिछले कटोरे, घड़े, थाली तथा हांडी (विन्ध्य क्षेत्र से) तथा चौड़े एवं संकरे मुँह वाले गोलाकार घड़े, साधार वाले कटोरे, ओठवाले कटोरे (गगा घाटी से) से प्राप्त हुए हैं।

लघु पाषाण उपकरणो मे जैसे, समानान्तर द्विबाहु ब्लेड, भूथड़े, पार्श्व ब्लेड, दन्तुरित ब्लेड, तिरछा पार्श्वान्त ब्लेड, शर, स्क्रेपर, बेधक, समलम्ब चतुर्भुज, नवपाषाणिक कुल्हाड़ियाँ, आदि प्रमुख है। हड्डियों और श्रृंगो पर बने उपकरणों मे सुईयां, शर, छिद्रक, पिन्स, पुच्छल एवं छिद्रयुक्त वाणाग्र, स्क्रेपर, लटकन आदि मिले है। सिल-लोढ़ा तथा कुल्हाड़ियाँ आदि भी मिली हैं। विन्ध्य क्षेत्र

---

1. नारायन, एल० ए० 1970, नियोलिथिक सेटेलमेण्ट एट चिराद, *जरनल ऑफ बिहार रिसर्च सोसाइटी*, वैल्यूम-56, पृष्ठ 1-35

2. पाल, जे० एन०-2000, मेसोलिथिक एण्ड नियोलिथिक सोसाइटीज ऑफ दि विन्ध्याज एण्ड दि मिडिल गंगा प्लान, बी० डी० मिश्रा एंड जे० एन० पाल, 2000, *सोशल हिस्ट्री एण्ड सोशल थ्योरी*

एव गंगा घाटी के नवपाषाणिक लोगों की अर्थ व्यवस्था खाद्य उत्पादन एवं शिकार सचयन प्रणाली पर आधारित थी।

उपलब्ध प्रमाणो के आधार पर यह पता चलता है कि मध्य पाषाणिक लोगो की अपेक्षा नव पाषाणिक लोगों मे सौन्दर्य बोध अधिक विकसित था।

नव पाषाणिक लोगों के कलात्मक अभिरुचि को अभिव्यक्ति करने वाले उपादानों मे मनके, घोंघे के लटकन, पत्थर एवं हड्डियों के मनके, हड्डियों के लटकन, चिरांद से प्राप्त मनके एवं अस्थि की चूड़ियाँ, सोहगौरा से प्राप्त हड्डी के मनके आदि प्रमुख हैं। चिराद से प्राप्त (Socketed Comb) कघा बाल संवारने की उनकी रुचि प्रदर्शित करता है।

अनेक प्रकार के सांस्कृतिक अवशेष जैसे हस्त निर्मित मृद्भाण्ड, शिकार करने, खाद्य उत्पादन उपकरण, आभूषण एव झोपड़ियों वाले अधिवास यह स्पष्ट संकेत करते हैं कि विन्ध्य क्षेत्र एव गंगा घाटी की नव पाषाणिक समाज पूर्णतः आत्म निर्भर था।

विन्ध्य क्षेत्र की नवपाषाणिक संस्कृति और मध्य गंगा घाटी की नव पाषाणिक संस्कृति की तुलना करने पर कुछ मनोरंजक तथ्य सामने आते हैं। दोनों सांस्कृतियों के नव पाषाणिक कुल्हाड़ियों मे साम्य है और एक ही तरह के लघु पाषाण उपकरण प्राप्त होते हैं। चिरांद में पात्रों को पकाने के बाद चित्रित भी किया गया है लेकिन विन्ध्य क्षेत्र मे पात्रो को चित्रित करने की परम्परा नहीं थी और न तो उन्हे पकाने के बाद खरोच कर अलंकृत ही किया गया है। पात्रों को घोंटकर चिकना बनाने की प्रथा सें दोनो सस्कृतियो का परिचय था। एक ही तरह के घड़े और कटोरे तथा टोटीदार बर्तन भी दोनो संस्कृतियो से प्राप्त हुए हैं। चिरांद से मिलने वाली मृण्मूर्तियाँ भी महगड़ा, कोलडिहवा और पंचोह से नहीं मिली हैं। हड्डियों के बने उपकरणो की संख्या भी विन्ध्य क्षेत्र में अधिक नही है।

उपरोक्त विश्लेषण से यही प्रतीत होता है कि चिरांद की नव पाषाणिक सस्कृति अधिक विकसित है जबकि विन्ध्य क्षेत्र की यह संस्कृति अभी भी शैशवावस्था मे है। उपलब्ध कार्बन तिथियों के आलोक में भी चिरांद की नव पाषाणिक सस्कृतियां विन्ध्य क्षेत्र की नव पाषाणिक संस्कृति से काफी बाद की प्रमाणित होती है।[1]

---

1 मिश्रा, वी० डी०, 1977, *सम ऐस्पेक्ट्स ऑफ इण्डियन आर्कियोलॉजी*, पृष्ठ 116

उत्तरी विन्ध्य क्षेत्र एवं मध्य गंगा घाटी की ताम्र पाषाण कालीन संस्कृतियां

उत्तरी विन्ध्य क्षेत्र बांदा, इलाहाबाद, मिर्जापुर एव चन्दौली में फैला हुआ है तथा पश्चिम मे गंगा यमुना संगम से पूर्व में बिहार, बंगाल सीमा तक फैली मध्य गंगा घाटी के प्रागैतिहासिक मानचित्र पर ताम्रपाषाणिक संस्कृति का स्वरूप स्पष्ट होने लगा है। यद्यपि इन क्षेत्रों में सर्वेक्षित एवं उत्खनित स्थलों की संख्या 240 से भी अधिक है इनमें से विन्ध्य क्षेत्र के कोलडिहवा[1], बनमिलिया बहेरा[2], ककोरिया[3], तकियापेर[4], एवं मघा[5] तथा मध्य गंगा घाटी के शृंगबेरपुर[6], राजघाट[7], प्रहलादपुर[8], मसोनडीह[9], सोहगौरा[10], सोनपुर[11], चिरांद[12], ओरिअप[13], चेचर कुतुबपुर[14] एवं चम्पा[15] का उल्लेख किया जा सकता है। अन्य ताम्र पाषाणिक उत्खनित स्थलो

---

1. मिश्रा, बी0 डी0, 1977, *सम एमपेक्ट्स ऑफ इण्डियन आर्कियोलाजी,* पृष्ठ 107-119

   मिश्रा, बी0 डी0 और बी0 बी0 मिश्रा, 1977, मेगालिथिक कल्चर ऑफ साउथ इस्टर्न उत्तर प्रदेश, इन एल0 गोपाल (सं0) डी0 डी0 *कौशाम्बी कामेमोरैसन वैल्यूम,* पृष्ठ 317

   इण्डियन आर्क्यालाजी · ए रिव्यू, 1971-72, पृष्ठ 44, 1972-73, 1973-74, पृष्ठ 26-27, 1975-76, पृष्ठ 45
2. *इण्डियन आर्कियोलॉजी : ए रिव्यू,* 1962-63
3. *इण्डियन आर्कियोलॉजी : ए रिव्यू,* 1962-63, पृष्ठ 39-41, 1963-64, पृष्ठ 57-58
4. *इण्डियन आर्कियोलॉजी : ए रिव्यू,* 1971-72, पृष्ठ 49
5. इस स्थल का उत्खनन 1980-81 में प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय द्वारा प्रो0 जी0 आर0 शर्मा के निर्देशन में हुआ था।
6. लाल, बी0 बी0 और के0 एन0 दीक्षित, 1981, शृंगवेरपुर : ए की साइट फॉर दि प्रोटोहिस्ट्री एण्ड एर्ली हिस्ट्री ऑफ दी सेन्ट्रल गंगा वैली, *पुरातत्व नं0 10*
7. नारायन, ए0 के0 और टी0 एन0 राय, 1977, *इक्सकैवेशन एट राजघाट,* पृष्ठ 223, 25
8. नारायन, ए0 के0 और टी0 एन0 राय, 1968, *इंक्शकैवेशन एट प्रहलादपुर,* पृष्ठ 63
9. *इण्डियन आर्कियोलॉजी : ए रिव्यू,* 1963-64, पृष्ठ 57-58
10. *इण्डियन आर्कियोलॉजी · ए रिव्यू,* 1961-62, पृष्ठ 56, 1974-75, पृष्ठ 47
11. *इण्डियन आर्कियोलॉजी · ए रिव्यू,* 1956-57, पृष्ठ 18, 1959-60, 1960-61, पृष्ठ 4-5, 1961-62, पृष्ठ 4-5
12. *इण्डियन आर्कियोलॉजी : ए रिव्यू,* 1963-64, पृष्ठ 5-6, 1968-69 से 1971-72
13. वर्मा, बी0 एस0, 1969, ब्लैक एण्ड रेड वेयर इन बिहार, *पाटरीज इन एंसिएन्ट इण्डिया,* बी0 पी0 सिन्हा (सं0), पृष्ठ 107
14. इण्डियन आर्कियोलॉजी : ए रिव्यू, 1977-78, पृष्ठ 17-18
15. सिन्हा, बी0 पी0, 1979, इक्सकैवेशन एट चम्पा, *आर्कियोलाजी एण्ड आर्ट ऑफ इण्डिया,* पृष्ठ 92

में टोकवा[1], खजुरी[2] विन्ध्य क्षेत्र मे तथा झूँसी[3], धुरियापार[4], सिसवनिया[5], भुनाडीह[6], वैना[7], नरहन[8], इमलीडीह[9], खैराडीह[10] (उत्तर प्रदेश) एवं मनेर[11], मांझी[12], सेनुवार[13] (बिहार) आदि मध्य गंगा घाटी में मुख्य हैं (मानचित्र संख्या 4)।

अभी हाल के एक शोध पत्र मे इन स्थलो को स्थायी रूप से सांस्कृतिक विषय वस्तु विशेष रूप से मृद्भाण्ड कला उद्योग, लघु ब्लेड उद्योग एवं हड्डी उपकरण उद्योग के आधार पर तीन वर्गों मे रखा

---

1 मिश्रा, वी0 डी0, बी0 बी0 मिश्रा, जे0 एन0 पाल, एम0 सी0 गुप्ता, 2000, इक्सप्लोरेशन एट टोकवा ए नियोलिथिक चैल्कोलिथिक सेटेलमेन्ट ऑन दि कान्फ्लुएन्स ऑफ बेलन एण्ड अदवा रिवर्स, इन एम0 सी0 भट्टाचार्या, वी0 डी0 मिश्रा, जे0 एन0 पाण्डेय, जे0 एन0 पाल (सम्पादित) *पीपिंग थ्रो दि पास्ट . प्रो0 जी0 आर0 शर्मा, मेमोरियल वैल्यूम,* पृष्ठ 45-57

2. इण्डियन आर्कियोलॉजी . ए रिव्यू, 1985-86, पृष्ठ 75-76, मिश्रा, बी0 बी0 2000, *इवेस्टीगेशन इन टू दि मेगालिथिक कल्चर्स ऑफ इलाहाबाद डिस्ट्रिक्ट, उत्तर प्रदेश,* पृष्ठ 96-97

3 मिश्रा, वी0 डी0, बी0 बी0 मिश्रा, जे0 एन0 पाण्डेय और जे0 एन0 पाल, 1995-96, *ए प्रीलिमिनरी रिपोर्ट ऑन इक्सकैवेशन एट झूँसी-1995, प्राग्धारा न0 6,* पृष्ठ 63-66

मिश्रा, वी0 डी0, जे0 एन0 पाल और एम0 सी0 गुप्ता, 1997-98, फरदर इक्सकैवेशन एट झूँसी, *प्राग्धारा न0 9,* पृष्ठ 43-49

मिश्रा, वी0 डी0, जे0 एन0 पाल और एम0 सी0 गुप्ता, 1998-99, फरदर इक्सकैवेशन एट झूँसी, *प्राग्धारा नं0 10,* पृष्ठ 23-30

4 सिह, पी0, ए0 के0 सिह और इन्द्रजीत सिंह, 1991-92, ट्रायल डिगिंग एट धुरियापार, *प्राग्धारा न0 2,* पृष्ठ 55-60

5 मनी, बी0 आर0, 1995-96, फरदर आर्कियोलॉजिकल, इवेस्टीगेशन इन सरयूपार एरिया, *प्राग्धारा नं0 6,* पृष्ठ 153-156

6 सिह, पी0, ए0 के0 सिह-1997-98 - दि इक्सकैवेशन एट भूनाडीह, जनपद बलिया (उ0 प्र0) *प्राग्धारा न0 8,* पृष्ठ 11-20

7. सिह, पी0, ए0 के0 सिह, 1995-96, *इक्सकैवेशन एट वैना,* प्राग्धारा सं0 6, पृष्ठ 41-66

8 सिह, पी0, 1994, *इक्सेकैवेशन एट नरहन* (1984-89), बी0 एच0 यू0 वाराणसी, तथा बी0 आर0 पब्लिसिंग कारपोरेशन, नई दिल्ली

9 सिंह, पी0, 1992-93, आर्कियोलॉजिकल इक्सकैवेशन एट इमलीडीह खुर्द प्राग्धारा न0 3, पृष्ठ 21-35

सिंह, पी0, ए0 के0 सिह एण्ड इन्द्रजीत सिंह, 1991-92, इक्सकैवेशन एट इमलीहीड खुर्द, *पुरातत्व 22,* पृष्ठ 120-122

10. इण्डियन आर्कियोलॉजी . ए रिव्यु, 1981-82, पृष्ठ 67-70

सिह, बी0 पी0 1987-88, खैराडीह, ए चैल्कोलिथिक सेटेलमेण्ट, *पुरातत्व नं0 18,* 28-34

11. इण्डियन आर्कियोलॉजी ए रिव्यू, 1984-85, पृष्ठ 11-12

12. इण्डियन आर्कियोलॉजी : ए रिव्यू, 1984-85, पृष्ठ 12-13

राय, टी0 एन0, 1985-86, इक्सकैवेशन एट माझी ए प्रीलिमिनरी रिपोर्ट, *पुरातत्व न0 16,* पृष्ठ 29-32

13. सिह, बी0 पी0-1989-90, दि चैल्कोलिथि कल्चर्स ऑफ सार्दन बिहार एस रेबअलेड बाई इक्सपोलेरेशन एण्ड इकसकैवेशन इन डिस्ट्रिक्ट रोहतास, पुरातत्व नं0 20, पृष्ठ 83-92
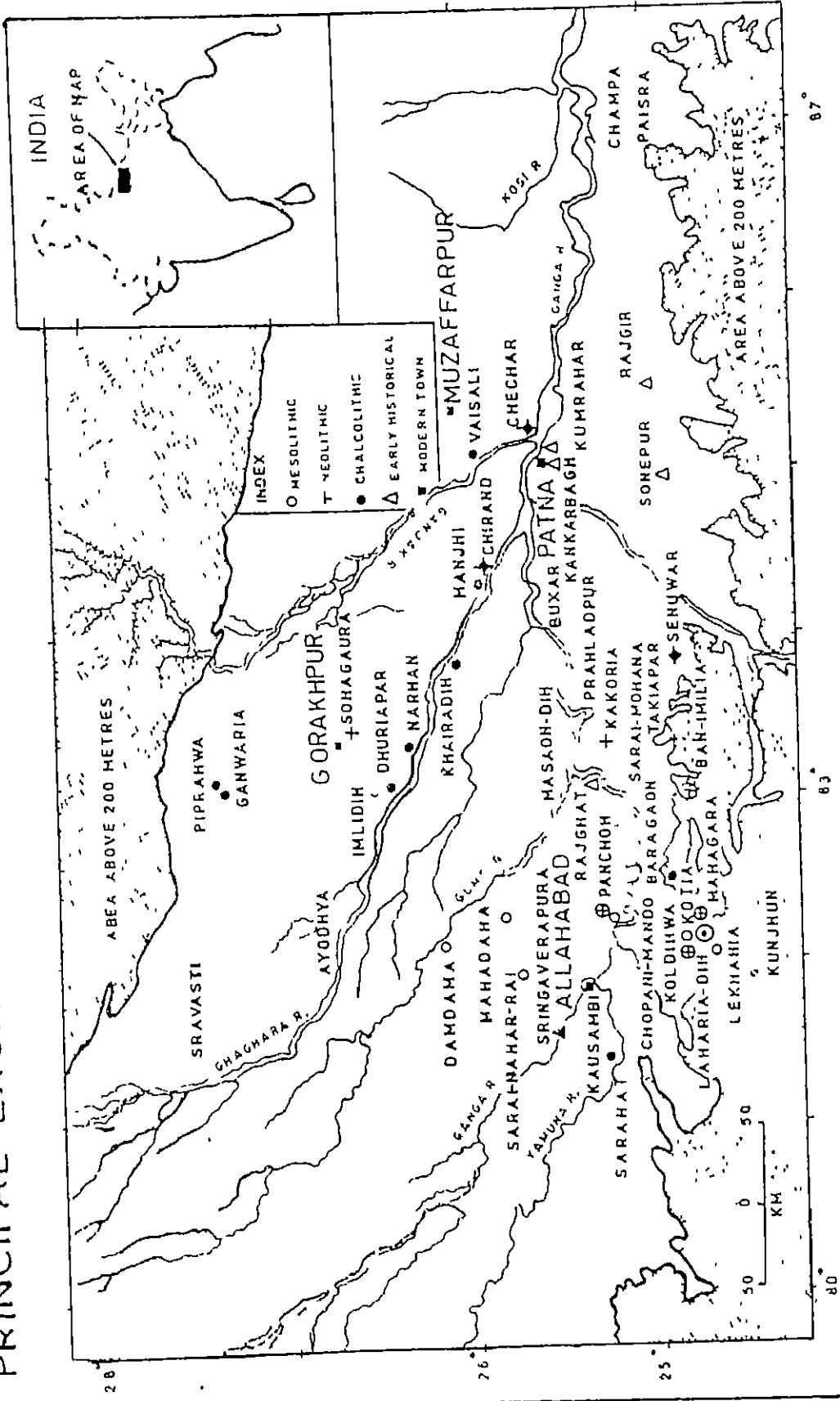
मानचित्र संख्या 4 – मध्य गंगा घाटी के उत्खनित स्थल

गया है। विन्ध्य क्षेत्र के स्थल जैसे ककोरिया, टोकवा एवं मघा प्राचीनतम् वर्ग का प्रतिनिधित्व करते है। मृद्भाण्ड कला समूह सामान्य है। इसके अलावा लघु ब्लेड उद्योग एक प्रमुख विशेषता है। अभी तक इन स्थलो पर हड्डी उद्योग नहीं पाये गये है। प्रमुखतया ये स्थल बृहत्पाषाणिक शवाधनो से सम्बन्धित है।

विन्ध्य क्षेत्र के कोलडिहवा-II एवं राजा नाल का टीला तथा मध्य गंगा घाटी के कौशाम्बी-I, सोहगौरा-II, सोनपुर-I ए, चिरांद-IIए, चेचर-I बी, झूँसी-I ए, नरहन-I, इमलीडीह-II, खैराडीह-II, ताराडीह-II एवं सेनुवार-II आदि दूसरे वर्ग मे आते हैं। चित्रित काले और लाल पात्र के टुकड़े, काले लेप वाले पात्र और लाल पात्र इन स्थलो से प्राप्त हुए हैं। लघु ब्लेड उद्योग भी कुछ स्थलो पर पाये गये हैं। इस वर्ग के मृद्भाण्ड कला उद्योग पकाने एव परिपूर्णता मे प्रथम वर्ग की अपेक्षा अधिक विकसित हैं।

राजघाट-I ए, प्रहालदपुर-I ए, सोनपुर-I बी, चिराद-II बी, चेचर-Iसी, कौशाम्बी-II, झूँसी-I बी, नरहन-II, इमलीडीह-III, ओरिअप-I, ताराडीह-III एवं मनेर-I तृतीय वर्ग जिसे सीमान्त ताम्र पाषाणिक कहते हैं। इस वर्ग में द्वितीय वर्ग की आवश्यक विशेषतायें पायी जाती हैं,साथ ही इसमें लौह के प्रयोग का भी प्रमाण है जो सीमित है।

ये स्थल छोटी एव बड़ी नदियो के समीप स्थित है। अधिवासो का आकार समान होकर सामान्य से विस्तृत गांव तक है। इन स्थलो का क्षैतिज उत्खनन नही हुआ है अतः अधिवास नियोजन के सही स्वरूप के विषय मे जानकारी बहुत कम है। कुछ स्थलों से प्राप्त नरकुल एवं बांस की छाप से युक्त जली मिट्टी के टुकड़ों से यह संकेत मिलता है कि दीवारें बांस एवं नरकुल से बनायी जाती थी तथा दोनो तरफ से मिट्टी का लेप लगाया जाता था। कुछ स्थलो से स्तम्भगर्त के साक्ष्य मिले हैं। इससे पता चलता है कि ये लोग गोलाकार एव अण्डाकार झोपड़ियों में रहते थे। कोलडिहवा एवं ककोरिया से मिट्टी के घरो के प्रमाण मिले हैं। ककोरिया के एक घर के फर्श पके मिट्टी के टुकड़ों एव पात्रों के टुकड़ों से बनी पायी गयी है। छत के स्वरूप के बारे मे कोई प्रमाण नहीं मिलता है। यद्यपि नृजातीय प्रमाणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि गोल या लम्बे घरो की छतें शंक्वाकार थी। धूप मे सूखे या आग में पके ईंटो एवं खपरैलों से छाये हुए घरो का प्रमाण किसी भी स्थल से नहीं मिले हैं।

इन स्थलो के मृद्भाण्ड कला के लाल काले लेप वाले, काले और लाल एवं धूसर पात्र मुख्य हैं। सामान्यतया ये पात्र चाक पर बनाये गये हैं, लेकिन हस्त निर्मित पात्र भी प्राप्त हुए हैं। यदि चाक का प्रयोग किसी विशिष्ट समाज मे पाषाणिक संस्कृति को इसका श्रेय दिया जाना चाहिए। नव पाषाण काल की तुलना मे ताम्र पाषाण काल के मिट्टी के बर्तन अच्छी तरह से गुथी मिट्टी से बने हैं, बर्तनों को सफाई से बनाया गया है तथा अच्छी तरह से पकाया गया है। प्रमुख पात्रों मे कटोरे, तसले, तश्तरियाँ, प्याले, गोड़ेदार एवं छिद्रदार पात्र, ऊँचे एव दबी गर्दन वाले कलश, बड़े एवं मध्यम आकार के कलश, स्टैण्ड काली तश्तरियाँ एवं तसले, स्ट्रैण्ड वाली कढ़ाई का उल्लेख किया जा सकता है। बड़े आकार के कलशों का प्रयोग भण्डारण हेतु, घड़ो, कड़ाहियों एवं हांडियों का प्रयोग भोजन पकाने के पात्र के रूप में तथा कटोरे एवं तश्तरियों को खाने-पीने के पात्र के रूप में प्रयोग किया जाता रहा होगा। कुछ पात्रों का अनुष्ठानों हेतु महत्व था। कुछ पात्रो के लालित्य एव सौन्दर्य देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि इनको बड़े सावधानी से बनाया गया था। चूँकि इनकी प्राप्ति अधिवाश के किसी विशिष्ट क्षेत्र तक ही सीमित नहीं है, अतः ऐसा नहीं मालूम पड़ता कि उनका प्रयोग मात्र विशिष्ट लोग ही करते थे।

घोट कर पात्रो को चमकाने के भी प्रमाण मिले हैं, लेकिन वे मात्र लाल पात्रो के ऊपरी भाग तक ही सीमित है। पात्रों पर रस्सी से दबाकर चित्र भी बनाये गये हैं। मध्य गंगा घाटी के ताम्र पाषाणिक मृद्भाण्डो मे चित्रण भी एक प्रमुख विशेषता है। विन्ध्य क्षेत्र के ककोरिया एवं सम्बन्धित अन्य स्थलों से भी चित्रित पात्रो के टुकड़े प्राप्त हुए हैं लेकिन ये मध्य गगा घाटी के पात्रों के टुकड़ो की तुलना मे घटिया किस्म के हैं। ब्लैक स्लिप्ड पात्रो पर हल्के सफेद, क्रीम, भूरे और लाल रंग के भी बर्तनो के भीतरी और बाहरी सतह पर रेखीय चित्रण मिलते हैं। सोहगौरा और ताराडीह से पके बर्तनो पर उत्कीर्ण करके अलंकरण बनाने के प्रमाण प्राप्त हुए हैं।

चिरांद, ओरिअप, सोनपुर, कोलडिहवा एवं ककोरिया से प्राप्त कुछ पात्रो के टुकड़ों से तत्कालीन मृद्भाण्ड कला का प्रमाण मिलता है।

तांबे, हड्डी, हाथी दांत, सींग, पत्थर के उपकरण प्राप्त हुए हैं। कुछ स्थलों से हड्डी के बने नोक एव बाणों के निर्माण की विविध अवस्थाओं के उपकरण भी प्राप्त हुए हैं। तांबे की पुरावशेषों में चाकू एवं भाले प्राप्त हुए हैं। कोलडिहवा से भी एक चाकू फलक प्राप्त हुआ है। इन तांबे की वस्तुओ की

स्थानीय निर्माण सम्बन्धी प्रमाण नहीं मिले है इससे ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय ताम्र कर्मी घूम-घूम कर अनेक मानव वर्गों में अपना समान बेचते थे, अथवा कोई व्यापारी वर्ग था जिससे ये तांबे की वस्तुए प्राप्त करते थे।

विन्ध्य क्षेत्र के कुछ स्थलो जैसे कोलडिहवा, खजुरी, ककोरिया, टोकवा एवं मघा तथा मध्य गगा घाटी के कुछ स्थलों प्रहलादपुर, सोनपुर एवं चिराद से लघु पाषाण उपकरण भी प्राप्त हुए हैं। विन्ध्य क्षेत्र के स्थलों पर लघु ब्लेड उद्योग की वस्तुएं - समानान्तर पृष्ठ ब्लेड, पृष्ठ ब्लेड, दांतेदार ब्लेड, नोंकवाले ब्लेड, हंसुआ, खुरचन, त्रिभुज, समलम्ब चतुर्भुज आदि जो चाल्सेडनी, अगेट एवं कार्नेलियन पर बने हैं भी पाये गये हैं। विन्ध्य क्षेत्र की ककोरिया, मघा एवं कोलडिहवा आदि पुरा स्थलो पर पाषाण उपकरण बहुत अधिक सख्या मे मिले हैं जबकि मध्य गंगा घाटी मे पाषाण उपकरण कम संख्या में मिले हैं इसका प्रमुख कारण गंगा घाटी में (कच्चा माल) पत्थर पिण्ड उपलब्ध नहीं थे। विन्ध्य क्षेत्र मे पत्थर पिण्ड स्थानीय स्तर पर उपलब्ध थे। जबकि गंगा घाटी मे इसे काफी दूर विन्ध्य क्षेत्र से मंगाना पड़ता था। इस प्रकार कच्चे माल की अनुपलब्धता लघु पाषाण उपरणो के सीमित उपयोग का बहुत बड़ा कारण था। यहा पर उपकरणों का उपयोग तब तक करते थे जब तक उनका आकार छोटा नही हो जाता था। गंगा घाटी में पाषाण उपकरणो की कमी को पूरा करने के उद्देश्य से हड्डी के उपकरणों का निर्माण किया गया था। इन उपकरणों का उपयोग शिकार करने, काटने एव गोदने के लिए आते रहे होगे।

अर्ध मूल्यवान पत्थरो जैसे एगेट एवं कार्नेलियन, सेलखड़ी, मिट्टी तथा कभी-कभी हड्डियों एवं तांबे पर बने मनके एव लटकन के संग्रह भी कुछ स्थलों से प्राप्त हुए हैं। प्रायः ये मनके उच्च स्तरीय तकनीकी कुशलता प्रदर्शित करते हैं। उपलब्ध मनके प्रकारो में बेलनाकार, शंक्वाकार, विखण्डित नाशपाती आकार मुख्य है। शंक्वाकार लटकन भी पाये गये है। कुछ स्थलो पर ये मनके एवं लटकन निर्माण की विविध अवस्थाओं में पाये गये हैं, जो इस तथ्य की ओर संकेत करते हैं कि इनका निर्माण इसी स्थान पर किया जाता था। कुछ स्थलों से तांबे, घोघे एवं मिट्टी से बनी चूड़ियाँ भी प्राप्त हुई है। ककोरिया के बृहत्पाषाणिक समाधि से सोने की अंगूठी एव चूड़ियाँ मिली हैं।

ताम्र पाषाणिक पुरास्थलों पर सीमित उत्खनन के कारण कृषि एव पशुपालन सम्बन्धी प्रमाण अत्यन्त सीमित हैं। ताम्र पाषाण काल मे विन्ध्य क्षेत्र एव मध्य गंगा घाटी दोनो क्षेत्रो मे चावल प्रमुख

भोज्य सामग्री था। चावल के अलावा गेहूँ एव मूंग की भी कृषि की जाती थी। मघा से सांवा के दाने, जौ एव मेझरी के भी दाने प्राप्त हुए हैं। अनाजो के अलावा भोजन में मांस का भी प्रयोग होता था। जो अनेक स्थलो से प्राप्त हुई भेड़, बकरी, सुअर, गाय और भैस की हड्डियो से प्रमाणित होता है। इन जानवरो को पाला जाता था। शिकार भी अर्थ व्यवस्था का एक प्रमुख साधन था। वन्य पशुओ मे हिरण, मृग आदि की हड्डियाँ प्राप्त हुई हैं। कुछ स्थलो पर पक्षियो एवं जलजीवो में मछली एवं कछुए की हड्डियाँ भी प्राप्त हुई हैं।

विन्ध्य क्षेत्र के ककोरिया एवं मघा तथा मध्य गंगा घाटी के सोनपुर स्थलो से ताम्र पाषाण युग के लोगों की अंत्येष्टि क्रिया संबधी प्रमाण प्राप्त हुए हैं। विन्ध्य क्षेत्र के स्थल बृहत्पाषाणिक समाधियाँ जिनमें स्तूप, वृत्त एवं पत्थर ताबूत मुख्य हैं, से सम्बन्धित हैं इन समाधियों से जानवरो की हड्डी, लघु पाषाण उपकरण तथा एक समाधि से सोने की चूड़ी प्राप्त हुई है जो प्रामाणिक रूप से अन्त्येष्टि सामग्री है। सोनपुर से भस्म कलश के प्रमाण मिले हैं। ककोरिया की समाधि जहाँ से सोने की चूड़ी मिली है, किसी विशिष्ट वर्ग से सम्बन्धित रही होगी।

इस प्रकार संचयी प्रमाणों एव ताम्र पाषाणिक पुरास्थलों से प्राप्त कार्बन तिथियों के आधार पर ताम्र पाषाणिक संस्कृति का समय 1800 ई0 पू0 से 700 ई0 पू0 के मध्य रखा जा सकता है।

निष्कर्ष रूप में उत्तरी विन्ध्य क्षेत्र एव मध्य गगा घाटी की ताम्र पाषाणिक संस्कृति का अध्ययन अभी शैशवावस्था में है। अभी तो पुरातत्वविदो ने समस्या की सतह को मात्र खुरचना शुरू किया है। विविध क्षेत्रों में किये जाने वाले भावी उत्खनन एवं सर्वेक्षण अब तक उपलब्ध प्रमाणों को और अधिक सम्पुष्ट करेंगे।

प्रारम्भिक ऐतिहासिक संस्कृति

लोहे का प्रथम प्रयोग का सम्बन्ध प्रारम्भिक ऐतिहासिक कालीन सस्कृति से है। जो प्राक् एन0 बी0 पी0 (उत्तरी काली चमकीली मृद्भाण्ड परम्परा) धरातल से कृष्ण लोहित पात्र परम्परा (बी0 आर0 डब्ल्यू0) के साथ प्राप्त होता है, परन्तु कृष्ण लोहित पात्र परम्परा मुख्यतः ताम्र पाषाणिक संस्कृति से सम्बन्धित है। यद्यपि इस संस्कृति के परवर्ती चरण से लोहे का प्रमाण मिलने लगता है, लेकिन सम्भवतः लोहे के प्रारम्भिक ज्ञान ने उनकी अर्थव्यवस्था में कोई बड़ा परिवर्तन नही किया था। उपलब्ध पुरातात्विक साक्ष्यो से यह ज्ञात होता है कि उत्तर और दक्षिण भारत के क्षेत्रों में एक हजार ईसा पूर्व के आस-पास लोहे का प्रचलन हो गया था। प्रारम्भ में कतिपय पुराविदों का ऐसा अनुमान था कि भारत में लोहा और उत्तरी काली ओपदार मृद्भाण्डों का कई क्षेत्रों मे साथ-साथ प्रचलन हुआ था परन्तु विगत दशकों में भारत के विभिन्न क्षेत्रों में जो पुरातात्विक अन्वेषण तथा उत्खनन हुए हैं उनसे यह ज्ञात होता है कि पूर्वी और मध्य भारत के क्षेत्रो में लोहे का प्रचलन निश्चिय ही उत्तरी काले ओपदार मृद्भाण्डो से बहुत पहले ही हो गया था। प्रारम्भ में लौह धातु का प्रयोग अस्त्र-शस्त्रों के निर्माण के लिए ही मुख्यतः किया जाता था। चित्रित धूसर पात्र-परम्परा के साथ लोहे के जो उपकरण मिले हैं उनका उपयोग सीमित कार्यों के लिए ही किया जा सकता था।

ऐसा प्रतीत होता है कि प्रारम्भ मे एन0 बी0 पी0 पात्र परम्परा गंगा घाटी मे ही दिखायी पड़ती है। ऐसा लगता है कि इस पात्र परम्परा का उद्भव गंगा घाटी में हुआ, लेकिन हस्तिनापुर के उत्खनन के बाद मध्य गंगा घाटी तथा उत्तरी विन्ध्य क्षेत्र मे विभिन्न पुरास्थलो पर जो उत्खनन हुए हैं, इससे पता चलता है कि एन0 बी0 पी0 की पूर्ववर्ती जो कृष्ण लोहित पात्र परम्परा के स्तरों से मिलते हैं। इस आधार पर इस बात की प्रबल सम्भावना है कि मध्य गंगा घाटी और उत्तरी विन्ध्य क्षेत्र की कृष्ण लेपित पात्र परम्परा (ब्लैक स्लिप्ड वेयर) से एन0 बी0 पी0 संस्कृति विकसित हुई है। इसी क्षेत्र में एन0 बी0 पात्र परम्परा से सम्बन्धित बहुत से पुरास्थल प्रकाश मे आये हैं। यही नहीं इस क्षेत्र के पुरास्थलों पर एन0 बी0 पी0 पात्र खण्ड बहुत बड़ी संख्या में मिलते हैं।

एन0 बी0 पी0 मृदभाण्ड परम्परा की संस्कृति भारतीय पुरातत्व के एक अत्यन्त उज्ज्वल अध्याय का सूत्रपात करती है। गंगा घाटी में इस पात्र-परम्परा के साथ द्वितीय नगरीय - क्रान्ति का इतिहास आरम्भ होता है। लोहे के औजार बनाने की तकनीक के दक्षिण बिहार के लौह अयस्क

(आयरन ओर्स) से समृद्ध मे पहुँच जाने के बाद व्यापक पैमाने पर लौह उपकरणों का निर्माण तथा प्रयोग सम्भव हुआ। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे लौह तकनीक की प्रधानता वस्तुतः परिलक्षित होने लगी थी। लौह तकनीक के व्यापक प्रचलन का प्रभाव कृषि कार्य मे ही नही बल्कि घरेलू उद्योगो तथा वास्तु कला पर भी पड़ा। इस प्रकार एक अत्यन्त जटिल आर्थिक जीवन की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई।

सम्बद्ध मृद्भाण्ड एन0 बी0 पी0 पात्र परम्परा के साथ-साथ जन साधारण द्वारा प्रयुक्त मृद्भाण्ड तथा दैनिक जीवन में काम आने वाली कई पात्र-परम्पराएं भी मिलती हैं। 1- मोटे गढ़न के अलंकृत धूसर मृद्भाण्ड, (2) कृष्ण लेपित मृद्भाण्ड, (3) लाल रंग के मृद्भाण्ड, (4) कृष्ण लोहित मृद्भाण्ड। बड़े-बड़े घड़े, मटके, तसले, नाद आदि बर्तन प्रकार इन पात्र-परम्पराओ से मुख्य रूप से मिलते हैं।

लोहे का प्रचलन चित्रित धूसर पात्र परम्परा के काल मे लगभग 1000 ई0 पू0 में उत्तर भारत में हो गया था लेकिन एन0 बी0 पी0 काल में लोहे के व्यापक स्तर पर प्रयोग के संकेत मिलते हैं जिससे लौह-अयस्क को पिघलाने और प्राप्त लोहे को पीटकर उपकरण बनाने की तकनीक मे प्रगति परिलक्षित होती है। लोहे के उपकरणो के उपयोग से तत्कालीन लोगों के आर्थिक जीवन में उल्लेखनीय परिवर्तन हुए थे। प्रमुख लौह उपकरणों में बाण-फलक, भाले के शीर्ष, बल्लम के शीर्ष, बर्छी, कटार, चाकू, हसिया, खुरपी, कीलें, बसूला, छेनी, कड़ाही तथा दीपक आदि हैं। इस काल मे ताँबे का प्रयोग अपेक्षाकृत सीमित होता गया, तांबे का प्रयोग अब सिक्कों के निर्माण, खिलौनों तथा मनको आदि के बनाने में किया जाने लगा।

कृषि एवं पशुपालन इस काल में जीविका के प्रमुख साधन थे। काफी विस्तृत भू-भाग में खेती की जाने लगी थी। चावल, गेहूँ, जौ तथा दलहन आदि इस काल के प्रमुख खाद्यान्न थे। पशुपालन इनके आर्थिक जीवन का दूसरा प्रमुख आधार था। पालतू पशुओं में गाय-बैल, भैंस, भेड़, बकरी, घोड़े तथा सुअर आदि प्रमुख हैं। उत्खनन से इन पशुओं की हड्डियाँ विभिन्न स्थलों से प्राप्त हुई हैं। जंगली पशुओं जैसे हिरण आदि का शिकार भी किया जाता था।

एन0 बी0 पी0 संस्कृति की एक अन्य प्रमुख विशेषता सिक्कों के सर्वप्रथम प्रचलन को माना जा सकता है। आर्थिक जीवन मे जटिलता आ जाने के फलस्वरूप वस्तु-विनिमय मे परेशानी होने लगी। आर्थिक आवश्यकताओं के बढ़ते दबाव से सिक्को का चलन शुरू हुआ। ताम्र और रजत के

बने हुए आहत सिक्के (पंच आर्कड क्वाइन्स) भारत के प्राचीनतम् सिक्के माने जाते हैं।

यद्यपि इस काल मे भी मिट्टी, घास-फूस और बांस-बल्ली के बने हुए कच्चे मकानो का निर्माण होता रहा तथापि भट्टे मे पकाई गई ईंटों का प्रयोग भवनों के निर्माण के लिए अधिकाधिक मात्रा मे होने लगा। हस्तिनापुर, अंतरंजीखेड़ा, मथुरा, कौशाम्बी, राजघाट, उज्जैन तथा वहाल उत्खननो से प्रमाण मिलते हैं। नगरों की सुरक्षा के लिए रक्षा-प्राचीर तथा परिखा के निर्माण के प्रमाण अहिच्छत्र, कौशाम्बी, राजगृह तथा उज्जैन आदि से प्राप्त हुए हैं।

मृण्यमूर्तियो के निर्माण के क्षेत्र मे एन0 बी0पी0 सस्कृति के काल मे पर्याप्त प्रगति हो चुकी थी। पूर्ववर्ती चित्रित धूसर पात्र-परम्परा काल की मृणमूर्तियों की तुलना यदि इस काल के मृणमूर्तियो से की जाए तो यह भेद अधिक स्पष्ट हो जायेगा। हाथी, घोड़े, वृषभ-कुत्ते, भेड, हिरण आदि पशुओं और कच्छप, सर्प आदि सरीसृपों एव चिड़ियो की हस्त-निर्मित मूर्तियाँ हैं। पशुओं की मृण्मूर्तियो के अलावा मानव मृण्मूर्तियाँ भी उपलब्ध हुई है।

इस संस्कृति के लोगो ने अपनी परिष्कृत अभिरुचि का परिचय विभिन्न प्रकार के आभूषणो के निर्माण के माध्यम से दिया है, उदाहरण के लिए विभिन्न पुरास्थलो के उत्खनन से एन0 बी0 पी0 के स्तरो से माणिक्य के मनके और चूड़ियाँ, कड़े तथा अंगूठियाँ मिली हैं। पत्थर, गोमेद तथा कांच के बने हुए बेलनाकार, गोलाकार एवं त्रिभुजाकार मनके अधिक प्रचलित थे।

इस संस्कृति के उत्खनित पुरास्थलों से बहुत बड़ी संख्या मे हड्डी के बने हुए उपकरण प्राप्त हुए हैं। इनको पुराविदो ने बाण-फलक अथवा अस्थि निर्मित बेधक आदि नाम दिये हैं। यदि इन्हें बाण-फलक मान लिया जाए तो यह संभावना है कि पक्षियों आदि का शिकार करने में इनका उपयोग होता रहा होगा। यदि स्टाइलस या लेखनी कहे तो फिर यह मानना पड़ेगा कि ये लिखने के काम मे आती रही होगी। इस प्रकार हम देखते हैं कि एन0 बी0 पी0 काल में लोगों के सांस्कृतिक जीवन मे पर्याप्त प्रगति हो चुकी थी।

इस संस्कृति के तिथिक्रम के सम्बन्ध में श्रावस्ती के टीले का उत्खनन उल्लेखनीय है। यहां पर के0 के0 सिन्हा के नेतृत्व मे उत्खनन हुआ है। सिन्हा का मत है कि एन0 बी0 पी0 के वास्तविक महत्व को उसके सही पुरातात्विक परिप्रेक्ष्य मे रखकर ही आंका जा सकता है। एन0 बी0 पी0 दो

सर्वथा भिन्न सन्दर्भों में मिलती है : प्रथम आरम्भिक तथा द्वितीय निश्चयेण परवर्ती सन्दर्भ में। इस आधार पर एन0 बी0 पी0 का तिथिक्रम निर्धारित किया जा सकता है। एन0 बी0 पी0 पात्र परम्परा का प्रारम्भिक चरण तक्षशिला, कौशाम्बी, राजघाट, श्रावस्ती, वैशाली तथा राजगिरि मे प्राप्त होता है। इसका परवर्ती स्वरूप चरसद्दा, रोपड़, हस्तिनापुर, उज्जैन और नवदाटोली में मिलता है। आरम्भिक पुरास्थलों जैसे कौशाम्बी, श्रावस्ती, वैशाली तथा राजगिर मे इसका तिथिक्रम 500-300 ई0 पू0 के मध्य निर्धारित किया जा सकता है। परवर्ती श्रेणी के पुरास्थलो जैसे रोपड़, हस्तिनापुर, कुम्हरार तथा उज्जैन में इसका प्रचलन लगभग 350 ई0 पू0 के पहले नहीं हुआ।

पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर एन0 बी0 पी0 पात्र-परम्परा का जो तिथिक्रम प्रस्तावित किया है, उससे कुछ पुराविद् सहमत नही है। इनमे से डी0 एच0 गॉर्डन तथा आर0 ई0 एम0 व्हीलर के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। डी0 एच0 गॉर्डन के अनुसार उपलब्ध पुरातात्विक साक्ष्यों के परिप्रेक्ष्य में एन0 बी0 पी0 को 400 ई0 पू0 से पहले कदापि नहीं रखा जा सकता है। इसके व्यापक प्रचलन का काल चौथी नहीं बल्कि दूसरी शताब्दी ई0 पू0 प्रतीत होता है। ह्वीलर की सम्मति है कि एन0 बी0 पी0 पात्र परम्परा के प्रचलन का काल पांचवी से दूसरी शताब्दी ई0 पू0 के मध्य माना जा सकता है। ह्वीलर ने पाकिस्तान स्थित चरसद्दा और उदयग्राम से प्राप्त पुरातात्विक प्रमाणो के आधार पर उत्तर-पश्चिम के परिधीय क्षेत्र में एन0 बी0 पी0 के प्रचलन का समय 320-150 ई0 पू0 के बीच तथा गंगा के मैदान में स्थित केन्द्रीय क्षेत्र के पुरास्थलों पर इस तिथि से कुछ शताब्दियों पहले इसके प्रचलन की सम्भावना व्यक्त की है।[1]

---

1 पाण्डेय, जे0 एन0, 1995, *पुरातत्व विमर्श*।

अध्याय तीन

विन्ध्य क्षेत्र में पुरापाषाणिक संस्कृतियां

- निम्न पुरापाषाण काल
- मध्य पुरापाषाण काल
- उच्च पुरापाषाण काल

पुरापाषाणिक संस्कृतियां

मानव के उद्भव और विकास का काल प्रातिनूतन काल से माना जाता है तथा मनुष्य के प्रादुर्भाव से लेकर इतिहास की लिखित सामग्री के प्राप्ति के पूर्व तक का समय प्रागैतिहासिक काल कहा जाता है। इसकी अनुमानित तिथि 20 या 30 लाख ई0 पू0 है। प्रागैतिहासिक शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग का श्रेय 1851 ई0 मे डैनियल विल्सन को है। इसके बाद 1871 मे प्रागैतिहास शब्द का प्रयोग टेलर महोदय ने अपनी पुस्तक 'प्रिमिटिव कल्चर' में किया[1]।

प्रागैतिहासिक काल के अध्ययन एवं अनुसंधान के लिए दो प्रकार की रूप रेखाएं प्रचलित हैं - प्रथम तकनीकी रूपरेखा और द्वितीय सामाजिक आर्थिक रूपरेखा, तकनीकी के अनुसार मनुष्य ने सबसे पहले उपकरण बनाने के लिए पाषाण का उपयोग किया और कालान्तर में ताँबे एवं कांस्य धातु के उपकरण बनाना सीखा तथा अन्त में लोहे के उपकरण बनाने की जानकारी हासिल की। इस प्रकार प्रागैतिहासिक तकनीकि रूपरेखा से सम्बन्धित जो विचारधारा लोकप्रिय हुई वह इस प्रकार है-

1. पाषाण काल
2 ताम्र-कास्य काल
3. लौह काल

इस विचारधारा के प्रवर्तन का श्रेय डेनमार्क के सी0 जे0 थामसन को दिया गया है[2]। सामाजिक, आर्थिक रूपरेखा के अनुसार वन्यता, पशुचारण, कृषि पर आधारित स्थायी समाज और सभ्यता ये चार अवस्थाएं स्वेन के निल्सन नामक विद्वान ने सर्वप्रथम प्रस्तुत किया। कुछ समय पश्चात् एडवर्ड टेलर और डी0 एच0 मारगन ने इस सामाजिक रूपरेखा को परिष्कृत एवं सशोधित करके वन्यता, ग्राम्यता और सभ्यता को तीन अवस्थाओं में निरूपित किया[3]। इस विचारधारा को प्रागैतिहासिक अध्ययन एवं अनुसंधान के क्षेत्र मे विशेष लोकप्रिय बनाने का श्रेय वी0 गार्डन चाइल्ड[4] को है।

---

1. वर्मा, आर0 के0, 1977, *भारतीय प्रागैतिहासिक संस्कृतियाँ*, पृष्ठ 37
2. डैनियल, जी0 ए0 1942, दि थ्री एज से उद्धरित वर्मा, आर0 के0 *भारतीय प्रागैतिहासिक सस्कृतियाँ*
3. डैनियल, ग्लिन ई0, 1964, *आइडिया आव प्रीहिस्ट्री*, पृष्ठ 66
4. चाइल्ड, बी0 गार्डन, 1942, मैन मेक हिम सेल्फ से उद्धरित *सोशल इवोल्यूसन*, 1951, पृष्ठ 24

प्रागैतिहासिक काल को भौतिक पुरावशेषो मे पत्थर के बने उपकरणों एवं पाषाण सामग्री की अधिकता के कारण पाषाण काल कहा जाता है। पाषाण के अतिरिक्त काष्ठ, हड्डी तथा शृंग का भी उपयोग उपकरण बनाने मे किया जाता रहा होगा। लेकिन ये नष्ट हो गये होगे। जॉन लुब्बाक ने पाषाण काल को पुरापाषाण काल एवं नवपाषाण काल इन कालो में विभाजित किया था। जॉन लुब्बाक ने अपनी पुस्तक 'प्रिहिस्टारिक टाइम्स' के सन् 1865 के प्रथम संस्करण में पुरापाषाण काल एवं नव पाषाण काल की सांस्कृतियो के प्रमुख अन्तर प्रस्तावित किये थे।

1. पुरापाषाणकाल का सम्बन्ध उन जीव-जन्तुओं से, जो अब विलुप्त हो गये हैं। इसके विपरीत नवपाषाण काल का सम्बन्ध आधुनिक काल के जीव-जन्तुओं से है।

2. पुरापाषाण काल के उपकरणों का निर्माण फलकीकरण विधि से किया जाता था जबकि नवपाषाण काल के उपकरणो को अभीष्ठ स्वरूप देने के लिए घर्षण के द्वारा चमकाने का प्रयास किया गया था।

3. पुरापाषाणिक आर्थिक जीवन फल-फूल एव कन्द मूल आदि के संग्रह तथा जंगली पशुओ के शिकार पर प्रधानरूपेण आधारित था। जबकि नवपाषाण काल का आर्थिक जीवन खाद्यान्नों एवं पशुपालन पर आधारित था।

सन् 1887 मे फ्रांस के 'ल मास द अजि' नामक पुरास्थल की खोज एवं उत्खनन के परिणामस्वरूप पुरापाषाण काल एवं नवपाषाण काल के मध्य अन्तराल की परिकल्पना का त्याग कर दिया गया। उच्च पुरापाषाण काल एवं नवपाषाण काल के बीच एक सक्रमणात्मक सांस्कृतिक काल का अस्तित्व स्वीकार किया जाने लगा। इस मध्यवर्ती काल को 'मध्यपाषाण काल' नाम से अभिहित किया जाने लगा। इस प्रकार तकनीकी बनावट, प्रयुक्त पत्थर और आकार-प्रकार के आधार पर पुराविदो ने मानव संस्कृति की प्रारम्भिक अवस्था - 'पाषाणयुग' को मोटे तौर पर अब प्रधानतः तीन भेद माने जाते हैं जो इस प्रकार है[1] -

1 पुरापाषाण काल (पैलियोलिथिक)

2. मध्यपाषाण काल (मेसोलिथिक)

---

1. पाण्डेय, जे0 एन0, 1995, *पुरातत्व विमर्श*, पृष्ठ 194

3. नवपाषाण काल (नियोलिथिक)

पुरापाषाण काल

पुरापाषाण काल मानव के तकनीकी विकास का आदि काल अथवा शैशव काल है। इस युग मे मानव आखेट और आत्मरक्षा हेतु पत्थर के औजार बनाता था। आग की खोज तो कर लिया था, किन्तु कृषि, मृद्भाण्ड और भण्डार संग्रह सम्बन्धी उसे ज्ञान नहीं था। भारत में सर्वप्रथम रार्बट ब्रुसफुट ने 1863 ई0 मे मद्रास के समीपस्थ पल्लवरम् नामक स्थान से पुरापाषाणिक उपकरण (लेटराइट के जमाव से एक क्लीवर) खोजकर प्रागैतिहास के अध्ययन का श्री गणेश किया। ब्रूसफूट का लगभग 40 वर्षों का संकलन इस समय मद्रास संग्राहलय मे सग्रहीत है। तब से लेकर आज तक विद्वानो ने विभिन्न क्षेत्रों से पुरापाषाणिक उपकरण खोज निकाले हैं। प्रागैतिहासिक काल के पाषाण उपकरणों की खोज में रुचि लेने वाले व्यक्तियो मे राबर्ट ब्रुसफुट के अतिरिक्त विलियम किंग, कॉगिन ब्राउन, जे0 काकबर्न तथा अलेक्जेण्डर कनिंघम के सहायक ए0 सी0 एल0 कार्लाइल के नाम उल्लेखनीय हैं। उत्तर प्रदेश तथा उसके समीपवर्ती पठारी भू-भाग का कार्य क्षेत्र काकबर्न एव ए0 सी0 एल0 कार्लाइल पुराविदो के अन्तर्गत था।

इलाहाबाद चण्डीगढ़, वाराणसी, बड़ौदा, कलकत्ता, सागर एवं ग्वालियर विश्वविद्यालयो ने प्रागैतिहास के क्षेत्र मे उल्लेखनीय कार्य किया। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग ने सन् 1965 से 1970 के बीच उत्तर प्रदेश के दक्षिणी पठारी भाग में स्थित टोंस की सहायक बेलन नदी की घाटी में व्यापक सर्वेक्षण किया। बेलन नदी की घाटी में 18 मीटर ऊँचे अनुभाग के जमावों से निम्न पुरापाषाण काल से लेकर मध्य पाषाण काल तक के उपकरण विभिन्न स्तरो से मिले है। इनके अतिरिक्त बेलन नदी की घाटी में पाषाण काल के उपकरण बनाने के अनेक कार्य स्थल भी प्रकाश में आये हैं।

विन्ध्य क्षेत्र में मानव का अस्तित्व प्रागैतिहासिक काल से था जबकि उत्तर भारत के गांगेय क्षेत्र मे पाषाण काल के उपकरण नही मिले हैं। इस क्षेत्र में उपकरण न मिलने के दो प्रमुख कारण हो सकते हैं -

1. ये क्षेत्र सघन वनों से अच्छादित थे तथा यहाँ पर उपकरण निर्माण की सामग्री का अभाव था।

---

1 पाण्डेय, जे0 एन0, 1995, *पुरातत्व विमर्श*

2. नदियो द्वारा लायी गयी जलोढ़क मिट्टी के नीचे पुरापाषाणिक पुरास्थल दब गये होगे।

उत्तरी विन्ध्य क्षेत्र मे मानव का अस्तित्व प्रागैतिहासिक युग के पुरापाषाण काल में था इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण विन्ध्य क्षेत्र के विविध स्थलो से प्राप्त पाषाण काल के उपकरणों से होता है। पुरापाषाण काल में मानव नदियों के किनारे अथवा जंगलों की तलहटियो में, किसी जलाशय के समीपस्थ रहना पसन्द करता था क्योकि वहाँ पर उसे अपने औजार बनाने के लिए पर्याप्त पत्थर मिल जाया करते थे और जंगली पशु-पक्षियो के शिकार प्राकृतिक कन्दमूल, फल, फूल आदि खाद्य पदार्थों के संग्रहण से अपना उदर-पोषण करता था तथा वहाँ पर उसे पीने के लिए पानी की सुविधा थी। पुरापाषाण कालीन मानव तत्कालीन जटिल परिस्थितियो पर निर्भर था, इसलिए उसने वन्य पशुओ से सुरक्षा और उनके आखेट से अपनी क्षुब्धा निवारण हेतु विभिन्न प्रकार के पुरापाषाणिक उपकरणों का निर्माण किया।

पुरापाषाणकाल का विस्तार बहुत लम्बे समय तक था इसीलिए पुरोविदों ने पुरापाषाण काल को तीन भागों में विभाजित किया।

1. निम्न पुरापाषाण काल
2. मध्य पुरापाषाण काल
3. उच्च पुरापाषाण काल

भारत के अन्य स्थानो की तरह उत्तरी विन्ध्य क्षेत्र मे पुरापाषाणकाल के औजार विविध स्थानों से मिले हैं जिन्हे विविध पुराविदो ने उपकरणों की तकनीकी बनावट आकार-प्रकार तथा कालानुक्रम की दृष्टि से उत्तरी विन्ध्य क्षेत्र के पुरापाषाणिक उपकरणों को तीन चरणों में विभाजित किया है -

1. निम्न पुरापाषाण काल
2. मध्य पुरापाषाण काल
3. उच्च पुरापाषाण काल

1. निम्न पुरापाषाण काल (लोवर पैलियोलिथिक) :

पुरातत्वविदों ने निम्न पुरापाषाण काल के अस्त्र-शस्त्र उत्तरी विन्ध्य क्षेत्र से समय-समय पर खोज निकाला है। बुन्देलखण्ड नाम से प्रसिद्ध उत्तरी विन्ध्य क्षेत्र दक्षिण के पठारी भाग का पश्चिमी क्षेत्र

मध्य प्रदेश के पठार के उत्तरी भाग से मिला हुआ है तथा पूर्वी भाग कैमूर की पहाड़ियो से घिरा है। उत्तर प्रदेश के पठारी भाग की भूमि ककरीली-पथरीली है। प्रमुख नदियों में टोंस, बेलन, चन्द्र प्रभा, केन, बागैं, पयस्वनी, ओहन तथा सोन आदि। पुरापाषाण काल के पुरावशेषों की दृष्टि से उत्तर प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रो में से केवल पठारी भाग ही महत्वपूर्ण है।

निम्न पुरापाषाण के उपकरण मध्य प्रदेश के अधिकांश जिलो से मिले हैं। होसगाबाद, नरसिंहपुर, सिहोर, जबलपुर, खण्डवा, खरगोन, इन्दौर, दमोह, सागर, मन्दसोर, रतलाम, रायसेन, भोपाल, ग्वालियर, टीकमगढ़, गुना, दतिया, पन्ना, सतना, रीवा, सीधी, शहडोल आदि, उत्तर प्रदेश के दक्षिणी भाग मे स्थित मिर्जापुर, इलाहाबाद का दक्षिणी पठारी भाग, बांदा, हमीरपुर, झांसी तथा ललितपुर मे पुरापाषाणकाल के पुरावशेष इन जनपदो से मिले हैं। उत्तरी विन्ध्य क्षेत्र मे निम्न पुरापाषाण काल के पुरास्थल तीन प्रकार की स्थितियों में मिलते हैं -

1. खुले स्थानो पर स्थित पुरास्थल
2. गुफाएं एवं शिलाश्रय
3. नदियों के अनुभागो के जलोढ़ मिट्टी के जमाव।

'अ' खुले स्थानों पर स्थित पुरास्थल :

पुरातत्वविदो द्वारा विन्ध्य क्षेत्र में किये गये अन्वेषण से जो निम्न पुरापाषाणिक खुले स्थलो (ओपेन एयर साइट) की खोज की है उनकी संक्षिप्त जानकारी के रूप मे सिर्फ मैहर नामक पुरास्थल की उत्खनन किया गया है।

मैहर पुरास्थल (24^0 16' उत्तरी अक्षांश, 80^0, 46' पूर्वी देशान्तर) :

मैहर पुरास्थल शारदा देवी के मन्दिर के कारण विश्वविख्यात है। मैहर देवी के मन्दिर के दक्षिण पश्चिम विन्ध्य पहाड़ियों से घिरा है। मैहर, सतना जिले की एक तहसील मुख्यालय है। यह रीवा से 66 किलोमीटर दूर रीवा जबलपुर मार्ग पर स्थित है। लिलजी, टोस नदी की सहायक नदी है। इस क्षेत्र के पानी का निकास लिलजी नदी के द्वारा होता है। यह नदी इस समय शेल पर बह रही है। नदी पर जो अनुभाग सुरक्षित है वे भी शेल की आधारशिला पर ही स्थित हैं। नीचे से ऊपर की ओर निम्न जमाव का क्रम मिलता है। शेल के ऊपर विशालकाय प्रस्तर पिण्ड का निक्षेप है। यह उल्लेखनीय है कि यह तरंगित है इसकी औसत मोटाई 1 मीटर है। इस जमाव के ऊपर 1.5 मीटर

मोटा गहरा भूरा सिल्ट जमाव है जिसमें शेल के टुकड़े है। इसके ऊपर पीले सिल्ट का जमाव है जिसके नीचे के भाग मे कंकड़ का स्तर है। इसकी औसत मोटाई 2.5 मीटर है। इसके ऊपर काले रंग का 2 मीटर मोटा जमाव है और सबसे ऊपर लाल सिल्ट का जमाव है। जिसमे पत्थर के टुकड़े मिले हैं।

सन् 1975 मे इस पुरास्थल को खोजा गया था। इस पुरास्थल के ऊपरी सतह से मिले पुरावशेषो का अन्वेषण किया गया। जिसके परिणामस्वरूप पूर्ण निर्मित - अर्द्धनिर्मित एवं निर्माण की विभिन्न अवस्थाओं में हैण्डेक्स, क्लीवर, स्क्रेपर आदि बिखरे हुए मिले हैं। वी० डी० मिश्र एवं जे० एन० पाण्डेय[1] विशाल प्रस्तर पिण्ड जमाव को बेलन तथा सोन नदी के प्रथम ग्रेवल के समान बताते हैं। जबकि इस स्थल से केवल निम्न पुरापाषाण काल तथा मध्य पुरापाषाण काल के उपकरण प्राप्त हुए है। जहाँ शेल के ऊपर का जमाव हट गया है। वही से निम्न पुरापाषाण काल के उपकरण मिलते हैं (छायाचित्र सख्या 1)। निर्माण की विविध अवस्थाओ में फलक तथा उपकरण एक ही स्थल पर मिलते हैं इससे हम यह अनुमान लगाते हैं कि प्रागैतिहासिक मानव इन्हीं स्थलो पर उपकरणों का निर्माण करता रहा होगा। अधिकांश उपकरण नवनिर्मित तथा स्वस्थानीय प्रतीत होते हैं तथा उनका स्थानान्तरण भी नहीं हुआ है। यह क्षेत्र एक परात के समान था जो कालान्तर में भर गया, जो उपकरण प्राप्त हुए थे वे इस प्रकार हैं -

उपकरण	संख्या	प्रतिशत %
कोर	40	9.3%
फलक	78	18.2%
अपशिष्ट फलक	98	22.8%
हैण्डैक्स	55	12.8%
हैण्डैक्स टूटन	7	1.6%
क्लीवर	120	27.9%
क्लीवर टूटन	6	1.4%
स्क्रेपर	26	6.0%
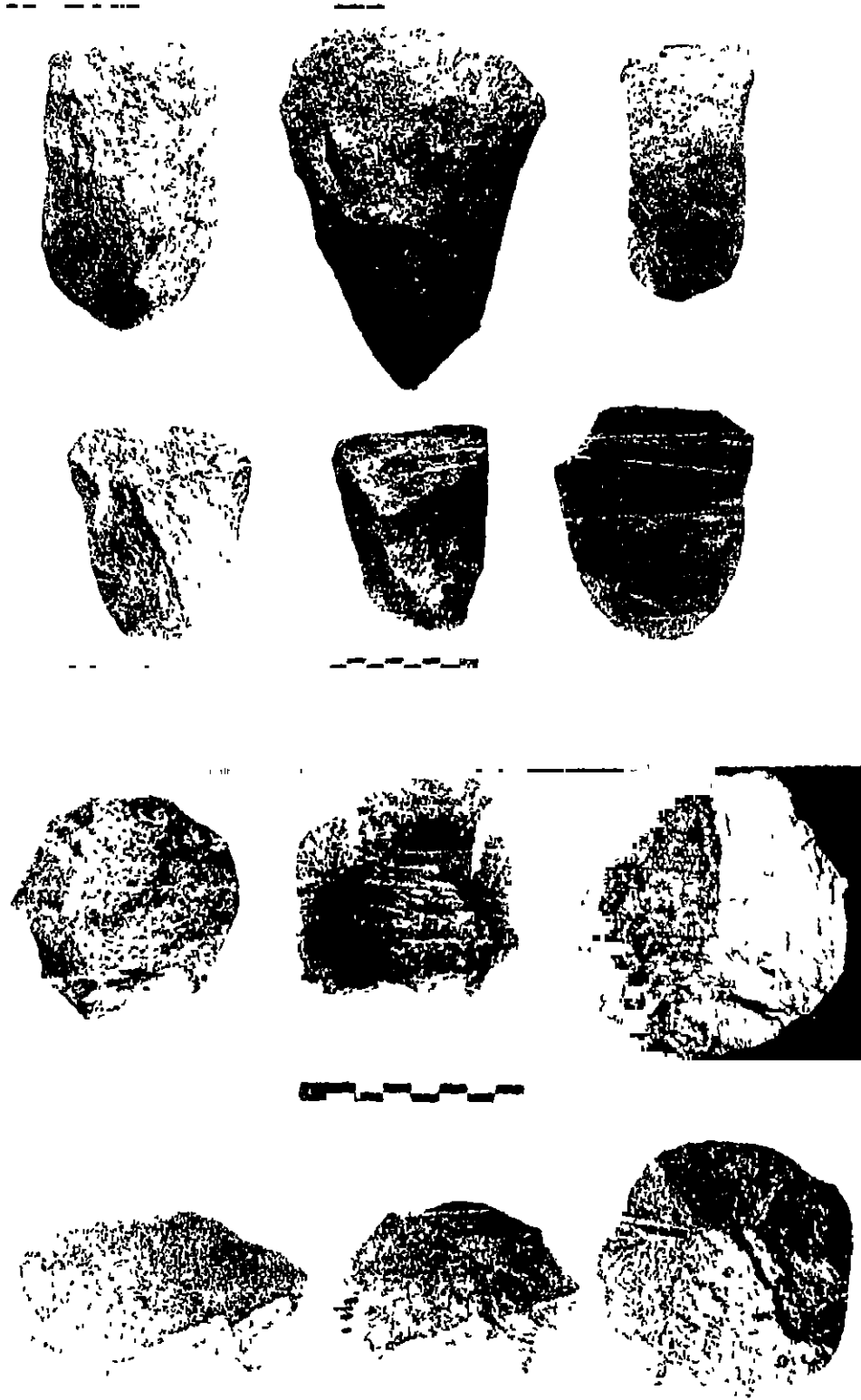
छायाचित्र संख्या 1 - मैहर : निम्न पुरा पाषाणिक क्लीवर, स्क्रेपर

इस क्षेत्र मे इलाहाबाद विश्वविद्यालय के जे0 एन0 पाण्डेय तथा जे0 एन0 पाल ने तीन सत्रों में (1987, 1988 तथा 1991) में चार विभिन्न क्षेत्रो मे उत्खनन किया है। जिन्हे क्रमशः मैहर-I, मैहर-II, मैहर-III, तथा मैहर-IV कहा गया है। इनमें से मैहर-ए-I से निम्न पुरापाषाणिक-II और मैहर-III से मध्य पुरापाषाणिक तथा मैहर-II से उच्च पुरापाषाणिक संस्कृतियो के अवशेष मिले हैं।

मैहर-I :

उत्खनित पुरास्थल शारदा देवी मन्दिर तथा लिलजी नदी के बीच मे एक समतल मैदान मे पहाड़ी से लगभग 700 मीटर पूर्व मे तथा 170 मीटर नदी से पश्चिम में स्थित है। इस पुरास्थल का ढलान दक्षिण उत्तर दिशा मे है। इसके उत्तर में एक नाला है जो मैहर देवी के पहाड़ी से निकल कर लिलजी नदी मे गिरता है। नाले के उत्तर मे 864 वर्ग मीटर का क्षेत्र उत्खनन के लिए चिन्हित किया गया, जिसे 1 × 1 मीटर के वर्गों में विभाजित किया गया इसमे सर्वप्रथम एस बी-I तथा एस सी-I मे नियंत्रण गर्त के रूप मे 1.73 मीटर की अधिकतम गहराई तक खोदा गया जिसे तीन स्तरों मे विभाजित किया गया।

उत्खनन के फलस्वरूप पाँच प्रमुख जमाव प्रकाश मे आये। जिसमें से सबसे नीचे के जमाव को दो भागो में बाँटा गया है दोनों ही जमाव से उपकरण मिले हैं। पहला जमाव 20-40 से0 मीटर मोटा था जो चितकबरी मिट्टी से निर्मित था तथा शेल के आधारशिला पर अवस्थित था। इसके ऊपर बालुकाश्म तथा क्वार्टजाइट के बड़े-बड़े बोल्डर भी मिले हैं। इसमें निम्न पुरापाषाण काल के हैण्डेक्स, क्लीवर, स्क्रेपर, चॉपर, पेबुल पर बने हुए उपकरण एवं चक्राभ उपकरण, क्रोड एवं फलक आदि प्राप्त हुए हैं।

तीसरे जमाव के ऊपर पीली गाद मिट्टी का 13 से 26 सेमी0 मोटा जमाव था। इसमें मिश्रित रूप में लेटराइट की गोलियाँ तथा सेल के टुकड़े मिलते हैं। इस जमाव से नवनिर्मित एश्यूलियन उपकरण काफी संख्या मे मिले है। ये सभी उपकरण स्वस्थानीय प्रतीत होते हैं।

दूसरा स्तर 30 से 46 से0 मी0 मोटा तथा पीली गाद मिट्टी से निर्मित था। इसमे शेल के टुकड़े तथा नोडूल मिश्रित रूप से मिलते है। इस जमाव में कोई भी उपकरण नहीं मिले हैं। यही एश्यूलियन संस्कृति को आच्छादित करती है।

दूसरे स्तर के ऊपर लाल रंग का जमाव था जिसकी औसत मोटाई 5 से0 मी0 थी। इसमे 4 शेल तथा पत्थर की चिप्पियाँ थी।

सबसे ऊपरी जमाव जो 22 से 25 से0मी0 मोटा लाल रग की गाद मिट्टी का जमाव था जिसमें शेल, लोहे के नोडूल आदि मिले हुए थे यह जमाव बहकर या वायु द्वारा एकत्रित हुआ था।

उत्खनन से क्लीवर तथा हैण्ड-एक्स के अतिरिक्त फलक, कोर आदि भी मिले हैं। इनके साथ पत्थर का चक्र मिला है जिसके किनारे पर एकान्तर फलकीकरण किया गया है। उत्खननकर्ताओं की धारणा है कि यह कोई कलात्मक वस्तु रही होगी। इसके अलावा उपकरणो में प्रयुक्त किये गए पाषाण के हथौड़े, निहाई आदि अन्य पुरावशेष भी मिले हैं। अधिकांश उपकरण नव-निर्मित्त से लगते है। उपकरणों मे हैण्ड एक्स की तुलना मे क्लीवर अधिक हैं। उत्खनन के द्वारा तत्कालीन मानव के क्रियाकलापों को जानने का प्रयास किया गया था।[1]

'ब' गुफाएं एवं शिलाश्रय :

प्रागैतिहासिक युग और उसके बाद आद्यैतिहासिक काल में मानव यदा-कदा गुफाओ और शिलाश्रयो में निवास करता था। ये शिलाश्रय प्राकृतिक रूप मे होती थी जिन्हें तत्कालीन मानव अपने निवास के लिए चुना। इस प्रकार के शिलाश्रय देश के कुछ भागो में मिले हैं। जिसमे विन्ध्य क्षेत्र के शिलाश्रय भी एक है।

उत्तरी विन्ध्य क्षेत्र पर्वत शृंखलाओं तथा वनो से आच्छादित है जिसमें विभिन्न सरिताएं और जलस्रोत प्रवाहित हैं। इन सुविधाओं से आकृष्ठ होकर मानव ने यहाँ प्रागैतिहासिक काल से लेकर ऐतिहासिक काल तक निवास करते रहे तथा समय-समय पर इन शिलाश्रयों में चित्रों का निर्माण किया। चित्रों की विषय वस्तु विविध प्रकार की हैं जिसमें जीवन के प्रायः सभी पक्षो से सम्बन्धित दृश्य अकित किए गये हैं। भीमबैठका नामक पुरास्थल का क्षेत्र गुफाएं एव शिलाश्रय के लिए प्रसिद्ध हैं। जहाँ से अभी तक ज्ञात 754 गुफाए है जिनमें से 500 चित्रित भी हैं।

---

1. मिश्रा, वी0 डी0 तथा पाण्डेय, जे0 एन0, 1977, *सम एस्पेक्ट्स ऑफ इण्डियन आर्कियोलॉजी*, इलाहाबाद
पाण्डेय, जे0 एन0, 1998, *मैहर . एन आर्कियोलॉजिकल प्रोफिल*, पृष्ठ 23-25
वर्मा, आर0 के0, 1977, *भारतीय प्रागैतिहासिक संस्कृतियां*, पृष्ठ 172-174

भीमबैठका (22°, 50', 30'' उत्तरी अक्षांश, 77° 37' पूर्वी देशान्तर) :

भीमबैठका एक पहाड़ी है जहाँ के वृतान्त के अभाव मे निम्न पुरापाषाण काल का कोई भी विवरण अधूरा है। मध्य प्रदेश के रायसेन जिले मे स्थित भीमबैठका नामक पुरास्थल का क्षेत्र गुफाओ एवं शिलाश्रयो के लिए प्रसिद्ध है। जिनकी संख्या यहाँ पर 754 हैं। 500 गुफाएं चित्रित हैं। यह पुरास्थल भोपाल से 50 किलोमीटर दक्षिण मे स्थित है। भीमबैठका की पहाड़ियों पर स्थित गुफाओ तथा शिलाश्रयो को 1958 में खोजने का श्रेय विक्रम विश्वविद्यालय के वी0 एस0 वाकणकर को है। इन्होने सर्वप्रथम 1952 में यहाँ की एक गुफा मे उत्खनन कराया था। जिसमे उनको एश्यूलियन स्तर प्राप्त हुआ। बी0 एन0 मिश्र ने 1973 से 1976 तक उत्खनन कराया।

अभी तक एश्यूलियन उपकरण भीमबैठका के चार शिलाश्रयों से मिले हैं किन्तु न0 एफ-23 शिलाश्रय के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त हुई हैं। शिलाश्रय के भीतर लगभग 32 वर्ग मीटर के क्षेत्र मे उत्खनन हुआ है। इसका जमाव 3 80 मीटर है।

प्रथम जमाव 5-10 से0 मी0 मोटा है। यह हल्के पीले-भूरे रंग की बलुई मिट्टी तथा कोणिक पत्थर से निर्मित है। चाल्सेडनी के ज्यामितिक लघु पाषाणोपकरण, क्वार्टजाइट के फलक, ब्लेड, सिल-लोढ़े, पत्थर के वीड़, सादी भूरी और लाल पाटरी आदि इस जमाव से प्राप्त हुए है।

द्वितीय जमाव 10-25 से0मी0 मोटा है यह पीले रंग का (प्रथम जमाव से गाढ़ा) है। इस जमाव से भी लघुपाषाणोपकरण, क्वार्टजाइट के फलक, ब्लेड, सिल, लोढ़े आदि मिले हैं।

तीसरा जमाव पीले-भूरे रंग की मिट्टी का 10-20 से0मी0 मोटा है इसमे लाल पत्थर के टुकड़े मिले हैं। लघुपाषाण उपकरणों की संख्या कम है।

चौथे स्तर के जमाव की मिट्टी हल्के भूरे रंग की 15-20 से0मी0 मोटा है। इसमे पत्थर के बड़े टुकड़े मिले थे। क्वार्टजाइट के फलक, ब्लेड, पार्श्व तथा अन्तस्क्रेपर तथा ब्यूरिन मिले हैं, जो मध्य पुरापाषाण कालीन अथवा उच्च पुरापाषाण कालीन उद्योग का निर्देश करते हैं।

पाँचवा स्तर हल्की ललाई लिए हुए भूरे रंग का 40-50 से0मी0 मोटा जमाव है। इसमे भी विविध प्रकार के पार्श्व स्क्रेपर, अन्तस्क्रेपर, लेवालेवा फलक ब्लेड तथा कभी-कभी हैण्डेक्स और क्लीवर भी मिल जाते हैं।

छठा स्तर 80-90 से0मी0 मोटा है जो स्तर 5 के समान है। किन्तु यह अधिक ठोस तथा लाल है इसमें अन्त एश्यूलियन उद्योग मिला है।

सातवां स्तर चमकीले लाल भूरे रंग का 90-100 से0मी0 मोटा जमाव है। इस जमाव से भी एश्यूलियन उद्योग के उपकरण मिले हैं। उपकरण ललाई लिए हुए हैं।

आठवाँ जमाव नारंगी रंग का 80-90 से0मी0 मोटा है। यहाँ से प्राप्त उपकरण पीले रंग के तथा कमजोर हैं। इसमें भी अन्त एश्यूलियन प्रकार के उपकरण प्राप्त हुए हैं।

निम्न पुरापाषाणकाल के एश्यूलियन उपकरण तीन स्तरों 6, 7 तथा 8 से मिले हैं जिनका कुल जमाव 2.40 मीटर है। भीमबैठका के उत्खनन का विशेष महत्व यह है कि यहाँ पर परवर्ती एश्यूँलन से लेकर मध्य पाषाण काल तक का एक अविछिन्न सांस्कृतिक क्रम प्रकाश मे आया है।

अग्नि के प्रयोग करने के प्रमाण अभी तक नहीं मिले थे। प्रागैतिहासिक काल के मानव ने गुहा का प्रयोग केवल उपकरणो के निर्माण मात्र के लिए ही नहीं किया करते थे, बल्कि निवास के लिए भी प्रयोग करते थे। इसकी पुष्टि वहाँ से मिले पत्थरों के पांच फर्शों के निर्माण के प्रमाण से होती है।

भीमबैठका के एश्यूलियन जमाव से कुल 18,721 उपकरण प्राप्त हुए हैं। उपकरणो के निर्माण में आर्थोक्वार्टजाइट का प्रयोग किया गया है। हैण्डेक्स तथा क्लीवर विशेषतः बैंगनी अथवा गहरे भूरे रंग के क्वार्टजाइट से बने हैं। फलक उपकरण हल्के पीले रंग के क्वार्टजाइट से बने हैं। स्तर के उपकरणो को छोड़कर अन्य सभी एकदम नव-निर्मित हैं। फलकों को गढ़ने के लिए हल्के वजन के हथौड़े की तकनीक का प्रयोग करने लगे थे। विभिन्न उपकरणो की संख्या तालिका में देखी जा सकती है -

उपकरण	संख्या	प्रतिशत %
फलक उपकरण	1,332	28.10%
हैण्डैक्स	33	0.70%
हैण्डेक्स टूटन	11	0.23%
क्लीवर	82	1.74%
क्लीवर टूटन	53	1.12%
फलक	2,866	60.91%
कोर	155	3.29%
अन्य	183	3.89%
योग	**4,705**	**99.98%**

भीमबैठका उद्योग मे क्लीवरों की संख्या अधिक है तथा हैण्डेक्स कम है। मिश्र की धारणा है कि यह उद्योग एश्यूलियन परम्परा मे मुस्तेरियन के निकट है।[1]

'स' नदियों के अनुभाग :

विन्ध्य क्षेत्र मे प्रवहित होने वाली अधिकांश नदियों की घाटियों के जलोढ़ जमावों में दबे हुए एश्यूलियन उपकरण मिले हैं। इन नदियो मे नर्मदा, सोन, बेलन, केन, शिबिना, सोनार आदि का उल्लेख किया जा सकता है। इनमें से सिर्फ नर्मदा, सोन, बेलन नदियो के भूतात्विक, जीवाश्मों तथा पुरापाषाणिक उपकरण अध्ययन की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

बेलन घाटी :

बेलन घाटी में किये गये अन्वेषण एवं सर्वेक्षण से निम्न पुरापाषाण काल से लेकर लघुपाषाणोपकरण तक की प्रस्तर युगीन सांस्कृतियों का विकासात्मक क्रम स्पष्ट दिखायी पड़ता है। बेलन टोस की सहायक नदी है। यह मिर्जापुर एवं इलाहाबाद के दक्षिणी भाग में स्थित मेजा तहसील के जल निकास का एक महत्वपूर्ण माध्यम है।

बेलन घाटी में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग के जी0 आर0 शर्मा के निर्देशन में भूतात्विक और पुरातात्विक सर्वेक्षण तथा उत्खनन किया गया जिसके फलस्वरूप पाषाणकाल के पुरावशेषो के अतिरिक्त पशुओं के जीवाश्म बेलन और उसकी सहायक नदियो के अनुभागों से मिले हैं। इस प्रकार पाषाण काल की संस्कृति के अध्ययन की दृष्टि से भारतीय प्रागैतिहास में बेलन घाटी का अपना विशिष्ट महत्व है।

बेलन के अनुभागो का दक्षिण में मिर्जापुर जिले में स्थित बरौधा नामक स्थल से लेकर उत्तर में इलाहाबाद जिले की मेजा तहसील मे बेलन टोस संगम तक अध्ययन किया गया है। खजुरी ग्राम से लगभग 6 कि0 मी0 डैया नामक स्थान से लेकर देवघाट तक अभी भी लगभग 18 मीटर ऊँचे नदी के अनुभाग मिलते हैं (छायाचित्र सख्या 2)। बेलन नदी की दक्षिण मे क्रमशः विंध्य की पहाड़ियाँ मिलने लगती हैं, जो पहले कम ऊँची है और बाद में कैमूर से मिल जाती हैं। बेलन के दक्षिण तट पर स्थित मुरली, महुगढ़, चांदातरी, रामगढ़, बेलरही, करौंदहिया आदि पहाड़ियां प्रातिनूतन काल में

---

1. मिश्रा, वी0 एन0, 1974, दि एश्यूलियन इण्डस्ट्री आफ राक शेल्टर एफ-23 ऐट भीमबैठका, सेन्टर इण्डिया : ए प्रिलिमिनरी एनालिसिस, साइक्लोस्टाइल्स कापी इण्डिया प्रीहिस्ट्री, 1974, *पुरातत्व नं0 8*, पृष्ठ 13-36

छायाचित्र संख्या 2 - बेलन घाटी : मुख्य अनुभाग

प्रागैतिहास कालीन मानव के आवास स्थल थे। और इन्हीं पहाड़ियों पर उद्योग-स्थल मुख्य पहाड़ियो से बाहर निकली हुई छोटी पहाड़ियो के ऊपर समतल भागों तथा उनके ढालों पर हैं।

इस क्षेत्र के प्रायः सभी उद्योग-स्थलो पर निम्न पुरापाषाण कालीन मानव ने क्वार्टजाइट प्रकार के पत्थरो का प्रयोग उपकरण निर्माण के लिए किया है। जहाँ पर अच्छे क्वार्टजाइट नहीं थे वहाँ पर बालुकाश्म का प्रयोग किया गया।

बेलन नदी के अपरदन से इस क्षेत्र के प्रातिनूतन काल से लेकर आधुनिक काल तक के सभी जमाव स्पष्ट परिलक्षित हैं। स्थान-स्थान पर नदी ने आधारशिला तक के सभी जमावो को काट दिया है और अब स्वयं आधारशिला पर बह रही है। यहाँ के भूतात्विक जमाव को अध्ययन के आधार पर दस इकाइयो मे विभाजित किया गया है।

अपघटित शिला के ऊपर प्रथम ग्रैवेल का जमाव है। यह विभिन्न प्रकार के पत्थरो, कंकड़ तथा लेटराइट की छोटी-बड़ी गोलियों से निर्मित है। कोणयुक्त शिला पट्टों की अधिकता है। इस जमाव से निम्न पुरा पाषाणकाल के उपकरण तथा पशुओ के अनेक जीवाश्म प्राप्त हुए है। प्रथम ग्रेवॅल का जमाव आर्द्र जलवायु मे हुआ जब बेलन नदी मे जल प्रवाह अपेक्षाकृत तेज था। प्रथम स्तर से निम्न पुरापाषाण काल के उपकरण और गाय-बैल, गौर (भैंसा) हाथी आदि पशुओं के जीवाश्म मिले है। प्रथम ग्रेवल के ऊपर 3 मीटर जलोढ़ मिट्टी का जमाव है। इस जमाव से पाषाण उपकरण तथा पशुओ के जीवाश्म कुछ भी नहीं मिले हैं।

बेलन घाटी में किये गये सर्वेक्षण से निम्न पुरापाषाणिक संस्कृति के 44 पुरास्थल प्रकाश मे आये हैं। बेलन घाटी में निम्न पुरापाषाण कालीन उपकरण तीन संदर्भों मे आये हैं -

1. नदी के तलहटी
2. प्रथम ग्रेवॅल के जमाव
3. बेलन नदी के दक्षिण में स्थित विन्ध्य पहाड़ियों के ऊपर।

नदी की तलहटी तथा प्रथम ग्रेवॅल जमाव से निम्न पुरापाषाण कालीन उपकरण मिले हैं। इस जमाव से पेबुलोपकरण तथा हैण्डेक्स-स्क्रेपर परम्परा के विकसित तथा अविकसित उपकरण उपलब्ध हुए हैं। प्रथम ग्रेवॅल से मिलने वाले उपकरणो का सूक्ष्म अध्ययन किया गया। इस अध्ययन से ज्ञात हुआ कि ग्रेवॅल के निम्न स्तर से मिलने वाले उपकरणों में पेबुलोपकरणों की संख्या अन्य की अपेक्षा अधिक है। हैण्डेक्स बड़े आकार के हैं। पहले स्तरो में स्क्रेपर बिल्कुल नहीं मिले हैं।

हैण्डेक्स सभी उपकरणो के लगभग 53% है। हैण्डेक्सो में दो प्रकार के एश्यूलियन उपकरण है रूक्ष तथा पूर्ण विकसित (छायाचित्र सख्या 3) एश्यूलियन प्रकार के उपकरण सुडौल तथा आकार मे छोटे हैं (छायाचित्र संख्या 4)। यहाँ से प्राप्त विशालतम हैण्डेक्स 38.5 से0मी0 तथा सबसे छोटा 9 से0 मी0 है।

एक विशिष्ट प्रकार के हैंण्डेक्स जो शिलापट्टों पर निर्मित है विशेष उल्लेखनीय है। इस प्रकार के उपकरण बेलन तथा सेवती नदियों के संगम से प्राप्त हुए थे। चिपटे शिलापट्टों का हैण्डैक्स के निर्माण मे उपयोग किया गया है। शिलापट्टों पर एकान्तर फलकीकरण के द्वारा उनके कार्यांग तथा स्वरूप का निर्माण किया गया है।

क्लीवर तथा स्क्रेपर मिले हुए लगभग 30% हैं। अधिकांश क्लीवर फलकों पर निर्मित हैं। क्लीवर 17.5 से0 मी0 से 11.5 से0 मी0 है।

स्क्रेपर भी विविध आकारों के विकसित तथा अविकसित दोनों ही प्रकारों के दो अधिकांश स्क्रेपर कोर पर निर्मित हैं।

मिश्रित उपकरण :

बहुत से हैण्डेक्स तथा क्लीवर इस तरह से बनाए गये हैं कि उनसे स्क्रेपर का काम लिया जा सकता था। ऐसे उपकरणो को मिश्रित उपकरणो की कोटि में रखा जा सकता है। क्लीवर, स्क्रेपर की बनावट भी बहुत कुछ इस प्रकार की होती है, इसमें हैण्डेक्स कार्यांग के स्थान पर क्लीवर - कार्यांग होता है। स्क्रेपर-कार्यांग दोनों मे समान होता है।

मूठ के प्रमाण :

बेलन घाटी से प्राप्त निम्न पुरापाषाण कालीन उपकरणों मे मूठ लगाने के स्पष्ट प्रमाण मिले हैं। इस तरह के प्रमाण अन्य स्थलो से दुर्लभ हैं (छायाचित्र संख्या 5)। उपकरणों के निर्माण में क्वार्टजाइट का प्रयोग किया गया है।

जीवाश्म अवशेष :

बेलन घाटी मे निम्न पूर्व पाषाण कालीन स्तर अथवा प्रथम ग्रेवॅल से बहुत अधिक संख्या में बास इक्वस तथा एलीफस के जीवाश्मित अवशेष प्राप्त हुए हैं (छायाचित्र संख्या 6)।[1]

---

1. वर्मा, आर0 के0, 1977, *भारतीय प्रागैतिहासिक सस्कृतियाँ*
   इण्डियन आर्कियोलॉजी ए रिव्यू, 1975-76, पृष्ठ 43-45
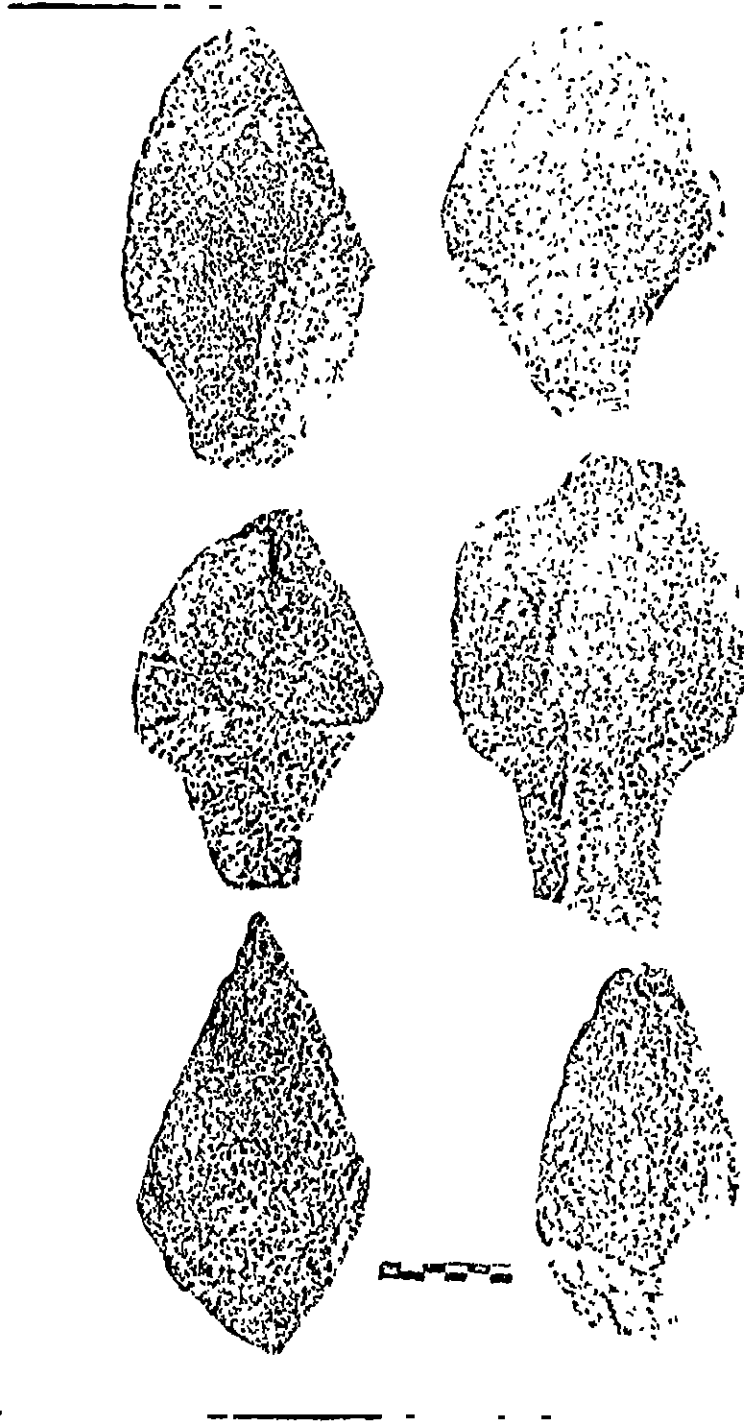
छायाचित्र संख्या 3 - बेलन घाटी : निम्न पुरा पाषाणिक उपकरण
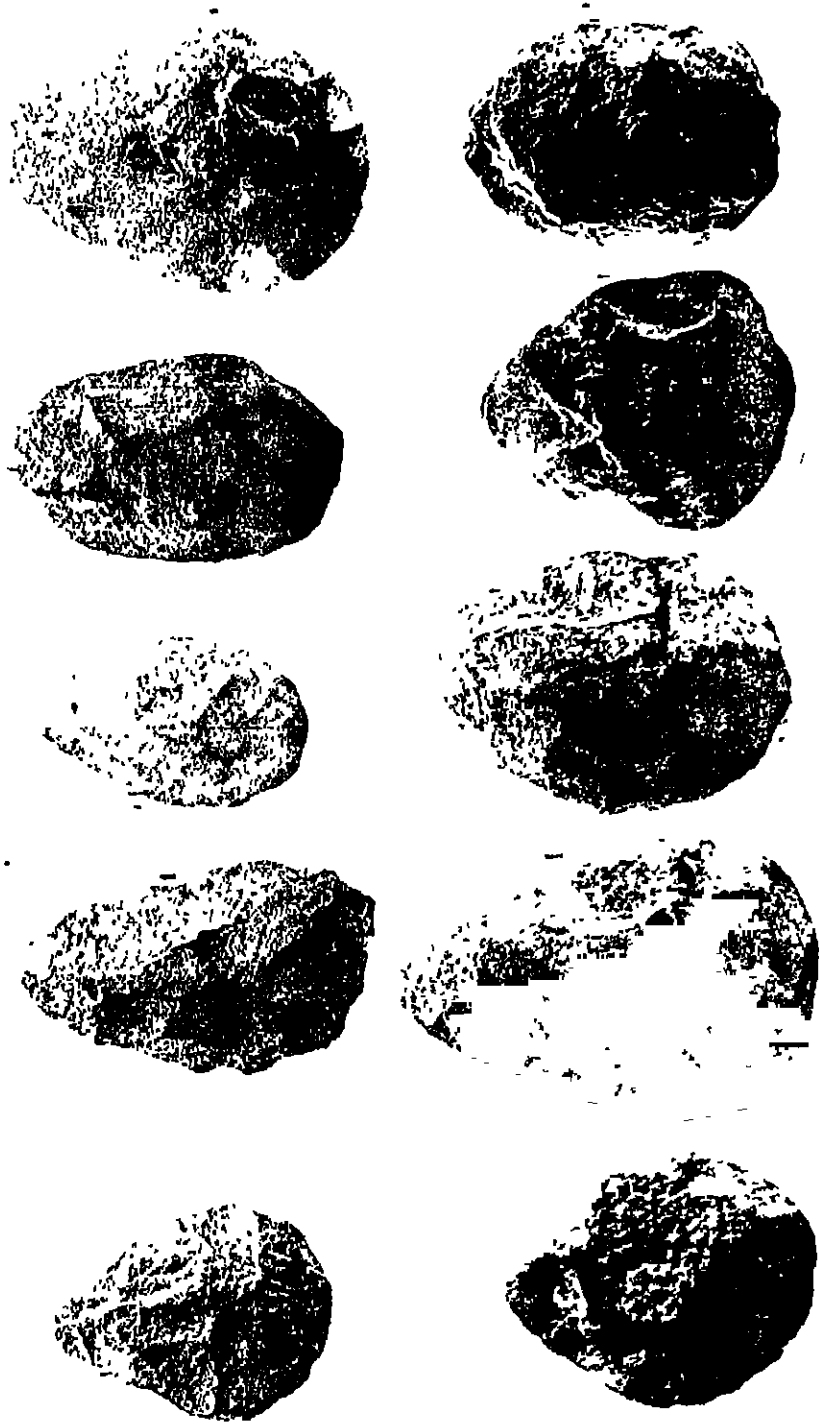
छायाचित्र संख्या 4 - बेलन घाटी : निम्न पुरा पाषाणिक हैण्डेक्स
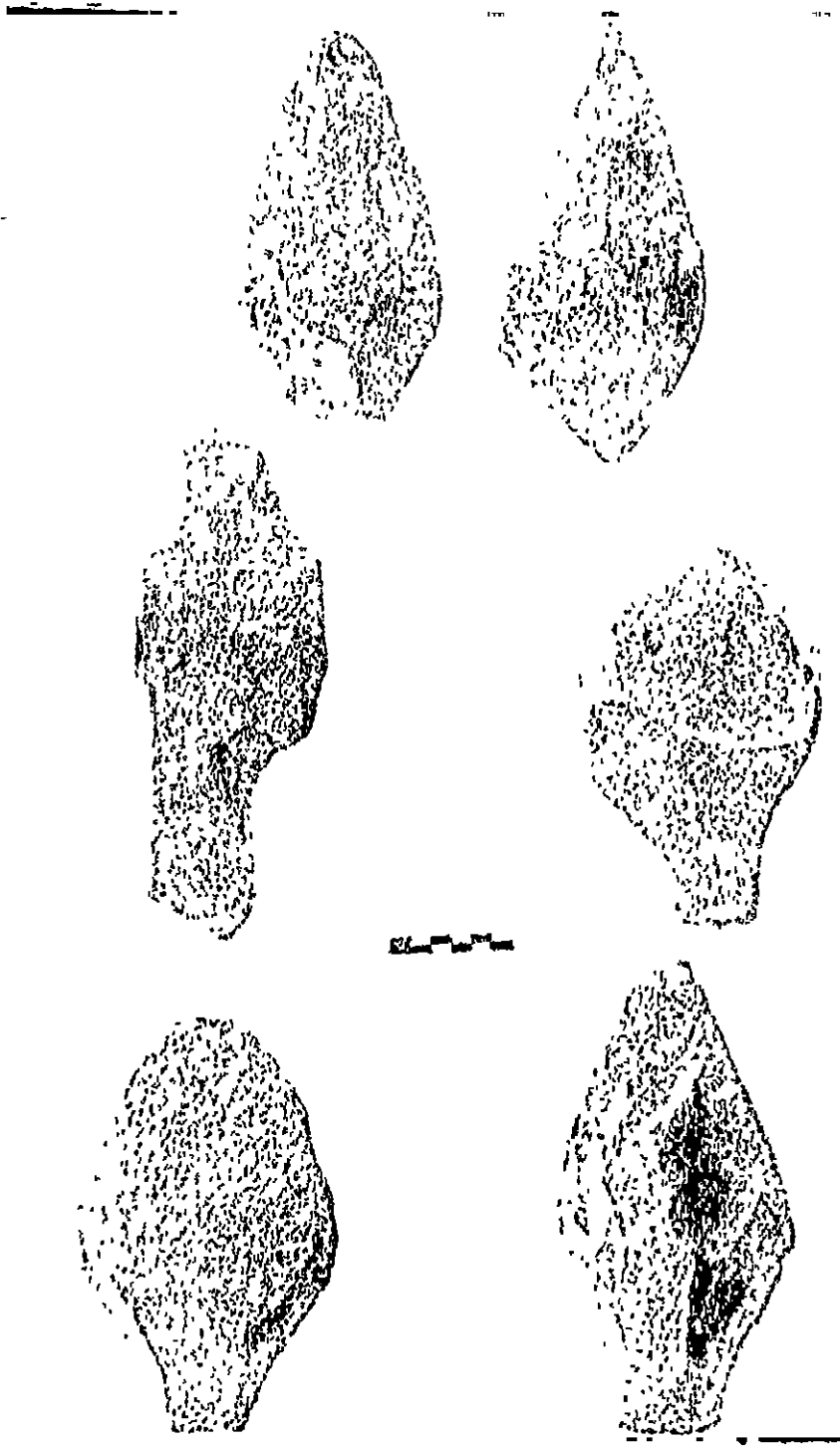
छायाचित्र संख्या 5 - बेलन घाटी : निम्न पुरा पाषाणिक मूठदार उपकरण
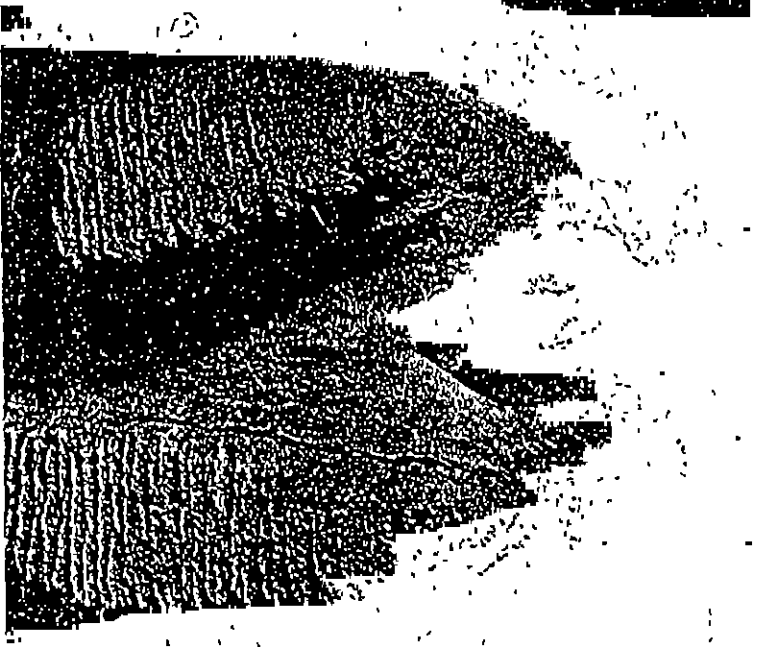
हाथी के खाने के दाँत का जीवाश्म
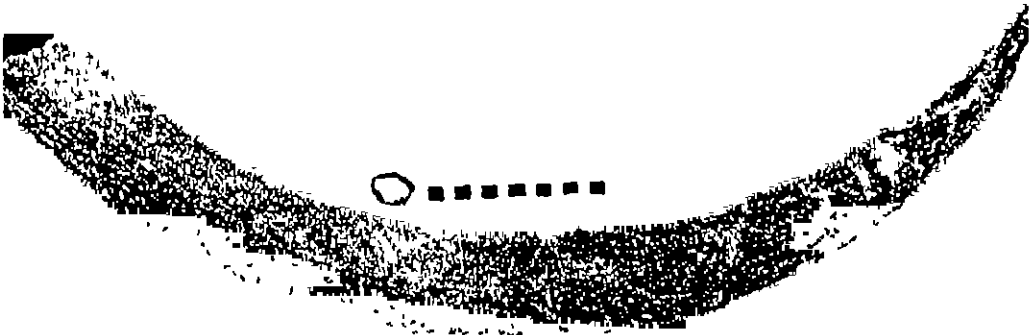
हाथीदाँत

छायाचित्र संख्या 6 - बेलन घाटी : निम्न पुरा पाषाणिक जीवाश्मित अवशेष

मध्य सोन घाटी :

सोन घाटी का भारत की प्रागैतिहासिक संस्कृतियो के अध्ययन की दृष्टि से विशेष महत्व है। सोन एक पहाड़ी नदी है जो अमरकण्टक के पास से निकली है। लगभग 485 किमी0 तक कैमूर की पहाड़ियों के कगार के साथ-साथ बहती है। इसके बाद उत्तर-पूर्व की ओर बहती हुई डेहरी आन सोन नामक स्थान पर गंगा नदी मे मिल जाती है।

येल-कैम्ब्रिज अभियान के निर्देशक डी टेरा तथा उसके बाद ज्वायनर ने प्रागैतिहासिक अध्ययन की दृष्टि से इस क्षेत्र के महत्व के सम्बन्ध में संकेत किया था। 1962-63 में निसार अहमद ने सोन की ऊपरी घाटी तथा 1958-62 मे राधाकान्त वर्मा ने आधुनिक सोनभद्र जिले का सर्वेक्षण किया था। 1974 के बाद से इसका सघन सर्वेक्षण प्रो0 जी0 आर0 शर्मा के निर्देशन में हुआ तथा उसके बाद से निरन्तर कार्य होता रहा है। इस सर्वेक्षण मे इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास विभाग के पुरातत्ववेत्ताओं ने विशेष भूमिका निभाई है। कालान्तर में वर्मा ने रीवा विश्वविद्यालय के तत्वावधान मे 1985 से 1997 तक सर्वेक्षण किया जिसके फलस्वरूप वनस्पतियो के जीवाश्म प्रकाश में आये। उन्होंने पटपरा में उत्खनन भी कराया।

सोन नदी के उत्तरवर्ती पहाड़ियों तथा सोन के सामानान्तर तट के निकट नीची पहाड़ी पर बहुत से पुरास्थलो को खोजा गया है। जहाँ से भारी सख्या में उपकरणों का संग्रह किया गया है। कुछ स्थलों का उत्खनन भी किया गया जिसमें सिहावल, नकसर, खुर्द, पटपरा तथा बघोर विशेष महत्वपूर्ण हैं।

सर्वेक्षण से बहुत से पुरास्थल, प्रागैतिहासिक उपकरण तथा जीवाश्म प्राप्त हुए हैं। जो तत्कालीन मानव संस्कृति पर विशेष प्रकाश डालते हैं। सोन घाटी के भूतात्विक जमाव को चार इकाइयों में बांटा गया है -

1. सिहावल जमाव
2. पटपरा जमाव
3. बघोर जमाव
4. खेतौही जमाव

यहाँ पर सिर्फ सिहावल जमाव का उल्लेख किया जा रहा है क्योंकि सिहावल जमाव से ही निम्न पुरापाषाण काल से सम्बन्धित है।

सिहावल जमाव :

सिहावल जमाव का नामकरण पुरास्थल के आधार पर किया गया है। यह निम्नवर्ती प्रातिनूतन कालीन जमाव है। सिहावल स्तर का 1.5 मीटर मोटा जमाव है। इस जमाव मे बालुकाश्म, शेल तथा क्वार्टजाइट के कोणाकार, गोलाकार पत्थर है, जो सूक्ष्म कणों से लेकर 50 से0 मी0 तक मोटे हैं। ये अर्द्धशुष्क जलवायु का निर्देश करते हैं। इसमे कहीं पर चितकबरी मिट्टी का जमाव भी मिलता है। इस जमाव के निम्न वर्ग से निम्न पुरापाषाणयुगीन उपकरण मिलते हैं। जिसमें नवनिर्मित तथा घिसे हुए दोनों मिलते हैं।

कालक्रम के आधार पर इसे मध्य से उच्च प्रातिनूतन काल के अन्तर्गत रखते हैं। इस स्तर से एक उष्मादीप्ति तिथि उपलब्ध हुई है जो 103,800 ± 19,800 वर्ष पूर्व है।

मध्य सोन घाटी मे किये गये सर्वेक्षणों एवं उत्खननो से स्पष्ट है कि इस क्षेत्र मे प्रागैतिहासिक मानव का पदार्पण उस समय हो गया था जब सिहावल जमाव का निक्षेपण हो रहा था, जिसकी तिथि मध्य प्रतिनूतन काल निर्धारित की गई है। इसके बाद से सोन घाटी मे मानव निरन्तर रहा।

सोन घाटी के सिहावल जमाव से तथा उत्तरवर्ती पहाड़ियों पर अवस्थित पुरास्थलों से बहुत अधिक संख्या में निम्न पुरापाषाण कालीन उपकरण, जिनमें नव-निर्मित उपकरणों की संख्या बहुत अधिक है। उपकरणो के स्वरूप तथा निर्माण प्रविधि के आधार पर उन्हे मध्य तथा विकसित एश्यूलियन के अन्तर्गत रख सकते हैं। अधिकांश उपकरण सुडौल तथा फलकित हैं। क्वार्टजाइट, चर्ट आदि पत्थरों का प्रयोग उपकरणों के निर्माण में किया गया है। कुछ उपकरणों पर लेवालेवा पद्धति के प्रयोग के प्रमाण भी स्पष्ट मिलते हैं (छायाचित्र संख्या 7)। उष्मादीप्ति तिथि विधि से इसकी तिथि 74,000 20,000 वर्ष पूर्व निर्धारित की गयी है।[1]

---

1 पाण्डेय, जे0 एन0, 1995, *पुरातत्व विमर्श*
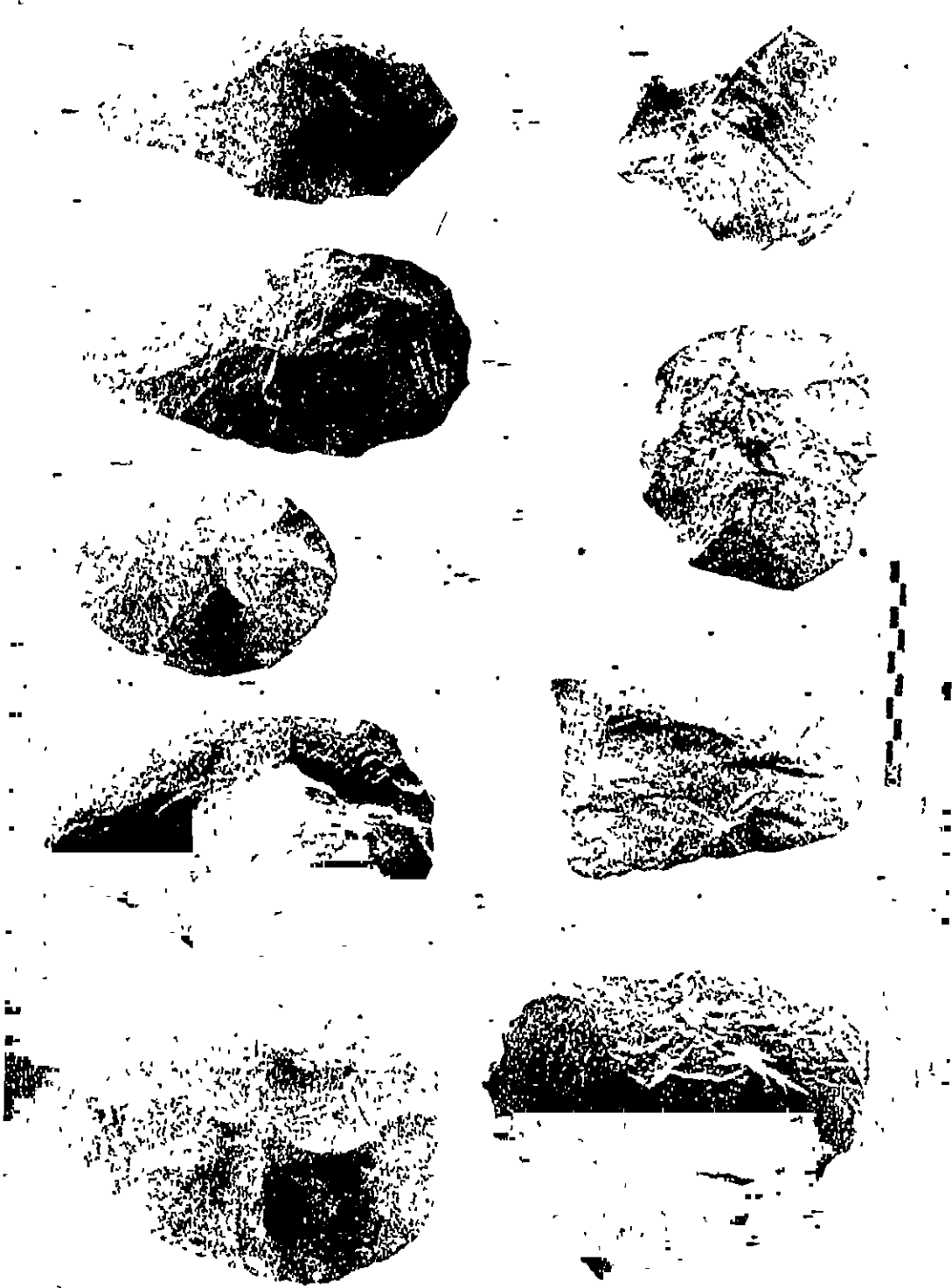
छायाचित्र संख्या 7 - सोन घाटी · निम्न पुरा पाषाणिक उपकरण

अदवा घाटी में नूतन अन्वेषण

अदवा घाटी मे मध्य प्रदेश के रीवा जनपद एवं उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर जनपद मे 1996 के मार्च-अप्रैल माह में नवीन पुरातात्विक खोजें की गयी। इसके पूर्व फरवरी के अन्त एवं मार्च के प्रारम्भ में रीवा जनपद के धनुही नामक स्थल पर एक शिलाश्रय के उत्खनन से परवर्ती उच्च पुरापाषाण कालीन संस्कृति के दिलचस्प प्रमाण प्राप्त हुए थे। इस उत्खनन से प्राथमिक स्थलों की खोज हुई। जहाँ पर सघन सर्वेक्षण के फलस्वरूप यहा पर प्रारम्भिक पाषाण युगीन संस्कृति अर्थात निम्न पुरापाषाण काल से लेकर क्रमशः मध्य पुरापाषाण काल, उच्च पुरापाषाण काल, मध्य पाषाण काल, नव पाषाण काल तथा ताम्र पाषाण कालीन संस्कृतियों के पुरास्थल प्रचुर संख्या में प्रकाश मे आये हैं यही नही यह नदी घाटी बृहत्पाषाणिक समाधि संस्कृति के लिए भी भारतीय पुरातत्व मे विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कुछ पूर्व अन्वेषित स्थलों का भी पुनः निरीक्षण किया गया तथा उनमें दिलचस्प नयी विशेषताएं देखी एवं अभिलेखित की गयी है (मानचित्र संख्या 5 और 6)।

मिर्जापुर जनपद के स्थल

मनिगड़ा :

मनिगड़ा के पूर्व में एश्यूलियन संस्कृति के प्राथमिक स्थलो की खोज की गयी थी।

बैधा :

बैधा अदवा नदी के दाहिने किनारे पर स्थित है। बैधा के विविध क्षेत्रों में मध्य पुरा पाषाण, उच्च पुरापाषाण एवं मध्य पाषाण संस्कृति से सम्बन्धित पुरावशेष प्राप्त हुए हैं।

बैधा I :

बैधा I, बैधा गाँव के दक्षिण-पूर्व मे स्थित है तथा अदवा के दोनों किनारों के सहारे विस्तृत है। यह उच्च पूर्व पाषाण एवं प्रारम्भिक मध्य पाषाण संस्कृतियो का महत्वपूर्ण स्थल है। उच्च पुरापाषाण उद्योग के पुरावशेषो मे बेलनकार फ्लूटेड कोर (8), फलक (5), कोर पर बने फलक (1), रिजीव नेटिंग ब्लेड (1), ब्लेड (1), पृष्ठ वाले ब्लेड (2), ब्लेड (3) और ब्लेडों के टुकड़े (4) सम्मिलित हैं। विखण्डित ब्लेड (1), विखण्डित एवं सामान्य परिष्कृत ब्लेड (2), दांतेदार हंसुवा (1),

Map of Adwa Valley

Showing location of sites

Scale 1 inch to 6 4 km

INDEX OF SYMBOLS

- △ LOWER PALAEOLITHIC
- ▲ MIDDLE PALAEOLITHIC
- ○ UPPER PALAEOLITHIC
- ◐ EPI PALAEOLITHIC
- ● EARLY MESOLITHIC
- ○ NON GEOMETRIC MICROLITHS
- □ *GEOMETRIC MICROLITHS WITH TRIANGLE*
- ◪ GEOMETRIC MICROLITHS WITH TRAPEZE
- ■ GEOMETRIC MICROLITHS WITH TRIANGLE & TRAPEZE
- ✱ NEOLITHIC

Name of sites

Lower Palaeolithic
1 Dhavarahiya Pahadi (Jadkuda)
2 Chaurasi Pahadi (Jarbaila)
3 Calahawa Pahadi (Ghaghawa)
4 Baharaha Pahadi (Magha)
5 Palahar Pahadi (Manigada)
6. Pokhara

Middle Palaeolithic
1 Jiraunha Pahadi (Ghaghawa)
2 Badka Daur (Magha)
3 Piparahiya Pahadi (Manigada)
4 Songara

Upper Palaeolithic
1 Koliha Tola (Bahera Dabar)
2 Bhondkodwari (Harrai)
3. Hardi
4 Bhodiyan Tola (Piprahi)
5 Jogibir
6 Kudiya
7 Tekdah
8 Hardihava Dandi (Thengarahi)
9 Pulpurya Dandi (Thengarahi)
10 Kolandih (Mahadeva)
11 Mgodi Dandi (Amahia)
12 Jignahwa Dandi (Amahia) N
13. Tendahariya Dandi (Amahia)-S
14 Vijai wali Dandi (Amahia)
15 Tendahariya Dandi (Amahia)-N
16 Dhankuha
17 Danizon (Munhal II)
18 Chakarghata Dandi (Baghali Tola)
19 Samarmara Dandi (Magha)
20 Semarahiya Dandi (Manigada)
21 Mahdevan Dandi (Pokhra)
22 Hatheda
23. Madhor
24 Pathraha
25 Subavan

Non Geometric Microliths
1 Dahiya Tola (Harrai)
2 Kharabahva Dandi (Sardaman)
3 Kandala Tola (Sardaman)
4 Amrahiya Dandi (Amahia)
5 Charahiya
6 Kankachh
7 Badaka Daur (Magha)
8 Bardahiya Dandi (Manigada)
9 Nimahiya Dandi (Pokhra)
10 Mudhuliya Dandi (Kaujhar)
11 Chandahava Dandi (Baidha)
12. Basuli Dandi (Gorgi)
13 Tikuri Dandi (Ahugi Kala)
14 Barahula Badaunhi
15 Banjari
16 Purva
17 Dohar
18 Kolar

Geometric Microliths with Triangle
1 Bhela Pahadi (Bahera Dabar)
2 Majhari Tola (Adalpur)
3 Barchhihya
4 Dhanuhinar
5 Pokhari
6 Kakrahava Dandi (Magha)
7 Bhaunvahva Dandi (Manigada)
8 Hadahiya Dandi (Manigada)
9 Tila
10 Kothi Khurd
11 Ahugi Khurd
12 Chhirahia Dandi (Baidha)
13 Pathrahiya Dandi (Baidha)
14 Sothiya
15 Dhendhi

Epi Palaeolithic
1 Chhitha Tola (Baherodabar)
2 Modar Tola (Adalpur)
3. Birada
4 Belha
5 Jignahva Dandi (Amahia)-S
6. Tenduahi Dandi (Amahia)
7 Bhodakahva Dandi (Amahia)
8 Palpariya Dandi (Munhal-I)
9 Chaura Dandi (Munhal-II)
10 Barahva Dandi (Nebuha)
11 Chaurasi Dandi (Jarbaila)
12 Bhodiyan Tola
13 Olhva
14 Kushahva Dandi (Magha)
15 Miruva Daur (Manigada)
16 Piprahiya Dandi (Manigada)
17 Sukhta
18 Bairihva Dandi (Pokhra)
19 Karaundahagram
20 Khaikharihva Dandi (Songara)
21 Bhaivari
22 Bedaur

Early Mesolithic
1 Gadaha Tola (Harrai)
2. Mjhraul Dandi (Piprahi)
3 Amrahiya Dandi (Piprahi)
4 Magrahva
5 Bahrahiya Dandi (Mehdeva)
6 Pakarihva Dandi (Nebuha)
7 Lakhvariya
8. Nevas Pahadi (Jadakuda)
9 Balgan
10 Baharha Dandi (Magha)
11 Levarahiya Dandi (Manigada)
12. Bhaklava Dandi (Sonagara)
13 Baluva Sarhara
14 Amha

Geometric Microliths with Trapeze
1 Baghodari
2 Nakvar
3 Semrahiya
4 Borahva Dandi (Baidha)
5 Haliya

Geometric Microliths with Traingle & Trapeze
1 Karhiyar Tola (Adalpur)
2 Dudiya Dandi (Sardaman)
3 Patharahiya
4 Chauki Dandi (Songara)

Neolithic
1 Kakra Dandi (Magha)
2. Bhalkhuhiya Dandi (Indan)
3 Tohan Dandi (Tokwa)
4 Baraunha
5 Kosala Khandi (Manigada)

मानचित्र संख्या 5 - अदवा घाटी का विस्तार

ARCHAEOLOGICAL SITES IN THE ADWA VALLEY
0 4 8 KM
1 JHANNA KEVAL JHAR
2 BAIDHA
3 GURGI
4 DEORI
5 MANIGARA
6 MAGARAHWA
7 INDARI
8 ADHESAR EAST
9 —— " —— WEST
10 POKHARI
11 POKHARA
12 MUDPELI
13 CHATNAHIA
14 MANPASAR-BARAUNHA
15 JARKUL
16 LAKSHAMANBAG-JARKUL
17 MAGHA
18 MAHADEO-BAJAHAGHAT
19 AMAHATA
20 KHAMRAHIA
21 NAKWAR
22 DHENGRAHI
23 PANDARIA
GREAT DECCAN ROAD
ADWA N.
HANUMANA
SIHAWAL
IMILIA
SON N
GOPAD N.
24°55′
50′
45′
40′
35′
30′
81°45′
50′
55′
82°
5′
10′
15′
20′
82°25′

समलम्ब (3) एवं खुरचनी मुख्य है। चर्ट इनके निर्माण का प्रमुख पत्थर था। एक छिद्रदार प्रस्तर खण्ड भी इस स्थल से प्राप्त हुआ है।

बैधा II :

बैधा गाँव से एक किलोमीटर उत्तर की ओर अदवा नदी के दोनों किनारों पर स्थित है। यह भी उच्च पुरापाषाणिक एवं मध्य पाषाणिक स्थल है।

बैधा III एवं बैधा IV :

यहाँ पर विकसित प्रकार के लघु पाषाण उपकरण एवं कोटिया प्रकार के मृद्भाण्ड प्राप्त हुए हैं। पुटपुरिहवा (बैधा) उच्च पुरापाषाण एवं मध्य पाषाण काल का महत्वपूर्ण स्थल है जो अदवा नदी के दाहिने किनारे पर स्थित है।

बैधा V (मुरलिया पहाड़ी) :

यह विकसित लघु पाषाण उपकरणों का स्थल है। चर्ट पर बनी एक दांतेदार ब्लेड उल्लेखनीय है।

बैधा VI :

यह मध्य पुरापाषाण संस्कृति का अति विस्तृत प्राथमिक स्थल है। यह अदवा नदी के दाहिने किनारे पर चट्टानी धरातल पर स्थित है। इस स्थल से कोर, फलक एवं परिष्कृत एवं अपरिष्कृत उपकरण प्राप्त हुए हैं जो सूक्ष्म कणों एवं गहरे भूरे रंग के क्वार्टजाइट से निर्मित हैं। यह स्थल पाषाण उद्योग एवं उसके वितरण प्रतिरूप के अध्ययन हेतु काफी महत्वपूर्ण हैं। इस स्थल से प्राप्त पुरावशेषों मे कोर (44), फलक (39), फलक खण्ड (64), खण्ड (40) एवं प्रयुक्त फलक एवं फलक खण्ड जैसे उपकरण (84) मुख्य हैं। समतल धरातल पर उपलब्ध कोरटेक्स से संकेत मिलता है कि सम्भवतः प्रस्तर खण्डों एवं कंकड़ो को कोर बनाने हेतु नदी घाटी से प्राप्त किया गया था। समतलीय कोर का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं कुछ कोरो में एक तल पर केन्द्र विकरित फलक के निशान हैं जबकि दूसरा तल किनारे पर फलकीकृत है। जो तलीय आधार का कार्य करते थे तथा ऐसे कोरों से हटाए गये फलकों मे उदरतलों पर फलक निशान है। ऐसे कोर क्रोड़ों पर बने गंडासों या छूरों के

अच्छे उदाहरण हैं। कुछ पतले क्रोडों को फलकीकरण द्वारा चाकूओं की आकृति मे बदल दिया गया है। बहुफलक प्रहरी (क्लीवर) आधार वाले कच्छप क्रोड एवं लेवैलियन क्रोड यहाँ के प्रस्तर उद्योग के उल्लेखनीय उदाहरण है क्रोड का आकार 9.5 सेमी × 8.25 सेमी × 4.5 सेमी से लेकर 6 सेमी × 5.25 सेमी तक के हैं। फलक का आकार 7.5 सेमी × 5.5 सेमी × 2.25 सेमी0 से लेकर 3.25 सेमी × 2.15 सेमी × 1 सेमी तक हैं। फलक पर बने परिष्कृत उपकरणों मे गोल खुरचनी, गोलाकार फलक पर बनी नतोदर तथा उन्नोतोदर खुरचनी गोल फलक पर बनी उन्नोतोदार खुरचनी, ब्लेड नुमा फलक पर बनी किनारा खुरचनी, समानान्तर फलक आदि।

मघा I :

मघा-1, अधेसर पहाड़ी के पास स्थित है। यहाँ से चर्ट आधारित जंग लगी हुई पुरापाषाणिक पुरावशेष तथा चर्ट, चाल्सेडनी, जैस्पर एवं अगेट पर निर्मित लघु पाषाण उपकरण एकत्र किये गये हैं।

मघा II :

समरमरा नाला के दाहिने किनारे पर स्थित है। यहाँ से उच्च पुरापाषाण एवं मध्य पाषाण कालीन पुरावशेषो एवं एक प्रस्तर डिस्क मुख्य है।

मघा III :

मघा III भी समरमरा नाला के दाहिने किनारे पर स्थित है। इस स्थल से चर्ट, चाल्सेडनी, एगेट, कार्नेलियन पर आधारित लघु पाषाण उपकरण तथा एक त्रिभुजाकार परिष्कृत उपकरण प्राप्त हुआ है।

अधेसर-दक्षिण-पश्चिमी :

अधेसर, मघा से एक किलोमीटर दूर समरमरा नाले के दाहिने किनारे पर स्थित है। उच्च पुरापाषाण संस्कृति के प्राथमिक व्यवसाय का महत्वपूर्ण स्थल है। यहां पर धूसर चर्ट पर निर्मित उपकरण एवं चर्ट के फलक एवं कोर का संगम मिलता है।

अधेसर उत्तर पश्चिम (मनिगरा) :

अधेसर समरमरा नाला के दाहिने किनारे पर स्थित है। यहां पर उच्च पुरापाषाण कालीन चर्ट पर बनी जग लगे पुरावशेष प्राप्त हुए हैं। साथ ही साथ लघुपाषाण उद्योग संबंधी अनेक उपकरण भी मिलते हैं।

देवरी :

देवरी, मनिगरा के उत्तर-पश्चिम में स्थित है। यहां की पुरावस्तुओं में चर्ट पर बनी जंग लगी उच्च पुरापाषाण कालीन पुरावस्तुएं प्राप्त हुए हैं।

मगरहवा :

मगरहवा मनिगरा के उत्तर में पोखरा नाला पर स्थित है। यहाँ पर खुदाई से प्राप्त लघुपाषाणिक उपकरण जैसे - चर्ट एवं चाल्सेडनी पर बने लम्बे कोर, ब्लेड एवं फलक प्राप्त हुए हैं। एक छिद्रदार प्रस्तर खण्ड भी प्राप्त हुआ हैं। लाल बर्तन एवं कोटिया प्रकार के काले पात्र भी यहां से प्राप्त हुए हैं।

पोखरा I :

पोखरा-I पोखरा गांव से 1 किलोमीटर दक्षिण करीकच्छ गाँव के ठीक सामने अदवा नदी के दाहिने किनारे पर स्थित है। इस स्थल से धूसर रंग वाले चर्ट पर निर्मित लघुपाषाणिक पुरावशेष प्राप्त हुए है। कुछ क्रिस्टल कार्नेलियन एवं अगेट पर भी आधारित हैं। परिष्कृत उपकरणों मे हंसुवा, सूजा एवं विखण्डित ब्लेड शामिल है। यहाँ एक महत्वपूर्ण व्यावसायिक स्थल भी मालूम पड़ता है। उत्तर की ओर एक छोटा स्थल है जहाँ से लाल रग की कोटिया प्रकार के मृद्भाण्ड मिले हैं।

पोखरा II :

पोखरा-II, पोखरा I से दक्षिण पश्चिम अदवा नदी के दाहिने किनारे की तरफ, नाला के दोनो किनारों पर स्थित है। प्रमुख पुरावशेषों में बेलनाकार कोर (6), मोटी गढ़न के ब्लेड (2), प्रयुक्त एवं खण्ड ब्लेड (3) एवं ब्लेड खण्ड (4) हैं, जिनमे 14 चर्ट पर 2 अगेट पर एवं 1 चाल्सेडनी

पर बने हैं। यह स्थल प्रारम्भिक मध्य पाषाण युग से सम्बन्धित है।

बरौधा II :

बरौधा I के उत्तर मे स्थित है। यहाँ से कोटियाँ प्रकार के मृद्भाण्ड प्राप्त हुए हैं।

लक्ष्मन बाग - जरकुल :

कैमूर श्रेणी के पूर्वी ढाल पर अदवा नदी के बाये किनारे पर स्थित है। इस स्थल से कुछ लघु पाषाण उपकरण एवं कोटिया प्रकार के मृद्भाण्ड प्राप्त हुए हैं।

छतनहिया :

पोखरा से दक्षिण-पश्चिम अदवा नदी के दाहिने किनारे पर पीपरगांव से 3 किलोमीटर दक्षिण पश्चिम मे स्थित है। यहां से विकसित प्रकार के लघुपाषाण उपकरण जिनमे लम्बे कोर मुख्य हैं, प्राप्त हुए हैं।

मुडपेली :

मुडपेली कहेजुआ एवं घघवा नाला के संगम पर स्थित है। यहां से कुछ लघुपाषाणोपकरण एवं कोटिया प्रकार की मृद्भाण्डो में ग्रे रंग एवं लाल रंग के पात्र मिले हैं।

इन्दारी :

इन्दारी से नव पाषाणिक मृद्भाण्ड प्राप्त हुए हैं। यहां पर हस्तनिर्मित खुरदरे पात्र तसले के रूप में पाये गये हैं।

अधेसर पश्चिम I :

यहां से कोटियां प्रकार की लाल मृद्भाण्ड प्राप्त हुए हैं।

अधेसर पश्चिम II :

यहाँ से धूसर रंग के कोटिया मृद्भाण्ड एवं चर्ट पर बने प्रारम्भिक लघु पाषाण उपकरण प्राप्त हुए हैं।

पंडरिया :

पंडरिया पटपरा के पूर्व में स्थित है। यहां से कोटिया प्रकार की लाल मृद्भाण्ड प्राप्त हुए है।

झन्रा केवलझार :

झन्रा केवलझार, मुरलिया नाला पर स्थित है। यहाँ महापाषाणिक वस्तुएं प्राप्त हुई है। ब्लैक स्लिप्ड वेयर और लाल रंग के कोटिया प्रकार के मृद्भाण्ड तथा कुछ लघुपाषाण उपकरण भी मिलते है।

खंभरिया :

खंभरिया, कहेजुआ के बायें किनारे पर स्थित है। ब्लैक स्लिप्ड वेयर और रेड वेयर कोटिया प्रकार के मृद्भाण्ड प्राप्त हुआ है।

गुर्गी :

गुर्गी, कहेंजुआ के दाहिनी किनारे पर स्थित है। यहाँ से कोटिया मृद्भाण्ड प्रकार के लाल पात्र तथा एक छोटा मापक पात्र भी प्राप्त हुआ है।

जरकुल :

जरकुल, कैमूर श्रेणी के ढाल पर अदवा नदी के बाये किनारे पर स्थित है। कोटिया मृद्भाण्ड सम्बन्धी गेरू लाल पात्र, एक सिल एवं चर्ट का एक कोर इस स्थल से प्राप्त हुए हैं।

रीवा जनपद (म० प्र०) के स्थल

अमहटा :

अमहटा, अदवा नदी के दाहिने किनारे पर स्थित है। यहां से उच्च पुरापाषाण कालीन पुरावस्तुएं प्राप्त हुई है। साथ ही चर्ट, चाल्सेडनी एवं जैस्पर पर निर्मित लम्बे कोर वाली लघुपाषाणिक पुरावशेष भी यहां से प्राप्त हुयी हैं।

पोखरी :

जरकुल से उत्तर पूर्व की ओर स्थित है। यहां से प्राप्त पुरावशेषों में चर्ट पर बने लघु पाषाणिक उपकरण एव कोटिया मृद्भाण्ड प्रकार के लाल पात्र एवं गेरू लाल पात्र मुख्य हैं।

महादेव (बजरा घाट) :

महादेव से चर्ट पर बनी उच्च पुरापाषाण काल के पुरावस्तुएं प्राप्त हुई हैं। यहा की फलक एवं ब्लेड अति जंग युक्त है। कुछ लघु पाषाणिक ब्लेड भी मिले हैं।

नकवर :

नकवर, पिपराही बगदारा मार्ग पर पिपराही से पूर्व में स्थित है। अव्यवस्थित बृहत्पाषाणिक सस्कृति से सम्बन्धित कोटिया के लाल पात्र मिले हैं। एक जंग युक्त फलक प्राप्त हुआ है।

ढेंगराही I :

ढेंगराही, कैमूर श्रेणी के ढाल पर अदवा नदी के बाये तरफ वीरादेयी के पूर्व मे स्थित है यहाँ काले एवं लाल रंग के मृद्भाण्ड जो कोटिया एवं ककोरिया प्रकार से सम्बन्धित हो सकते हैं।

ढेंगराही II :

ढेगराही II, ढेगराही I एवं नाले के पश्चिम में स्थित है। यहां की कला वस्तुओ में चर्ट, चाल्सेडनी अगेट, कार्नेलियन पर आधारित विकसित प्रकार के लघुपाषाण उपकरण एवं कोटिया प्रकार के मृद्भाण्ड प्राप्त हुए हैं।

ढेंगराही - III :

ढेगराही III से कोटिया प्रकार के लाल पात्रों के टुकड़े प्राप्त हुए है।

निष्कर्ष :

अदवा घाटी में की गयी पुरातात्विक सर्वेक्षण से प्राथमिक संदर्भ में पाषाणयुगीन स्थलों की क्षमता

का सकेत मिलता है। जो प्रतिबन्धित क्षेत्रो मे होने के कारण प्राकृतिक अपदाओं से दूर है चूँकि इस क्षेत्र मे मानव के क्रिया कलापो जैसे बाध एवं बांधों का निर्माण पत्थर खनन आदि का तीव्रता के साथ अतिक्रमण बढ़ रहा है अतः पुरातत्ववेत्ताओं द्वारा इस क्षेत्र के गहन अध्ययन की आवश्यकता है।[1]

मध्य पुरापाषाण काल

पुरातत्वविदो ने समय-समय पर मध्य पुरापाषाण काल से सम्बन्धित अनेक स्थल विन्ध्य क्षेत्र से खोज निकाला है। उत्तर प्रदेश का दक्षिणी पठारी भाग प्रागैतिहासिक अध्येताओं के लिए विशेष आकर्षण का केन्द्र रहा है। चन्दौली जिले की चकिया तहसील, मिर्जापुर, इलाहाबाद जिले की मेजा-करछना तथा बारा तहसीलें, बांदा, हमीरपुर, झाँसी तथा ललितपुर नामक जिलों में मध्य पुरापाषाणिक अनेक पुरास्थल विद्यमान हैं। मिर्जापुर का सिंगरौली बेसिन तथा सोन का चोपन क्षेत्र इलाहाबाद मे बेलनघाटी आदि विशेष उल्लेखनीय पुरास्थल है। मध्य प्रदेश के रायसेन, सिहोर, जबलपुर, सीधी, सहडोल, दमोह, पन्ना, टीकमगढ़, दतिया आदि जिले मध्य पुरापाषाणिक अवशेषो के लिए सुविख्यात है। रायसेन जिले मे स्थित भीमबैठका की गुफाएं, पन्ना मे पाण्डव प्रपात तथा सीधी जिले मे मध्य सोन नदी की घाटी में विद्यमान सिंहावल, बघोर, पटपरा आदि पुरास्थल इस सन्दर्भ मे विशेष महत्वपूर्ण माने जा सकते हैं।

मैहर - II (24^0 16' उत्तरी अक्षांश, 80^0 46' पूर्वी देशान्तर)

यहाँ पर सिर्फ मैहर-II के बारे मे लिखा जा रहा है क्योंकि मैहर-II से ही मध्य पुरापाषाण काल के पुरावशेष मिले हैं। यह स्थल मैहर से लगभग 43 सेमी0 अधिक ऊँचाई पर है। मैहर प्रथम से मैहर - II 270 मी0 ऊँचाई पर है। यहा पर सतह के ऊपर लाल तथा काले महीन काणिक क्वार्टजाइट के उपकरण मिले थे। यहां पर 25 वर्ग 1 × 1 मीटर की खन्ती डाली गयी थी। यहां के धरातल से फलक, फलकों के टुकड़े, पुर्नगढ़ित फलक, ब्लेड तथा कुछ स्क्रेपर, कोर तथा क्लीवर भी मिले थे।

---

1 मिश्रा वी0 डी0, मिश्रा, बी0 बी0 और पाल, जे0 एन0, रिसेन्ट एक्सपोलेशन इन दि अदवा वैली इन दि डिस्टिक ऑफ मिर्जापुर (यू0 पी0) एण्ड सीधी एण्ड रीवा (एम0 पी0) *प्राग्धारा नं0 7*, पृष्ठ 59-65

इण्डियन आर्कियोलॉजी . ए रिव्यू, 1980-81

इण्डियन आर्कियोलॉजी ' ए रिव्यू, 1979-80, ठाकुर, के0 1980, एक्सपलोरेशन इन दि अदवा वैली, *हिस्ट्री एण्ड आर्कियोलॉजी, वौलूम नं0 1*, पृष्ठ 340-344

मैहर प्रथम 62 सेमी0 3 × 3 मी0 गहराई तक खोदा गया। उत्खनन के बाद 20 सेमी0 मोटा लाल रंग का जमाव प्रकाश मे आया जिसके नीचे मध्य पुरापाषाणिक उपकरण थे। उत्खनित उपकरणो में कोर, स्क्रेपर, फलक, पुनर्गढ़ित फलक, डिस्क्वायड आदि ये सभी क्वार्टजाइट पर बने हुए हैं।

बेलन घाटी :

बेलन घाटी मध्य पुरापाषाण सस्कृति की दृष्टि से उत्तर प्रदेश मे महत्वपूर्ण स्थलों मे से एक है। मध्य पुरापाषाण कालीन उपकरणो की उत्पत्ति एव विकास की समस्याओ पर प्रकाश डालने वाला यह भारत का पहला स्थल है।

बेलन घाटी के द्वितीय ग्रेवॅल से मध्य पुरापाषाण कालीन उपकरण मिले हैं (छायाचित्र संख्या 8, 9)। द्वितीय ग्रेवल 2 74 मीटर मोटा है। इसको तीन भागों में ऊपर से नीचे अ, ब, स मे विभाजित किया गया है। इसमे से 'ब' जमाव मे बहुत स्पष्ट क्रास सस्तरण (Cross Bedding) मिलता है।

ग्रेवॅल के उपविभागों से प्राप्त पुरातात्विक सामग्री मध्य पुरापाषाण काल के उपकरणो मे एक विकास क्रम का निर्देश करती है। ग्रैवेल का 'स' उपविभाग निम्न पुरापाषाण काल से मध्य पुरापाषाण काल के परिवर्तन का द्योतन करता है। इस जमाव से फलक पर बने उपकरण प्राप्त हुए हैं। क्लीवर कम है स्क्रेपर अधिक है, हैण्डेक्स नहीं मिले हैं। इन उपकरणो की संख्या यह बताती है कि प्राचीन उद्योग का अन्त तथा नवीन उद्योग का क्रमिक विकास हो रहा था। इस स्तर से बाँस नमाडिकस के जीवाश्म भी मिले हैं।

द्वितीय ग्रैवेल के ऊपर रक्ताभ गाद मिट्टी का जमाव है। ग्रैवेल 1.26 मीटर मोटा है। इसमे भी मध्य पुरापाषाण काल के उपकरण मिले हैं। चर्ट पर बने स्क्रेपर 85% तथा ब्लेड 15% हैं। मध्य पुरापाषाण कालीन स्तरों के ऊपर के जमावों से पुनः मध्य पुरापाषाण काल उच्च पुरापाषाण काल के परिवर्तन के साक्ष्य मिले हैं।

मध्य पुरापाषाण कालीन उपकरण बेलन घाटी के अतिरिक्त अन्य पुरास्थलो से भी मिले हैं। इन स्थलों में बटाऊबीट, खूटाबीर, मुडवा, नाडलकला आदि हैं।
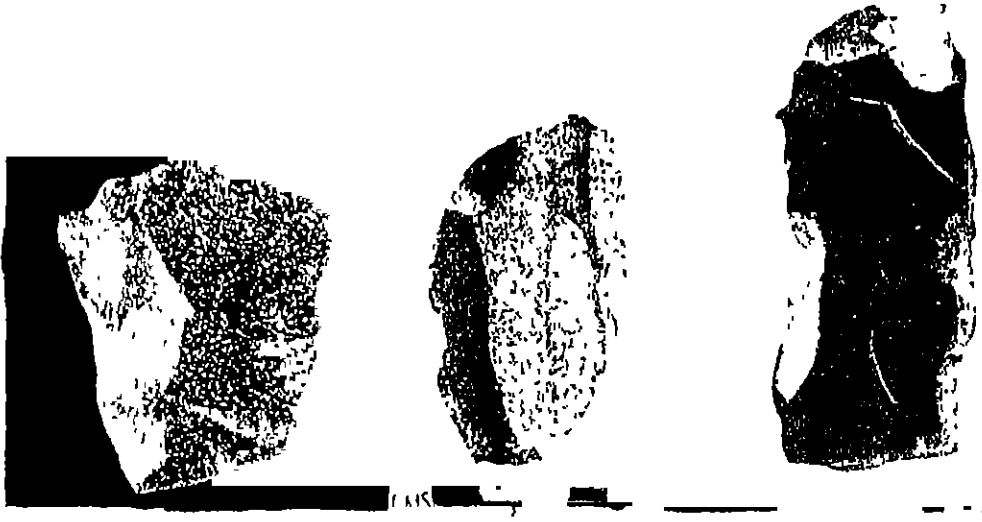
छायाचित्र संख्या 8 - बेलन घाटी : मध्य पुरा पाषाणिक उपकरण
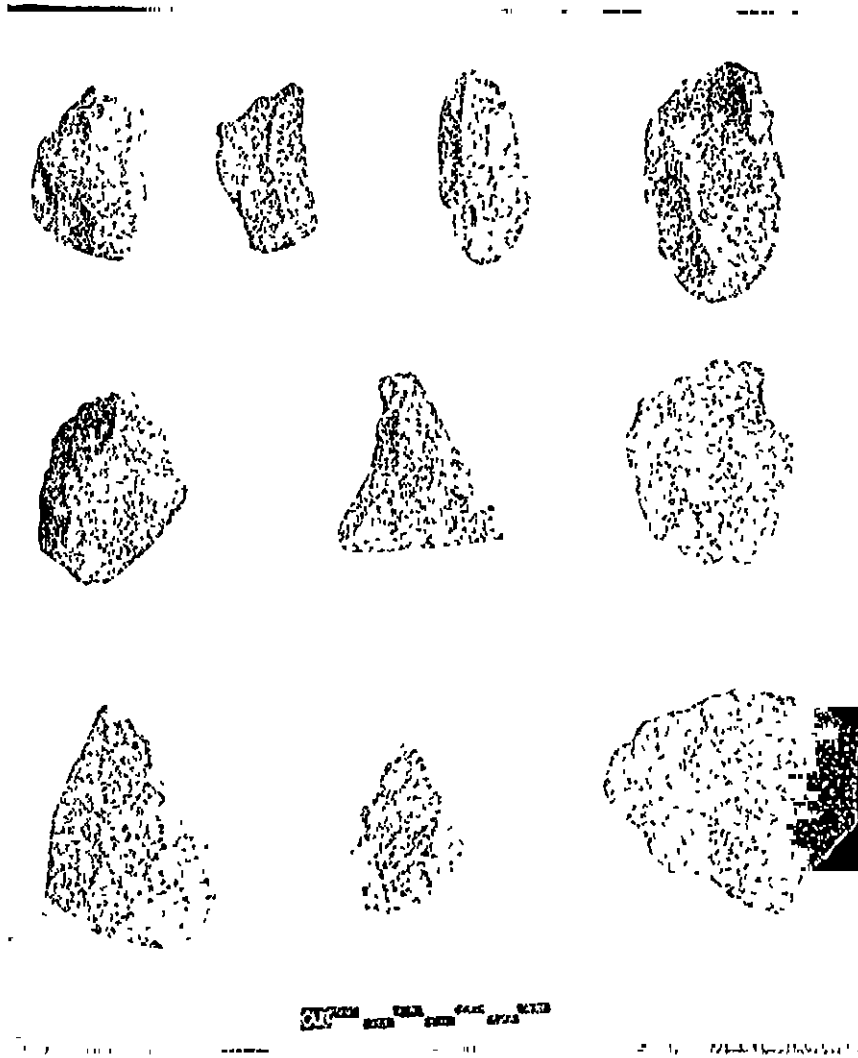
छायाचित्र संख्या 9 - बेलन घाटी : मध्य पुरा पाषाणिक उपकरण

बटाऊबीर[1] तथा खूटाबीर[2] से बहुत अधिक संख्या मे अच्छे किस्म के क्वार्टजाइट पर बने उपकरण प्राप्त हुए है। चर्ट का उपयोग नही किया गया है। शिलाखण्डों का फलकीकरण करके उपकरणों का निर्माण किया गया है। स्क्रेपर की संख्या अधिक है। स्क्रेपरों के अतिरिक्त ब्लेड, शर, छिद्रक और फलक भी प्रभूत संख्या में मिले है। लेवालेवा पद्धति का विकास हो गया था, क्योंकि उस पद्धति से निकाले गये फलक और कोर भी प्राप्त हुए हैं। उपकरणों में पुनर्गढ़न के प्रमाण मिलते हैं, फलको के निकालने के लिए कोमल अथवा बेलनाकार हथौड़े का ही प्रयोग किया जाता था।

सोन घाटी :

सोन घाटी के पटपरा जमाव से मध्य पुरापाषाण काल के उपकरण मिले है। इसका नामकरण पटपरा नामक गांव के निकट अनुभाग पर आधारित है। यह जमाव 10 मीटर मोटा है यह अपने लाल रंग के कारण पहचाना जाता है। इसमें बालू के कण, बलुआ पत्थर, क्वार्ट्ज, शेल तथा क्वार्टजाइट के छोटे टुकड़े भी मिलते हैं।

मध्य पुरापाषाण कालीन उद्योग मे फलक की बहुलता थी। फलको के निकालने के लिए अप्रत्यक्ष संघात प्रविधि का प्रयोग होने लगा था। फलकित अघात-स्थलों के देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि लेवालेवा प्रविधि का प्रयोग होने लगा था।

मध्य पुरापाषाण काल के स्तर से एक क्लीवर मिला है जो आकार मे छोटा तथा सुडौल है। यहाँ के उपकरण समुदाय में विविध प्रकार के स्क्रेपर, ब्लेड, छिद्रक तथा शर विशेष उल्लेखनीय है (रेखाचित्र संख्या 1)। अधिकांश उपकरणो पर पुनर्गढ़न भी मिला है। कभी-कभी निपीड प्रविधि का भी प्रचलन था किन्तु इसके प्रमाण बहुत कम मिले हैं।

उपकरणों के निर्माण मे महीन कणो के पत्थर फ्लिण्ट, चर्ट, जैस्पर, ब्लैक स्टोन आदि का प्रयोग हुआ है। क्वार्टजाइट का प्रयोग नगण्य है। पटपरा जमाव के अन्दर टुफा (Tufa) जमाव भी मिलता है जो ऊपर से अत्यन्त सिकुड़ा हुआ लगता है। इस जमाव में प्रायः वनस्पतिक जीवाश्म विशेषतः पत्ती के जीवाश्म (Leaf Fossils) (छायाचित्र संख्या 10) काफी मात्रा मे मिलते हैं, जिनसे इस काल के पर्यावरण पर विशेष प्रकाश पड़ता है। इस जमाव से मध्य पुरापाषाणकालीन उपकरण बहुतायत से मिले हैं। इनमें नवनिर्मित उपकरणों की संख्या अधिक है।

---

1. *इण्डियन आर्कियोलॉजी : ए रिव्यू*, 1968-69, पृष्ठ 34
2. *इण्डियन आर्कियोलॉजी · ए रिव्यू*, 1969-70
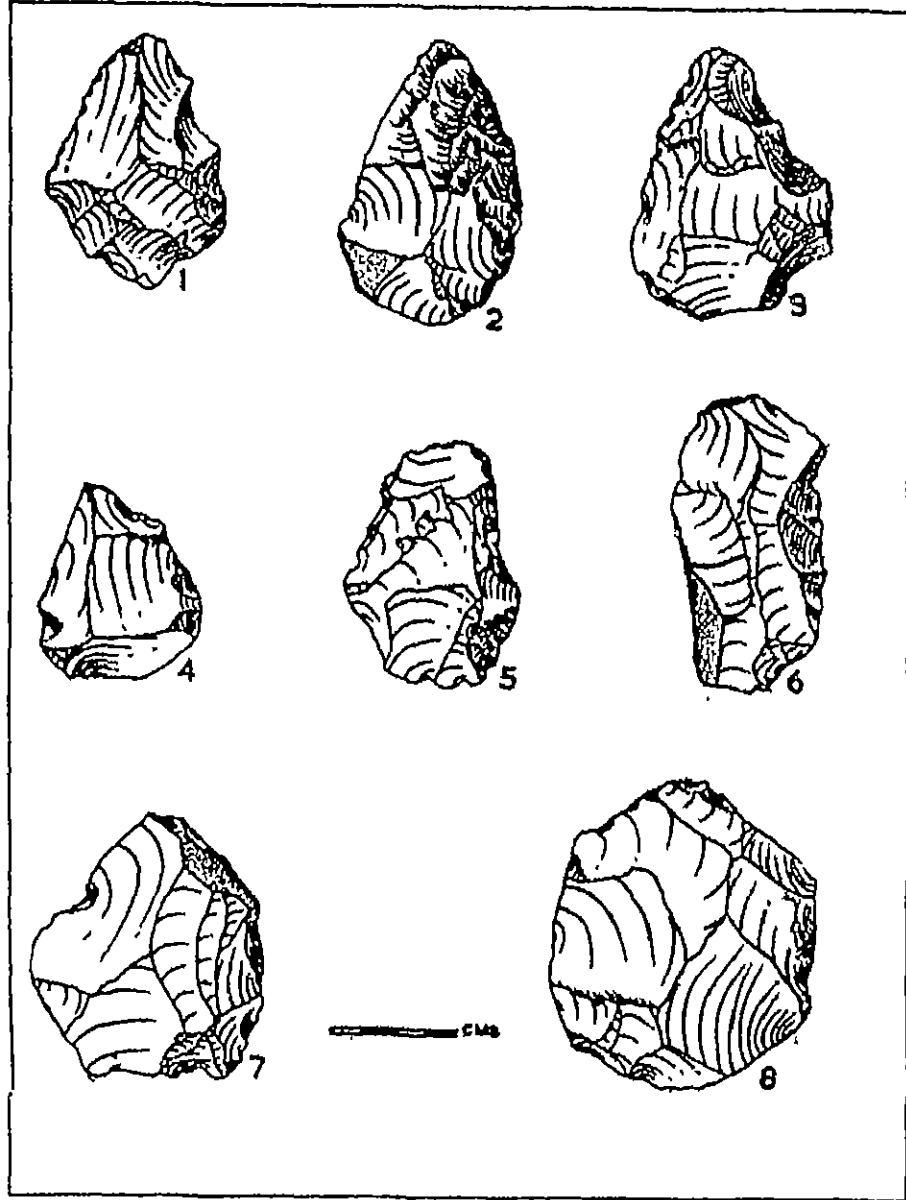
रेखाचित्र संख्या 1 - सोनघाटी : मध्य पूर्व पाषाण युगीन उपकरण

छायाचित्र सख्या 10 - सोन घाटी : मध्य पुरा पाषाणिक पत्ती के जीवाश्म

उच्च पुरापाषाण काल

प्रारम्भ मे भारत के किसी भी पुरास्थल से स्पष्ट स्तरित जमाव के अभाव में उच्च पुरापाषाण काल की स्थिति संदिग्ध थी। विन्ध्य क्षेत्र में बेलन घाटी से प्राप्त साक्ष्यो के मिलने के बाद भारतीय प्रागैतिहास मे उच्च पुरापाषाण काल की स्थिति को स्वीकार कर लिया।

उच्च पुरापाषाणकालीन संस्कृति का प्रसार विन्ध्य क्षेत्र के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश में बेलन घाटी मध्य प्रदेश मे भीमबैठका, सोन घाटी आदि से उच्च पुरापाषाण काल के पुरावशेष प्राप्त हुए है।

मैहर IV :

यह पुरास्थल मैहर प्रथम से 1.55 मी0 नीचे है। मैहर से दक्षिण पूर्व में 375 मी0 की दूरी पर लिलजी नदी के बायें तट पर नदी के प्रवाह मोड़ पर स्थित है। यहाँ के धरातल पर क्वार्टजाइट, चाल्सेडनी तथा चर्ट के फलक, ब्लेड आदि बहुत अधिक संख्या में पड़े मिले थे। 20 × 17 मीटर का एक क्षेत्र 1 × 1 मीटर की खान्ती डालकर 5 × 4 मीटर का उत्खनन किया गया।

उत्खनन के फलस्वरूप 3 स्तर प्रकाश में आये। सबसे नीचे स्तर 3 लाल रग का 8 से0मी0 मोटा था। इस स्तर से कोई उपकरण नहीं मिला। इसके ऊपर स्तर 2 का 5 से0 मी0 मोटा जमाव था इस स्तर से बहुत अधिक संख्या में उपकरण प्राप्त हुए हैं। सबसे ऊपरी लेयर 1 थी जिसकी औसत मोटाई 6 से0 मी0 थी।

उपकरण :

चर्ट, क्वार्टजाइट तथा चाल्सेडनी से निर्मित सभी उपकरणों को दो वर्गों मे बाँटा गया है -

1. अनुपयोजित फलक आदि

2. उपकरण उपकरणों में पुनर्गढ़ित ब्लेड तथा फलक, विविध प्रकार के ब्लेड, भुथड़े पार्श्व ब्लेड, दन्तुरित ब्लेड एवं विविध प्रकार के त्रिभुज, ल्यूनेट, अन्तः स्क्रेपर, छिद्रक आदि थे।

उत्खनन कर्ताओ के अनुसार मैहर मे प्रागैतिहासिक मानव ने निम्न पुरापाषाण काल से लेकर

मध्य पाषाण काल तक विभिन्न स्थलो पर अपने आवासो का निर्माण किया था।

भीमबैठका :

मध्य प्रदेश मे भीमबैठका गुहा के उत्खनन से उच्च पूरा पाषाण काल के क्रमिक विकास के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। भीमबैठका के शिलाश्रयो मे प्रायः हरे रंग से चित्रित चित्रण को उच्च पुरापाषाण काल का कहा गया है। इसका प्रमाण वाकणकर को भीमबैठका के उत्खनन से हरे रंग उच्च पुरापाषाणिक स्तर से मिले थे।

विन्ध्य क्षेत्र की उच्च पुरापाषाण कालीन स्तरों से लगभग 41 कार्बन तिथियाँ प्राप्त हो चुकी हैं। इसमे प्राचीन तिथियों मे चन्द्रसाल से शुतर्मुर्ग के अण्डो से है। जी0 आर0 एन0 10638 - 36, 550 ± 600, जी0 आर0 एन0 10639 - 38, 900 ± 750 इन तिथियों के आधार पर उच्च पुरापाषाण काल की तिथि 40,000 वर्ष से 10,000 वर्षों के बीच निर्धारित की जा सकती है।

बेलन घाटी :

विन्ध्य क्षेत्र में बेलन नदी के तृतीय ग्रैवेंल जमाव से उच्च पुरापाषाण कालीन संस्कृति के पुरावशेष प्राप्त हुए हैं। इसके ऊपर के ग्रेवॅल को उच्च पुरापाषाण काल और मध्य पाषाण काल के बीच का सक्रान्ति काल कहा जा सकता है।

उच्च पुरापाषाण कालीन मानव विविध प्रकार के पाषाण उपकरणो का निर्माण करते थे। इनमे स्क्रेपर, छिद्रक, विविध प्रकार के ब्लेड ब्यूरिन, अर्द्धचान्द्रिक आदि हैं (छायाचित्र संख्या 11)। हड्डी के उपकरण बेलन घाटी से नहीं मिले हैं।

ब्लेड प्रायः लेवॉवा, क्रोडो से निकाले गये हैं, यद्यपि नलिका कार क्रोडो के भी साक्ष्य मिलते हैं। ब्यूरिन, छिद्रक तथा चान्द्रिका आदि सीमित संख्या में हैं।

विन्ध्य क्षेत्र में बेलन घाटी से भारत के उच्च पुरापाषाणिक मानव की कलात्मक अभिव्यक्ति पर प्रकाश पड़ता है। बेलन घाटी के लोहंदा नाले के तृतीय ग्रैवॅल से हड्डी की बनी हुई एक मातृदेवी की प्रतिमा प्राप्त हुई है (छायाचित्र संख्या 12)। इस समय कुछ धार्मिक मान्यताओं का विकास होने लगा था। सीधी जिले में बाघोर नामक पुरास्थल पर एक 'पूजा स्थल' के प्रमाण मिले हैं।

छायाचित्र संख्या 11 - बेलन घाटी : उच्च पुरा पाषाणिक उपकरण

छायाचित्र सख्या 12 - बेलन घाटी : मातृ देवी की प्रतिमा

विन्ध्य क्षेत्र को बेलन घाटी के तृतीय ग्रैवेल से पशुओ के जीवाश्म प्राप्त हुए हैं जिन्हे उच्च प्रातिनूतन काल से लेकर प्रारम्भिक नूतन काल का बताया जाता है।

तिथि :

बेलन घाटी के उच्च पुरापाषाणिक उद्योगों को स्तरीकरण के आधार पर प्रातिनूतन काल के अन्तिम चरण मे रखते हैं। उच्च पुरापाषाण काल का प्रारम्भ तथा अन्त की तिथि 24 हजार ई0 पू0 से 10 हजार वर्ष ई0 पू0 के मध्य निर्धारित किया जा सकता है। तृतीय जमाव में कार्बन तिथियाँ भी प्राप्त हुई हैं, जो क्रमशः इस प्रकार हैं :

तालिका - 3

स्थल	नमूनो की संख्या	तिथियाँ
देवघाट	टी0 एफ0 1245 बीटा 4789	19,715 ± 330
	पी0 आर0 एल0 86	18,055 ± 105
		25,790 ± 830
		730
कोलडिहवा	बीटा 4877	25,430 ± 350
महगड़ा	पी0 आर0 एल0 603	14,440 ± 410
	पी0 आर0 एल0 602	11,300 ± 130
	एस0 यू0 ए0 1421	10,320 ± 115
रामपुर	बीटा 4752	11,870 ± 120
	बीटा 4793	26,250 ± 420

1 वर्मा, आर0 के0, नीरा वर्मा, 2001, *पुरातत्व अनुशीलन*

अध्याय चार

विन्ध्य क्षेत्र एवं मध्य गंगा मैदान की मध्य पाषाण कालीन संस्कृतियां

- अनुपुरापाषाणिक और मध्य पाषाणिक संस्कृतियां
- विन्ध्य क्षेत्र के उत्खनित स्थल
- गंगा घाटी के उत्खनित स्थल
- विन्ध्य क्षेत्र एवं गंगा घाटी के मध्य पाषाण कालीन संस्कृतियो के अंतर्सम्बन्धो पर प्रकाश

विन्ध्य क्षेत्र एव मध्य गंगा घाटी मे (मानचित्र सख्या 7) हुए पुरातात्विक अन्वेषणों के आलोक मे सम्पूर्ण प्रागैतिहासिक संस्कृतियो की जो रूप-रेखा निर्मित हुई है उसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है -

अनुपुरापाषाणिक और मध्य पाषाणिक संस्कृतियां

उच्च पुरापाषाण काल और मध्य पाषाण काल के संक्रमण काल की सस्कृति को अनुपुरापाषाण काल भी कहते हैं। अनुपुरापाषाण काल के उपकरणों मे यद्यपि लम्बे तथा चौड़े ब्लेड भी मिले है, किन्तु संकरे ब्लेडों की संख्या अधिक है, जिन्हे न तो उच्च पुरापाषाण काल के साथ सबधित किया जा सकता है और न ही उन्हें मध्य पाषाण काल के साथ रख सकते हैं। इनमे पूर्ववर्ती तथा परवर्ती दोनो ही संस्कृतियों के तत्व मिलते हैं, अतः इन्हे संक्रमण कालीन सस्कृति कहा गया है।

विन्ध्य क्षेत्र में अनुपुरापाषाण काल के उपकरण भौसोर ग्राम के निकट शिलाश्रयों के निम्न स्तरो से तथा देवघाट के निकट बूढ़ी बेलन के बायें किनारे पर चोपनी माण्डो के उत्खनन से प्राप्त हुए हैं।

चोपनी माण्डो (24^0 55', 30'' उत्तरी अक्षांश, 82^0 4' 45'' पूर्वी देशान्तर) नामक मध्य पाषाणिक पुरास्थल इलाहाबाद जिले की मेजा तहसील मे, इलाहाबाद नगर से दक्षिण-पूर्व दिशा में लगभग 77 किलोमीटर और देवघाट से पूर्व दिशा में लगभग 3 किलोमीटर की दूरी पर बूढ़ी बेलन नदी के बायें तट पर स्थित है।

इस पुरा स्थल का उत्खनन सर्वप्रथम 1967 मे वी0 डी0 मिश्र ने जी0 आर0 शर्मा के निर्देशन में उत्खनन किया जिसके द्वारा इस स्थल का कालानुक्रम निर्धारित हुआ। इस उत्खनन मे 1.55 मीटर की अधिकतम गहराई तक उत्खनन हुआ था। 1978-82 के बीच बृज बिहारी मिश्र ने जी0 आर0 शर्मा के निर्देशन मे क्षैतिज उत्खनन कराया। 5 × 5 मीटर की 21 खन्तियो मे उत्खनन किया गया।

---

1 *इण्डियन आर्कियोलॉजी : ए रिव्यू*, 1966-67, पृष्ठ 38

2. *इण्डियन आर्कियोलॉजी : ए रिव्यू*, 1977-78, पृष्ठ 51-52

उत्खनन के फलस्वरूप सम्पूर्ण सांस्कृतिक जमाव को दस स्तरों मे विभाजित किया गया है जिन्हें चार सांस्कृतिक कालों के अन्तर्गत रखते हैं। यहा पर सिर्फ पहली संस्कृति अनुपुरापाषाण के बारे में वर्णन किया जा रहा है।

अनुपुरापाषाण काल नामक प्रथम उपकाल चोपनी माण्डो के 20 से0 मी0 मोटे अन्तिम स्तर दसवें से सम्बन्धित है। *यह उच्च पुरापाषाण काल से मध्य पाषाण काल के विकास परिवर्तन का* द्योतन करते हैं। मध्य पाषाणिक संस्कृति के इस प्रारम्भिक चरण में 20% उपकरण उच्च पुरापाषाण काल के हैं, और 80% उपकरण मध्य पाषाण काल के है। इस उपकाल के उपकरणो को दो वर्गों मे बांटा गया है - प्रथम वर्ग के उपकरणों के अपेक्षाकृत चौड़े एवं लम्बे ब्लेड अधिक संख्या मे है। प्रमुख उपकरणों मे समानान्तर पार्श्व वाले ब्लेड, कुण्ठित पार्श्व वाले ब्लेड, बेधक, खुरचनी तथा ब्यूरिन आदि उल्लेखनीय है *(रेखाचित्र संख्या 2)*। इनके अतिरिक्त बड़े आकार के क्रोड के उपकरणों से काफी मिलते-जुलते हैं। इनमें प्रथम वर्ग के उपकरणों से अन्तर है कि ये आकार मे छोटे हैं तथा इनमे सुन्दर पुनर्गढ़न मिलता है। उपकरण प्रायः चर्ट पर बने हुए हैं।

अदवा घाटी के इस प्राचीनतम् संस्कृति के प्रमाण अभी तक कुल 22 स्थलों से प्राप्त हुए हैं। इस काल में संकरे ब्लेडो की संख्या अधिक है और लम्बे तथा चौड़े ब्लेड भी मिले हैं। जिन्हें न तो उच्च पुरापाषाण काल के साथ सम्बन्धित किया जा सकता है, और न ही उन्हें मध्य पाषाण काल के साथ रखा जा सकता है। इनमें पूर्ववर्ती तथा परवर्ती दोनो ही सस्कृतियो के तत्व मिलते हैं, अतः इन्हें संक्रमण कालीन कहा गया है। इसीलिए इस काल को उच्च पुरापाषाण काल एवं मध्य पाषाण काल के संक्रमण अवस्था का द्योतक माना जाता है।[1]

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग ने मध्य गंगा घाटी मे 1971-72 से लेकर अब तक जो अन्वेषण तथा उत्खनन किये हैं, उनसे गंगा घाटी के इस प्राचीनतम् संस्कृति के प्रमाण अभी तक पांच स्थलो से प्राप्त हुए हैं - वाराणसी मे गढ़वा (25° 23' 45'' उत्तरी अक्षांश, 82° 53' 45'' पूर्वी देशान्तर), इलाहाबाद में अहिरी (25° 21' 0'' उत्तरी अक्षाश, 820 16' 0'' पूर्वी देशान्तर) और प्रतापगढ़ में सुलेमान पर्वत (25° 59' 23'' उत्तरी

---

1. सिंह, एस0 पी0, 1996, *अदवा घाटी में पुरा-पर्यावरण एवं प्रागैतिहासिक संस्कृतियाँ*, पृष्ठ 207
   शर्मा, जी0 आर0, 1975, सीजनल माइग्रेशन एण्ड मेसोलिथिक लेक कल्चर्स ऑफ दि गगा वैली, *के0 सी0 चट्टोपाध्याय मेमोरियल वौल्यूम*, पृष्ठ 9
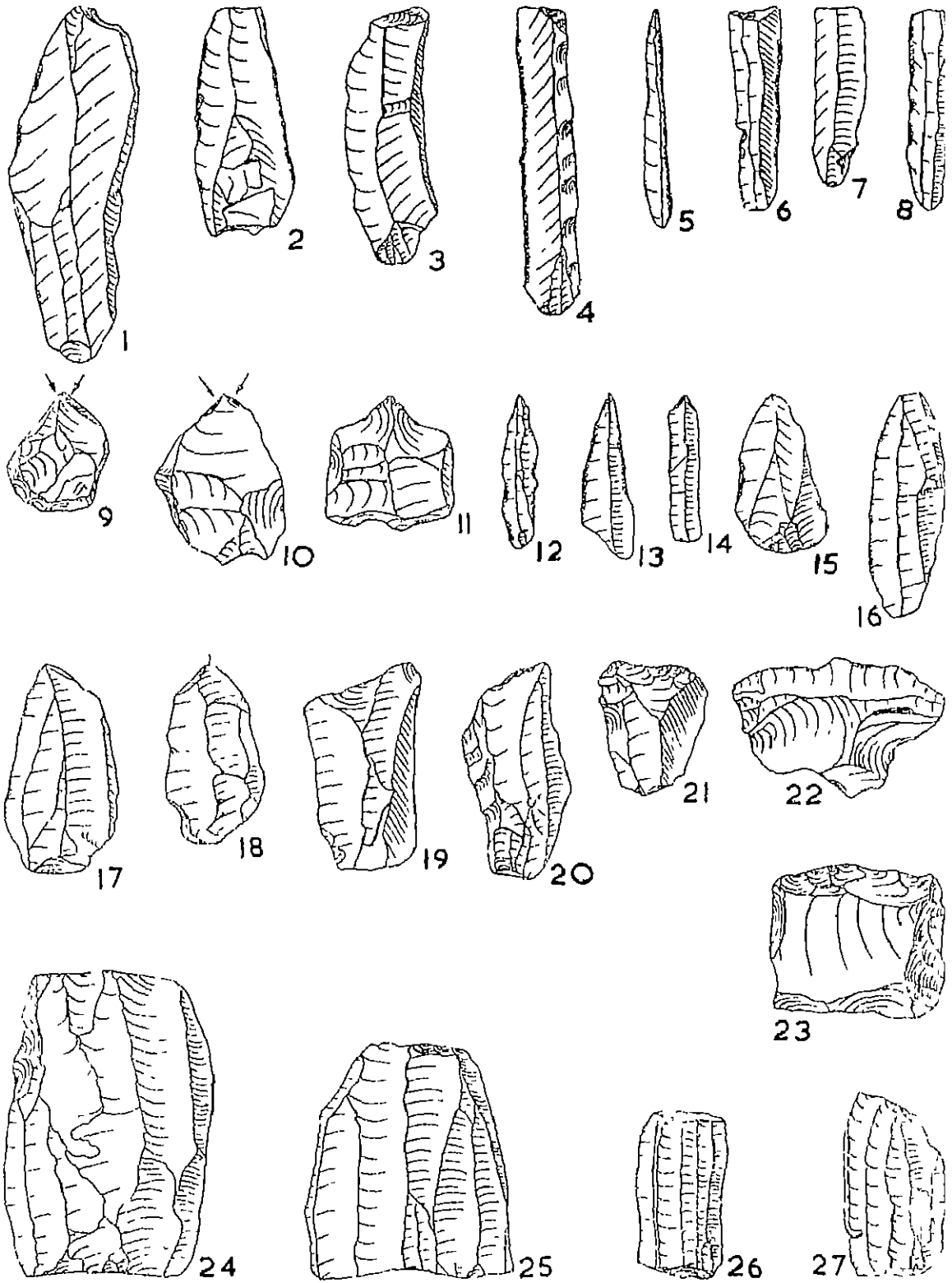
चोपनी माण्डो प्रथम काल (1)--3 भुथडे पृष्ठवाले ब्लेड (4-5) पृष्ठ ब्लेज (6-8) समानान्तर ब्लेड 9-10 ब्यूरिन, 11, -12, 14 छिद्रक, 13 15, 18 प्वाइट, 19-23 स्क्रेपर, 24-27 कोर

रेखाचित्र संख्या 2 - चोपनी माण्डो : प्रथम काल, उपकरण

अक्षाश, 82° 16' 12" पूर्वी देशान्तर), मन्दाह (25° 59' 0" उत्तरी अक्षाश, 82° 2' 35" पूर्वी देशान्तर) तथा साल्हीपुर (26° 0' 10" उत्तरी अक्षाश, 82° 4' 30" पूर्वी देशान्तर) ये स्थल धनुषाकार झीलों अथवा इन झीलों से निकलने वाली सरिताओं के तट पर स्थित हैं।

उच्च पुरापाषाण तथा मध्य पाषाण काल के संक्रमण कालीन सांस्कृतिक स्थलों से अत्यधिक मात्रा में पाषाण उपकरण प्राप्त हुए हैं। इन स्थलों पर पूर्व निर्मित उपकरणों के साथ ही निर्माण की विभिन्न अवस्थाओं में उपकरण, क्रोड, फलक आदि प्राप्त होते हैं जिससे प्रतीत होता है कि इन उपकरणों का निर्माण इन्हीं स्थलों पर किया गया है। गंगा घाटी में पत्थर नहीं थे। विन्ध्य क्षेत्र से पाषाण कालीन मानव पत्थर के पिण्ड लेकर गंगा घाटी मे आता था, यहीं पर उपकरणो का निर्माण करता और शिकार करता था। जलवायु और परिवेश में परिवर्तन तथा तत्कालीन आबादी में वृद्धि इस आगमन का कारण रहा होगा। अभी तक इस संस्कृति के किसी स्थल का उत्खनन नहीं हुआ है। लेकिन इन स्थलों की सतह से जो उपकरण एकत्र किये गये हैं वे सभी चर्ट पत्थर पर निर्मित है और उन पर अत्यधिक रासायनिक काई लगी हुई है। उपकरण प्रकारों में समानान्तर बाहु वाले ब्लेड, भूथड़े ब्लेड, तक्षणी, नोक, खुरचनी, अर्द्धचन्द्र आदि उल्लेखनीय है।

तालिका—4

अनुपुरापाषाण उपकरणों का विवरण : गंगा घाटी

नं0	उपकरण प्रकार	कच्चा माल	लम्बाई	चौड़ाई	मोटाई	कोणीयमान
1.	प्रयोग किया हुआ ब्लेड	चर्ट	25.4	12.1	4.4	15°, 30°
2.	पृष्ठ ब्लेड	चर्ट	33.4	9 2	3	27°
3.	पुर्नगढ़ित ब्लेड	चर्ट	35.9	19	7.2	34°
4	पृष्ठ ब्लेड	चर्ट	36.5	13.1	5 8	26°
5.	पृष्ठ ब्लेड	चर्ट	42	13.9	7.2	27°
6.	उत्तर पृष्ठ ब्लेड	चर्ट	24.2	8.2	2.8	17°
7.	अर्द्धचन्द्रिका	चर्ट	26.1	6.9	3.9	35°
8.	वाणाग्र (सर)	चर्ट	29.8	28.8	11.7	25°
9	उत्तर पृष्ठ ब्लेड	चर्ट	23 8	7.2	3 3	27°

विन्ध्य क्षेत्र मे बेलन नदी के तट पर स्थित एक स्थल चोपनी माण्डो का उत्खनन किया गया है। इस स्थल की प्रथम संस्कृति उच्च पुरापाषाण और मध्य पाषाण काल के सक्रमण काल की सस्कृति है। पाषाण कालीन मानव ने सर्वप्रथम इसी काल मे गोलाकार झोपड़ियाँ बनाकर आवास प्रारम्भ किया। गंगा मैदान की इस प्राचीनतम् संस्कृति ने पाषाण कालीन मानव के ऋतुनिष्ठ प्रव्रजन का भारत में प्राचीनतम् प्रमाण प्रस्तुत किया है जबकि विन्ध्य क्षेत्र की सूखे की विभीषिका से बचने के लिए मनुष्य जीविका की तलाश में नदी घाटियों को पार करता हुआ उत्तर की तरफ आया। सम्भवतः उसका इस क्षेत्र में आगमन नितान्त अल्पकालिक होता था। अनुकूल मौसम में वह पुनः अपने मूल क्षेत्र में लौट जाता था। इस काल के उपकरणों का जो अध्ययन किया गया है उससे इस बात के प्रमाण मिले हैं कि इस संस्कृति के गंगा घाटी के उपकरण विन्ध्य क्षेत्र के उपकरणों की अपेक्षा छोटे हैं। उपकरणो की यह आकार गत न्यूनता गगा घाटी में पत्थर पिण्डों की अनुलब्धता के कारण थी, मानव ने इनकी महत्ता को ध्यान में रखकर तब तक उपकरण निर्माण किया जब तक ये अत्यन्त छोटे नही हो गये।

अनुपुरापाषाण काल का समय गंगा घाटी, विन्ध्य क्षेत्र के समतल भूमि पर एकत्रण से तथा बेलन घाटी में ग्रेवॅल 4 के 'कार्बन-14 सी' से जो तिथि प्राप्त हुई उसमें पी0 आर0 एल0 630, 12190 ± 410 ई0 पू0, पी0 आर0 एल0 602 9350 ± 130 ई0 पू0 और यू0 एस0 ए0 1421, 8080 ± 115 ई0 पू0 है। बेलन घाटी में अनुरापाषाण काल की तिथि 16000 ई0 पू0 से 8000 ई0 पू0 तक माना गया है। प्रो0 वर्मा ने अनुपुरापाषाण काल की तिथि 12000 ई0 पू0 से 8000 ई0 पू0 माना है।[1]

विन्ध्य क्षेत्र के उत्खनित स्थल

प्रातिनूतन काल की विषम जलवायु के समाप्त हो जाने पर नूतन काल की बदली हुई जलवायु ने पृथ्वी के परिवेश को अत्यधिक प्रभावित किया। फलतः नई वनस्पतियाँ और नए पशुओ का आविर्भाव हुआ। इस बदले परिवेश मे मानव ने भी अपनी जीवन विधा में परिवर्तन किया, जिसके प्रमाण उसकी सास्कृतिक सामग्रियों मे देखे जा सकते है। नूतन काल की इस प्रथम संस्कृति को मध्य पाषाण काल के नाम से जाना जाता है, क्योंकि यह पुरापाषाण काल एवं नवपाषाण काल के मध्य

---

1. सिह, एस0 पी0, 1996, *अदवा घाटी में पुरा-पर्यावरण एव प्रागैतिहासिक संस्कृतियाँ*, पृष्ठ 238-239

की है। इनकी सास्कृतिक सामाग्रियो मे सर्व प्रमुख है - लघु पाषाण उपकरण (माइक्रोलिथ), लेकिन लघु पाषाण उपकरणों के अतिरिक्त बहुत-सी अन्य सामाग्रियां जैसे पशुओ एवं वनस्पतियो के अवशेष खाद्य सामग्री तैयार करने के उपकरण, कलाकृतियाँ शैलचित्र एवं सबसे उल्लेखनीय स्वय मानव के उपकरण प्राप्त हुए हैं।[1]

विन्ध्य क्षेत्र से मध्य पाषाणिक स्थल 1961-62 से ही प्रकाश मे आने लगे थे। पी0 सी0 पन्त ने बांदा जिले से 1961 में लघु पाषाण उपकरण एकत्र किये थे[2]। मिर्जापुर जिले में आर0 के0 वर्मा ने 1963 मे 27 चित्रित एवं सादे शिलाश्रय तथा 83 मध्य पाषाणिक आवास स्थल खोजे उनके द्वारा बघहीखोर एवं मोरहना पहाड़ के शिलाश्रयों तथा शिलाश्रय के बाहर आवासों का उत्खनन भी किया गया, जिससे लघु पाषाण उपकरणों के निर्माण पद्धति और उनके क्रमिक विकास पर प्रकाश पड़ा। भारत मे विन्ध्य क्षेत्र ही मात्र एक ऐसा क्षेत्र है, जहाँ पर अज्यामितिक, ज्यामितिक एवं मृद्भाण्डों से सम्बन्धित समस्या का समाधान सर्वप्रथम इसी क्षेत्र से सम्भव हो सका है।

विन्ध्य क्षेत्र में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास विभाग द्वारा मोरहना पहाड़, बघहीखोर, लेखहिया, एवं चोपनी माण्डो नामक मध्य पाषाणिक पुरास्थलो का अभी तक उत्खनन किया गया है।[3]

चोपनी माण्डो (24^0 55′ 30″ उत्तरी अक्षांश, 82^0 4′ 45″ पूर्वी देशान्तर):

यद्यपि यह उत्तरी विन्ध्य क्षेत्र का स्थल है, चोपनी माण्डों नामक मध्य पाषाणिक पुरास्थल बूढ़ी बेलन के बायें तट पर द्वितीय वेदिका पर देवघाट से लगभग तीन किलोमीटर पूर्वोत्तर दिशा में स्थित है। इलाहाबाद से पूर्व तथा दक्षिण पूर्व दिशा में इसकी दूरी 77 कि0 मी0 है।[4] यह पुरास्थल लगभग 15,000 वर्ग मी0 के क्षेत्र में फैला है। इस सम्पूर्ण क्षेत्र का धरातल लघु पाषाण उपकरणो, फलकों आदि से भरा पड़ा था। यह पुरास्थल बेलन नदी के परितत्यक प्रवाह क्षेत्र के अन्तर्गत है। इस पुरास्थल की खोज एवं उत्खनन का कार्य सर्वप्रथम इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्रो0 वी0 डी0

---

1 सिंह, एस0 पी0, 1996, *पूर्वोक्त*, पृष्ठ 208

2. *इण्डियन आर्कियोलॉजी : ए रिव्यू*, 1961-62, पृष्ठ 54

3 मिश्रा, वी0 एन0, 2002, मेसोलिथिक कल्चर इन इण्डिया की नोट वी0 डी0 मिश्र और जे0 एन0 पाल द्वारा सम्पादित : *मेसोलिथिक इण्डियन*, इलाहाबाद

4 शर्मा, जी0 आर0 व मिश्र, बी0 बी0 1980, *इक्सकैवेशन एट चोपनी माण्डो*

मिश्र ने किया जिन्होने यहां सन् 1967 मे उत्खनन कराया। तत्पश्चात् सन् 1978-79 से लेकर 1981-82 के बीच अपेक्षाकृत बड़े पैमाने पर इलाहाबाद विश्वविद्यालय के ही प्रो0 जी0 आर0 शर्मा के निर्देशन मे श्री बी0 बी0 मिश्रा ने इस पुरास्थल का उत्खनन कराया। इस उत्खनन के परिणाम स्वरूप 1.55 मीटर का एक मोटा सांस्कृतिक जमाव प्राप्त हुआ, जिसे 10 स्तरों एवं तीन सास्कृतिक अवस्थाओ में विभाजित किया गया, जो निम्न है अनुपुरापाषाण काल, आरम्भिक मध्य पाषाण काल एवं उत्तर (अन्तिम) मध्य पाषाण काल (रेखाचित्र संख्या 3) प्रथम चरण (दशवें स्तर) के उपकरण उच्च पुरापाषाणिक और मध्य पाषाणिक संस्कृतियों के संक्रमण युग का प्रतिनिधित्व करते है। मध्य पाषाणिक संस्कृति के इस प्रारम्भिक चरण मे 20% उपकरण उच्च पुरापाषाण काल के और 80% उपकरण मध्य पाषाण काल से सम्बन्धित है। चोपनी माण्डो के उत्खनन के फलस्वरूप तीन सास्कृतिक उपकालो के विषय मे जानकारी प्राप्त हुई है। चोपनी माण्डो के विभिन्न, उपकाल इस प्रकार है -

1. अनु पुरापाषाण काल (Epi-palaelithic)
2. मध्य पाषाण काल - इसे उपकरण सामग्री के आधार पर दो भागों में विभाजित किया गया है -
   अ. आरम्भिक मध्य पाषाण काल (Early Mesalithic A)
   ब. प्रारम्भिक मध्य पाषाण काल (Early Mesalithic B)
3. विकसित मध्य पाषाण काल अथवा नव पाषाण काल (Mesolithic / Protonealithic)

प्रथम उपकाल या अनुपुरापाषाण काल चोपनी माण्डो के 20 सेमी0 मोटे दसवें और अन्तिम स्तर से सम्बन्धित है। परवर्ती पाषाणोपकरणों की तुलना मे इस उपकाल के पाषाण उपकरणो को बड़े आकारों मे पाये जाने के कारण ही इसको उच्च पुरापाषाण काल तथा मध्य पाषाण काल की सक्रमणात्मक अवस्था का द्योतक माना गया है। इस उपकाल के पाषाण उपकरणों को भी दो वर्गों मे विभाजित किया गया है - प्रथम वर्ग के उपकरणों में अपेक्षाकृत चौड़े और लम्बे ब्लेड (फलक) अधिक संख्या मे हैं। इस वर्ग के प्रमुख उपकरणो में समानान्तर पार्श्व वाले ब्लेड, कुण्ठित पार्श्व वाले ब्लेड, बेधक (Paint), खुरचनी (स्क्रेपर) तथा व्यूरिन आदि उपकरण उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त बड़े आकार के क्रोड एवं फलक आदि हैं। द्वितीय वर्ग के उपकरण प्रकार पूर्ववत है, अन्तर केवल यह है कि ये पूर्व की अपेक्षा छोटे हैं तथा इनमें सुन्दर पुनर्गढ़न मिलता है।

चोपनी माण्डो का नवां एवं आठवां स्तर जो क्रमशः 20 एवं 15 सेमी मोटा है। आरम्भिक मध्य
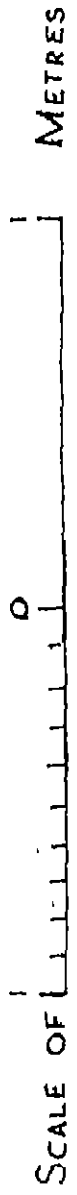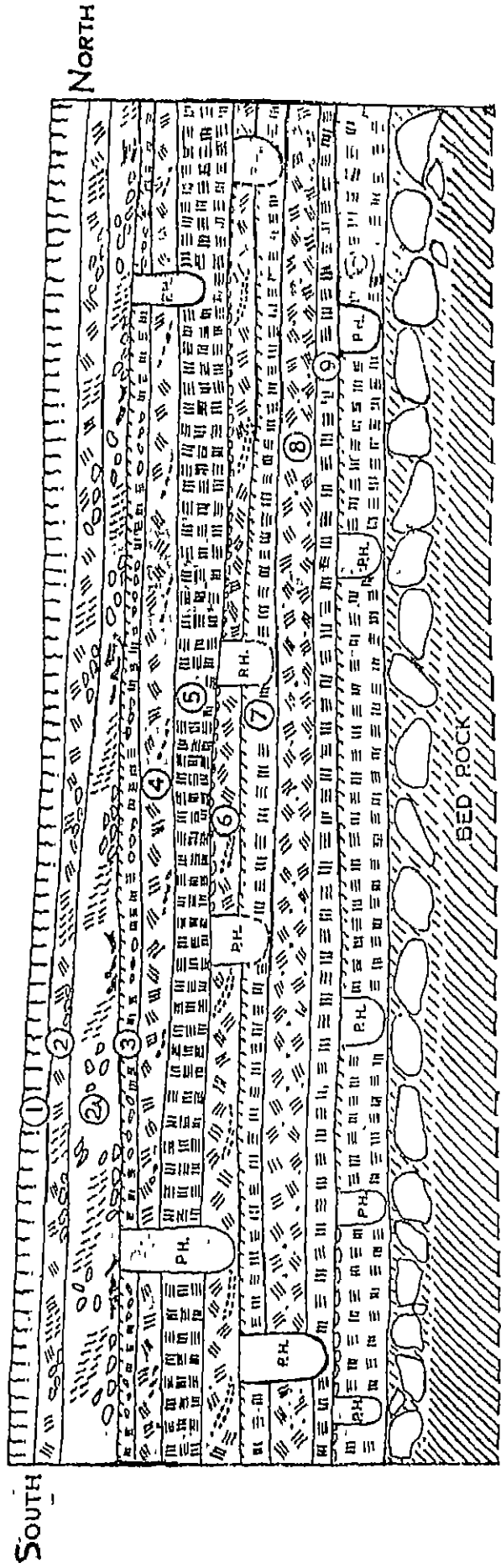
पाषाण काल 'अ' का प्रतिनिधित करते हैं। इस स्तर से त्रिभुज तथा समलम्ब चतुर्भुज के आकार के लघु पाषाण उपकरण नहीं मिले हैं। इसलिए इसको मध्य पाषाण काल की अज्यामितीय लघु पाषाण उपकरण अवस्था से सम्बन्धित किया जाता है। इस काल के प्रमुख उपकरणों में समानान्तर पार्श्व वाले ब्लेड, कुण्ठित पार्श्व वाले ब्लेड, बेधक, खुरचनी आदि उल्लेखनीय है (रेखाचित्र संख्या 4)। इस उपकाल से सम्बन्धित 3.80 मी0 व्यास की गोलाकार दो झोपड़ियों के साक्ष्य प्रकाश मे आए है।

इस पुरास्थल को सातवें से लेकर चौथे स्तर तक के चार स्तर जो लगभग 40 सेमी0 मोटा है का सम्बन्ध प्रारम्भिक मध्य पाषाण काल 'ब' (Early Mesolithic) से है। इस उपकाल के उफकरण ज्यामितीय एवं पूर्ववर्ती उपकाल से छोटे हैं। ये उपकरण नव-निर्मित से लगते हैं और इनका निर्माण अत्यन्त कुशलता के साथ हुआ लगता है। मिट्टी के बर्तनो का अभाव है। उपकरणो का निर्माण प्रायः चर्ट और चाल्सेडनी पर किया गया है। इस काल के प्रमुख उपकरणो में अनेक प्रकार के ब्लेड, त्रिभुज, चतुर्भुज, दातेदार ब्लेड आदि उल्लेखनीय हैं।

इस उपकाल से सम्बन्धित गोलाकार पांच झोपड़ियों के साक्ष्य मिले हैं, इनमें से तीन झोपड़ियां सातवे स्तर से सम्बन्धित हैं। दो झोपड़ियाँ छठवें स्तर से सम्बन्धित हैं। इन झोपड़ियों के फर्श पर बहुसंख्यक लघु पाषाण उपकरण तथा छोटे-छोटे पत्थरों के टुकड़े बिखरे हुए मिले हैं। इनके अतिरिक्त पत्थरों की निहाई, हथौड़े, आदि के टूटे हुए टुकड़े मिले हैं।

चोपनी माण्डो का तीसरा और अन्तिम उपकाल जो तीसरे से लेकर प्रथम स्तर तक से सम्बन्धित है, विकसित मध्य पाषाण काल अथवा आद्य नव पाषाण काल के नाम से जाना जाता है। इस उपकाल का जमाव लगभग 40 सेमी0 मोटा है। इस उपकाल की विशेषता है ज्यामितीय लघु पाषाणोपकरण के साथ-साथ भंगुर हस्तनिर्मित मृद्भाण्ड तथा उपकरणों मे समानान्तर तथा कुण्ठित पार्श्व वाले (ब्लेड) फलक बेधक, चान्द्रिका, त्रिभुज, विषम बाहु एव समलम्ब चतुर्भुज, खुरचनी आदि हैं (रेखाचित्र संख्या 5)। उपकरण निर्माण में इस काल मे चर्ट के अतिरिक्त चाल्सेडनी का अधिकाधिक उपयोग किया गया था।

इस उपकाल से 13 झोपड़ियों के साक्ष्य मिले हैं, जिनसे उनके आधार योजना के बारे में जानकारी प्राप्त हुई है। इनमें 6 गोलाकार जिनका औसत व्यास 3.50 मीटर तथा 7 अण्डाकार जिनकी बड़ी भुजा का औसत माप 4.70 मीटर तथा छोटी का 3.30 मीटर है। स्तम्भगर्त के आधार
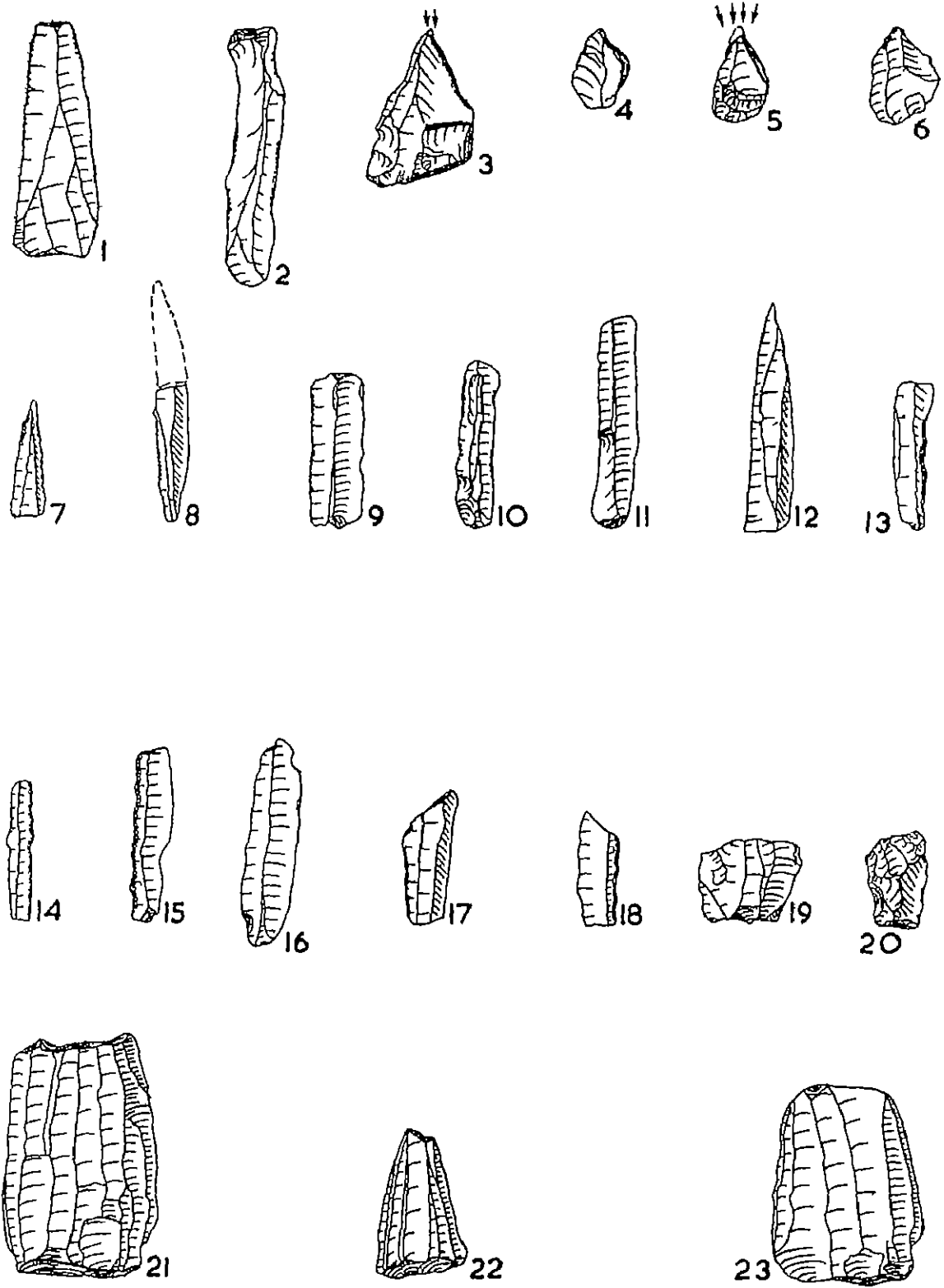
चोपनी माण्डो द्वितीय काल 'अ'- 1-2 खातयुक्त ब्लेड, 3-5 ब्यूरिन, 6 वछिद्रक, 4,-7,-8 प्वाइट, 9,-11-समानांतर ब्ले 12-24 पृष्ठ ब्लेड, 15-16 नोंकदार ब्लेड, 17-18, चाकू वाले ब्लेड, 19-20 स्क्रेपर, 21-23 कोर

रेखाचित्र सख्या 4 - चोपनी माण्डो : द्वितीय काल 'अ', उपकरण
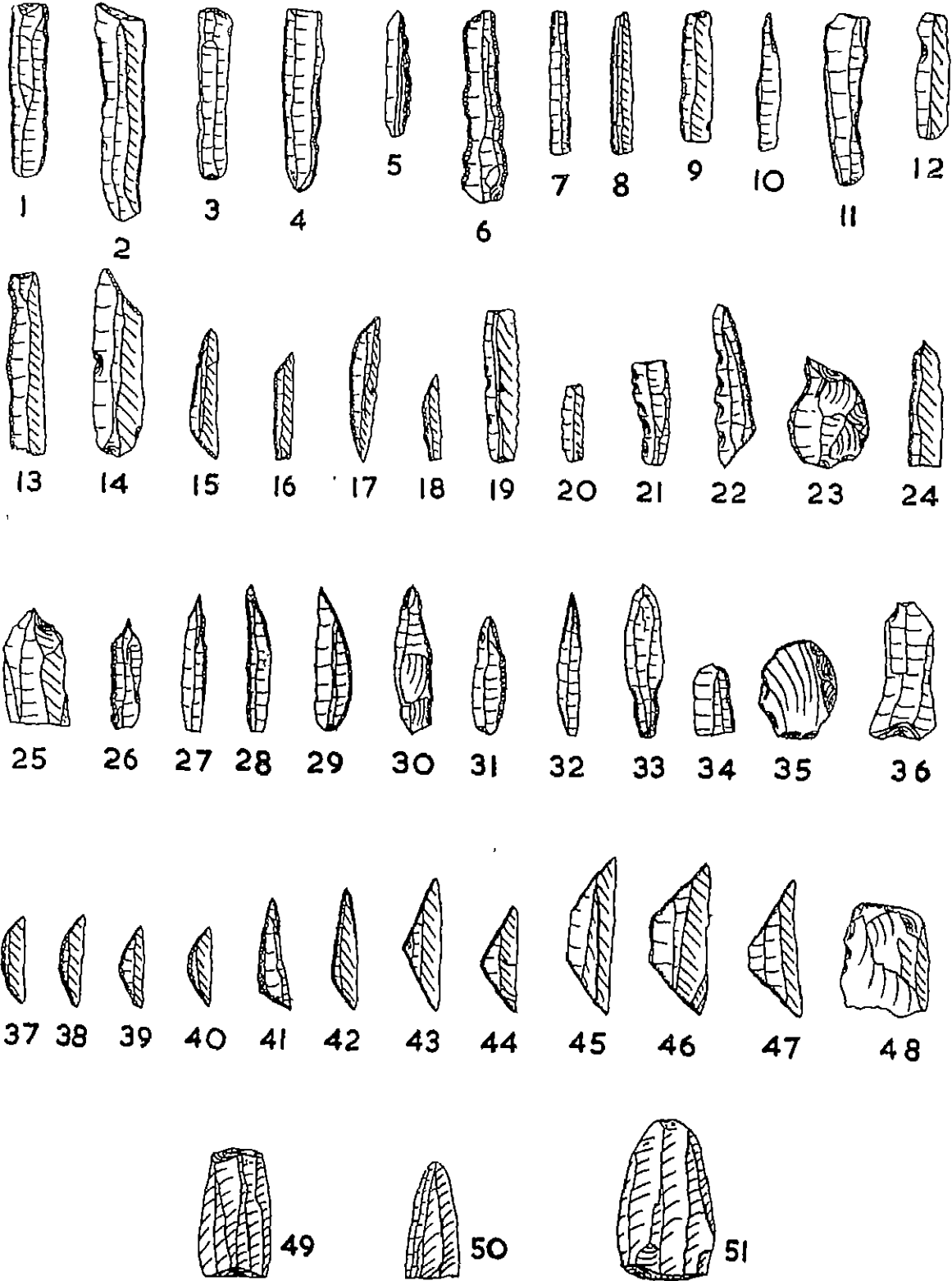
चोपनी माण्डो तृतीय-काल- 1-3 समानान्तर पृष्ठ ब्लेड, 4-11 पृष्ठ ब्लेड, 12 नोकवाले ब्लेड, 13-14, 16, 18 चाकू वाले ब्लेड, 19,22 , धारवाले ब्लेड, 23-24, 26-27, छिद्रक, 25 लघु ब्यूरिन, 28, 33, 43 प्वाइंट शर, 34, 36 स्क्रेपर, 37-40 अर्ध चन्द्रिका, 15, 41, 44 त्रिभुज, 45-47, चतुर्भुज, 48 ट्रांचेट, 49, 51 कोर

रेखाचित्र सख्या 5 - चोपनी माण्डो · तृतीय काल, उपकरण

पर यह कहा जा सकता है कि इस उपकाल के लोग बांस-बल्ली तथा घास-फूस की झोपड़िया बनाकर उसमे रहते थे। इन झोपड़ियो के फर्श पर बिखरे हुए 50 लघु पाषाण उपकरणों के अलावा पत्थर की निहाई, हथौड़े, गदा, शीर्ष, गोफन पाषाण, धर्षक पाषाण, सिल-लोढ़े आदि मिले हैं (छायाचित्र संख्या 13), घास-फूस की छाप से युक्त जले मिट्टी के टुकड़े, पशुओ की हड्डियां भी फर्श से मिली हैं।

इनके अतिरिक्त गोलाकार चार गर्त चूल्हे भी मिले थे। जिनका व्यास 0.80 से0 मी0 के लगभग था, 40 सेमी0 गहरे थे। इनमें राख युक्त मिट्टी, हड्डी के टुकड़े, कोयले आदि मिले थे। कुछ चूल्हों को सामूहिक रूप से प्रयोग किया जाता था।

कुछ गोलाकार या अण्डाकार संरचनाये मिली थी जिनका व्यास 70 से 30 सेमी0 के लगभग था। ऐसा प्रतीत होता है कि ये सम्भवतः बांस तथा मिट्टी के बने संग्रह पात्रो के आधार थे।

मृद्‌भाण्ड :

विकसित मध्य पाषाण काल अथवा आद्य नव पाषाण काल में हस्तनिर्मित मृद्‌भाण्ड मिलने लगते हैं (रेखाचित्र संख्या 6)। यह अत्यन्त भंगुर हैं। मिट्टी भली-भाँति गुंदी नहीं थी और बर्तन भी भली-भाँति पके नही हैं। सम्पूर्ण मृद्‌भाण्डों को दो वर्गों मे विभाजित किया गया है -

1. लाल मृद्‌भाण्ड
2. खाकी या धूसर मृद्‌भाण्ड

दोनों ही प्रकार के पात्रों पर ठप्पों के निशान मिलते हैं (छायाचित्र संख्या 14)। उत्खनन से प्राप्त अन्य वस्तुओं में जंगली जले चावल (छायाचित्र संख्या 15) तथा बांस के अवशेष मिले हैं। एक पत्थर का बेलनाकार मनका और हड्डी की उत्कीर्ण आवृत्ति भी मिली है (छायाचित्र संख्या 16)।

तिथि :

पुरातात्विक आधार पर चोपनी माण्डों की मध्य पाषाण युगीन संस्कृति को उत्खनन कर्ताओं ने 17000 से 7000 ईसा पूर्व के अन्तर्गत रखा है। इस प्रकार से चोपनी माण्डों के उत्खनन से उत्तरी
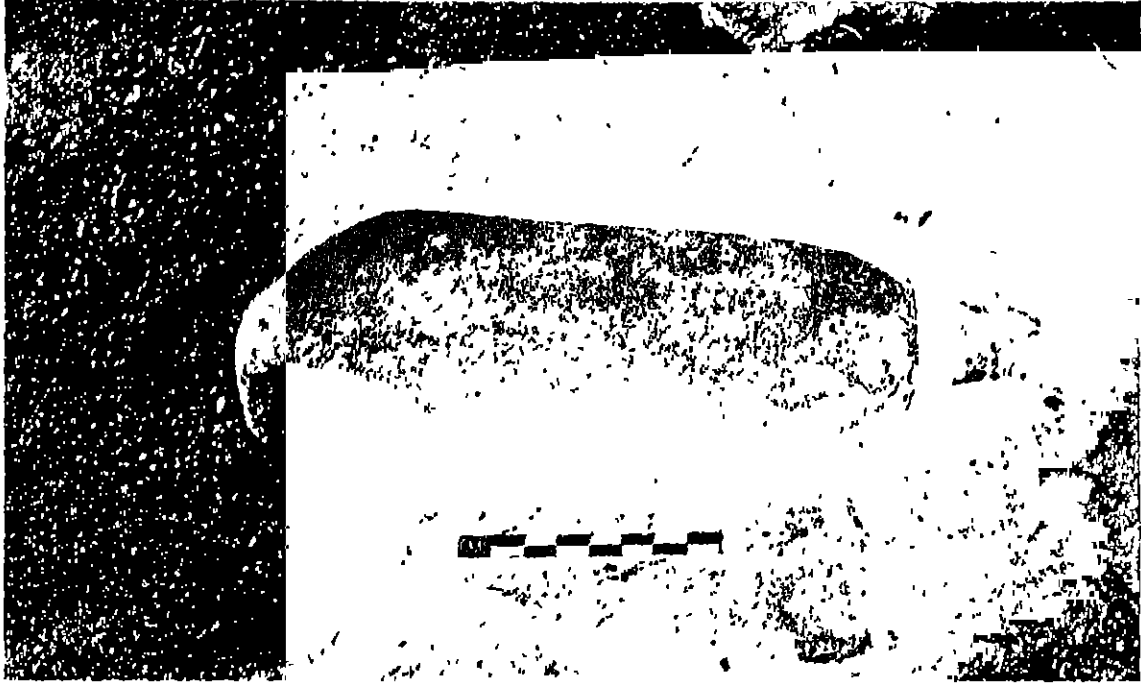
छायाचित्र संख्या 13 - चोपनी माण्डो : तृतीय काल - हथौड़े, निहाई, लोढ़ा

1 2 3 4 5 6 7 8 9 10 11 12 13

रेखाचित्र सख्या 6 - चोपनी माण्डो · तृतीय काल, मृद्भाण्ड
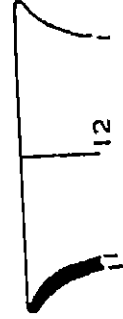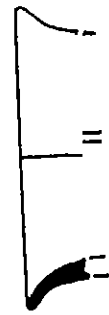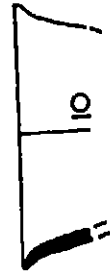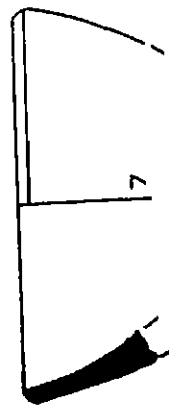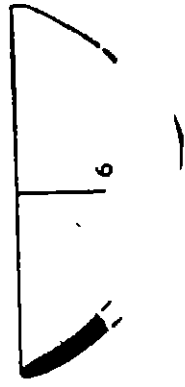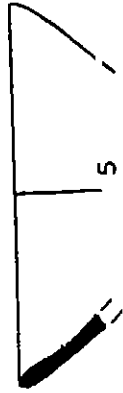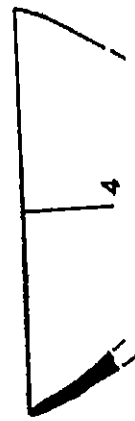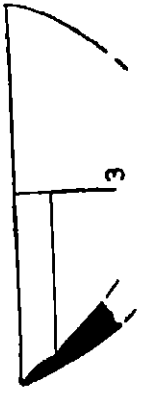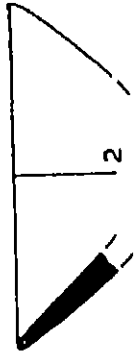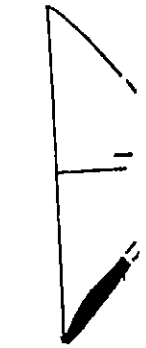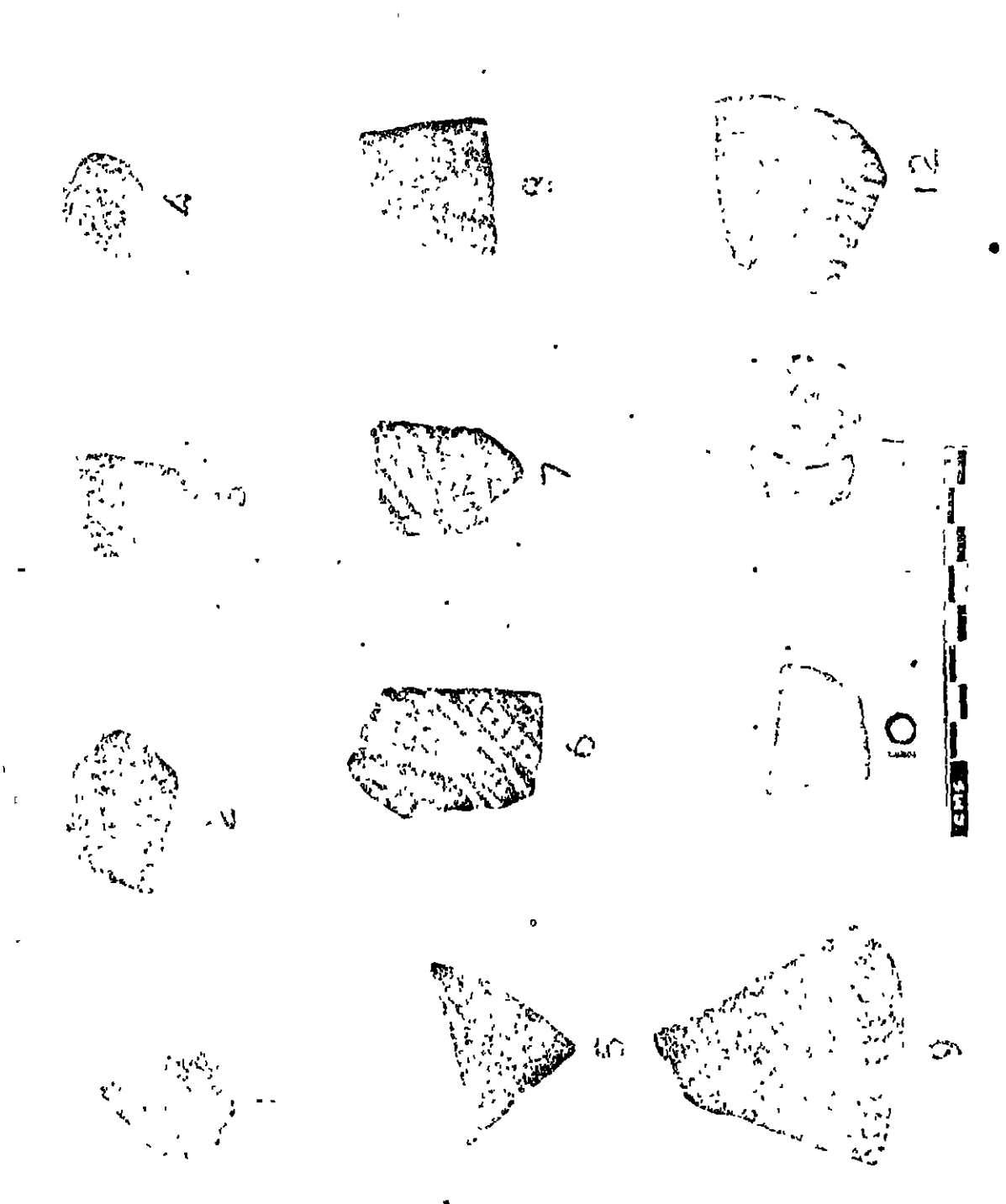
छायाचित्र संख्या 14 - चोपनी माण्डों · तृतीय काल - ठप्पे वाले मृद्भाण्ड
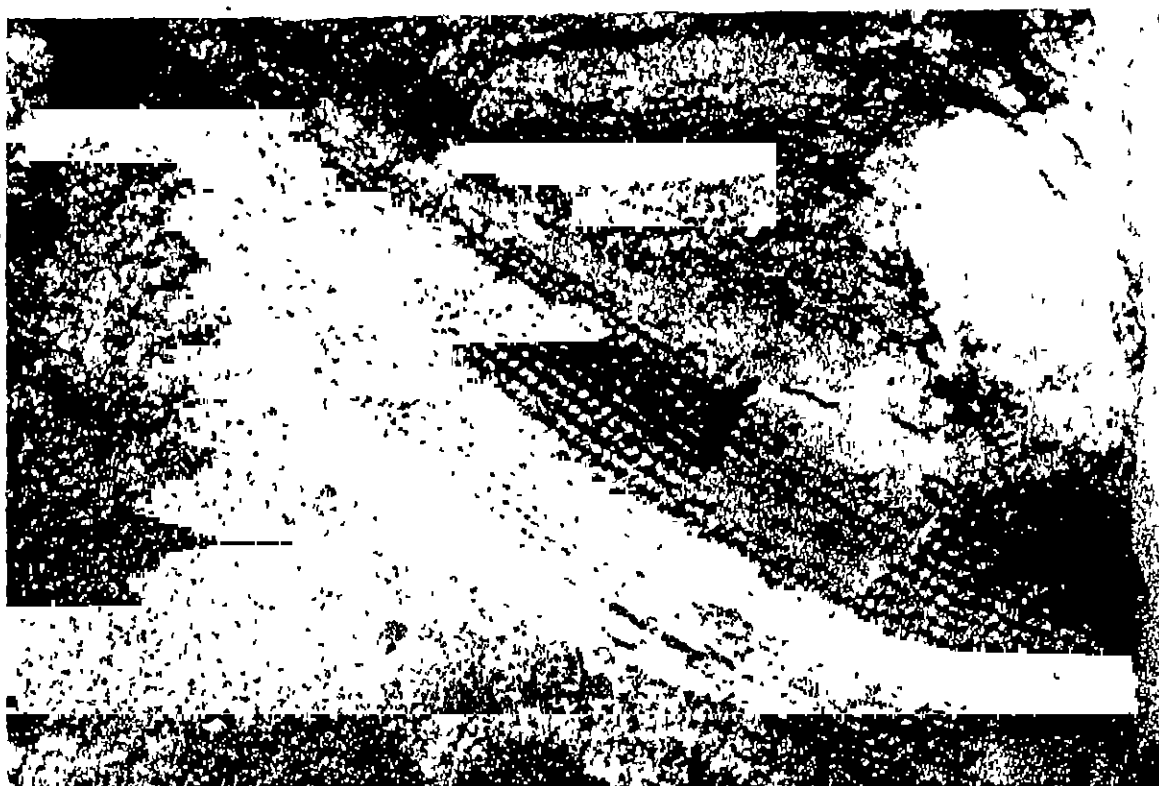
छायाचित्र संख्या 15 - चोपनी माण्डों : तृतीय काल - जले चावल
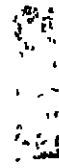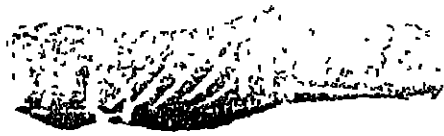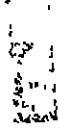
छायाचित्र संख्या 16 - चोपनी माण्डों : तृतीय काल - हड्डी का टुकड़ा, पत्थर का एक बेलनाकार मनका

विन्ध्य क्षेत्र की मध्य पाषाणिक संस्कृति पर नया प्रकाश पड़ता है।[1]

मोरहना पहाड़ (24° 30' उत्तरी अक्षांश - 82° 31' पूर्वी देशान्तर)

मोरहना पहाड़ शिलाश्रय भैंसोर ग्राम के पश्चिम में सड़क से लगभग 5 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। यहां पर शिलाश्रय नं0 4 के भीतर तथा उसके समीपवर्ती शिलाश्रय सख्या 1 के बाहर स्थित खुले क्षेत्र मे 1963 मे आर0 के0 वर्मा द्वारा उत्खनन किया गया था, जहां पर खन्ती डाली गयी थी (रेखाचित्र संख्या 7)।

मोरहना पहाड़ के शिलाश्रय संख्या 4 के अन्दर कुल 5 से0 मी0 मोटा मध्य पाषाणिक जमाव मिला, जिसे चार स्तरों मे विभाजित किया गया। मोरहना पहाड़ के शिलाश्रय संख्या 1 के बाहर डाली गई खन्ती मे 1.15 मीटर मोटा जमाव मिला, जिसे छ· विभिन्न स्तरो मे बांटा गया। इनमे से पाच स्तरों से मध्य पाषाणिक उपकरण प्राप्त हुए हैं। छठवां स्तर अपघटित आधारशिला का ही भाग है। इस स्तर से किसी प्रकार के कोई पुरावशेष नहीं मिले हैं। पांचवा स्तर बालू तथा बलुआ पत्थर के टुकड़ो से निर्मित है। इस स्तर से अज्यामितीय लघु पाषाण उपकरण प्राप्त हुए हैं। प्रमुख उपकरणों मे कुण्ठित ब्लेड, चान्द्रिक, बेधक, स्क्रेपर प्रमुख हैं। चौथे एवं तीसरे स्तर से ज्यामितीय लघु पाषाण उपकरण प्राप्त हुए हैं। दूसरे तथा पहले स्तर से हस्त निर्मित मृद्भाण्डों के टुकड़ो के साथ-साथ दोनों ही स्तरों से उपकरण प्राप्त हुए हैं। मोरहना पहाड़ के दोनों ही स्तरो पर उपकरणो का निर्माण चर्ट, चाल्सेडनी, अगेट कोर्नोलियन, जैस्पर, एवं क्वार्टज आदि पत्थरो द्वारा किया गया है, किन्तु चाल्सेडनी का अधिक उपयोग हुआ है।

---

1 शर्मा, जी0 आर0 व मिश्र बी0 बी0, 1980, *इक्सकैवेशन ऐट चोपनी माण्डों*
इण्डियन आर्कियोलॉजी ए रिव्यू, 1966-67, पृष्ठ 38
वर्मा, राधाकान्त, और नीरा वर्मा, 2001, *पुरातत्व अनुशीलन*, पृष्ठ 101
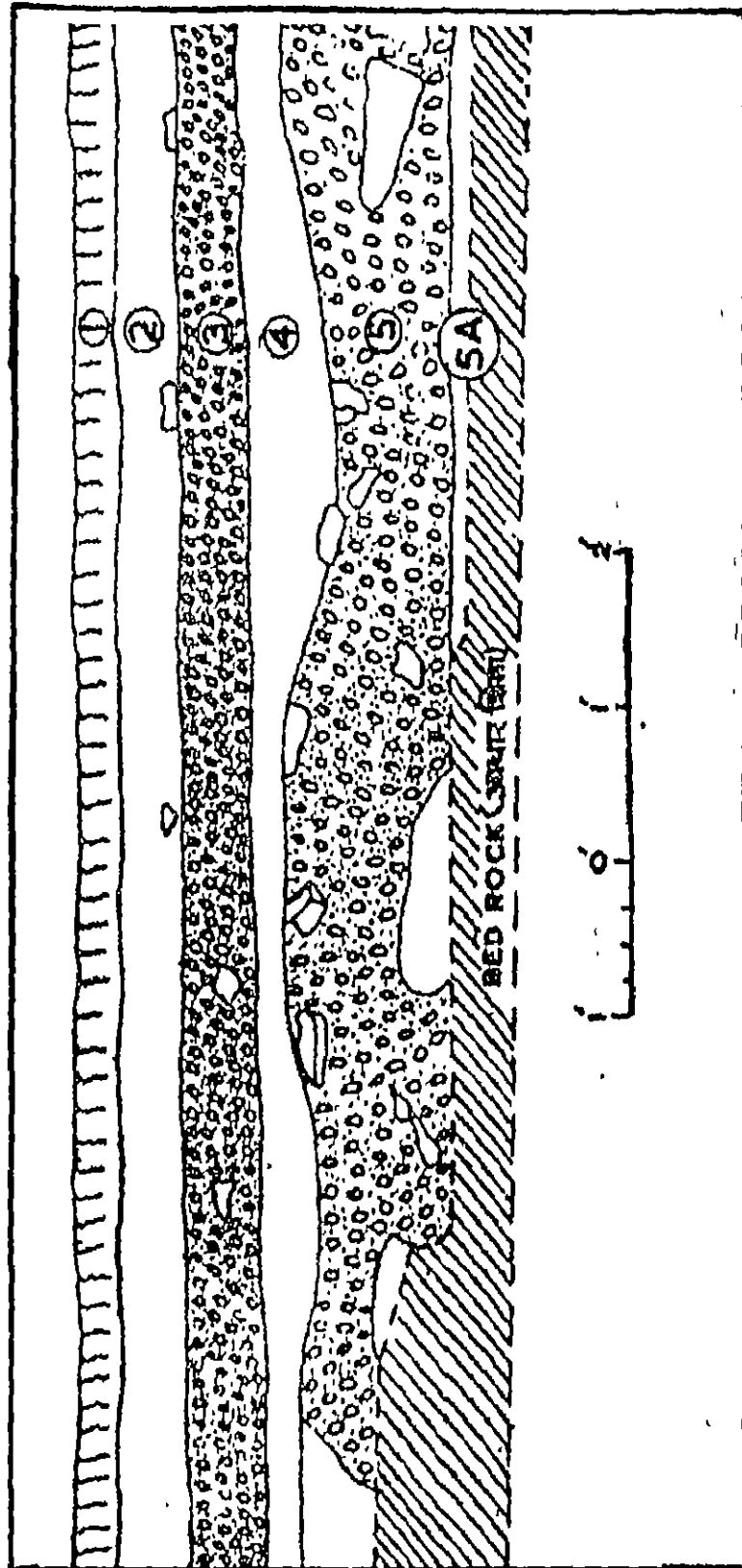
रेखाचित्र संख्या 7 - मोरहना पहाड़ के शिलाश्रय के बाहर उत्खनित खन्ती का अनुभाग

तालिका 5

शिलाश्रय के बाहर उत्खनन से प्राप्त उपकरण, मृद्भाण्ड

स्तर	उपकरण	प्रतिशत %	मृद्भाण्ड	अन्य
5ए	उपकरण नहीं मिले हैं		–	–
5	भुथड़े पार्श्व ब्लेड	17 6%		
	अर्द्ध चन्द्रिका	2 6%		फलक कोर
	शर	8 8%	–	भी प्राप्त हुए हैं।
	गठित एवं प्रयोग में लाये गये उपकरण	70 58%		
4	समानान्तर बाहु ब्लेड	52.60%	अत्यन्त भगुर	–
	भुथड़े पार्श्व ब्लेड	15 40%	आवस्था में मृद्भाण्ड	
	अर्द्ध चान्द्रिका	20%	के टुकड़े प्राप्त हुए	
	शर	1%	हैं। जिसमें गेरू की	
	त्रिभुज	2%	मात्रा अधिक है।	
	छिद्रका	3%		
3	समानान्तर ब्लेड	29%	लेयर 4 की तरह	
	भुथड़े पार्श्व ब्लेड	23%	ही मृद्भाण्ड हैं।	
	अर्धचान्द्रिक	6%		
	शर	26%		
	त्रिभुज	2%		
	फलक	5%		
	कोर	9%		
2	समानान्तर बाहु ब्लेड	22.64%	बर्तनों की संख्या	
	भुथड़े पार्श्व ब्लेड	20.36%	अपेक्षाकृत अधिक हैं।	
	अर्द्ध चान्द्रिका	8%		
	शर	40%		
	पुनरुज्जावन फलक	2 56%		
	कोर	2.44%	–	–
1	समानान्तर ब्लेड	33%	मृद्भाण्ड 50% है।	चतुर्भुजाकार लोहे
	शर	50%		का वाणाग्र भी
	त्रिभुज	17%		मिला है।

तालिका 6

शिलाश्रय में उत्खनन से प्राप्त उपकरण, मृद्भाण्ड

स्तर	उपकरण	प्रतिशत %	मृद्भाण्ड	अन्य
4	समानान्तर ब्लेड तथा	57%	मृद्भाण्ड गेरुए लाल रग	–
	भुथड़े पार्श्व ब्लेड	12.60%	के अधपके,	
	अर्द्ध चान्द्रिका	27.14%	घिसे हुए, भूरे अनुभाग	
	शर	68%	के 14 टुकड़े मिले हैं	
	छिद्रका	1.63%		
	ब्यूरिन	14 70%		
	कोर	5%		
	त्रिभुज	3 3%		
	समलम्ब चतुर्भुज	3.3%		
3	समानान्तर ब्लेड तथा भुथड़े पार्श्व	41.30%	पहले अपेक्षा ही है	–
	अर्द्ध चान्द्रिका	20.10%	बस संख्या अधिक है।	
	शर	12 70%		
	कोर	7.50%		
	त्रिभुज	2 50%		
	समलम्ब चतुर्भुज	2.5%		
2	समानान्तर बाहु ब्लेड	45.20%	मृद्भाण्ड में कोई	–
	भुथड़े पार्श्व ब्लेड	9 40%	अन्तर नहीं था,	
	अर्द्ध चान्द्रिका	23%	मृद्भाण्ड उपकरणों	
	शर	1.19	के 10% थे।	
	स्क्रेपर	2.38%		
	ब्यूरिन			
	त्रिभुज	14.32%		
	समलम्ब चतुर्भुज	1.19%		
	कोर	2.38%		
1	–		मृद्भाण्ड वैसे ही थे।	लोहे के वाणाग्र

1. वर्मा, आर० के०, 1964, *स्टोन एज कल्चर्स ऑफ मिर्जापुर थीसिज,* अप्रकाशित, पृष्ठ 329-464

बघहीखोर (24° 48' 30'' उत्तरी अक्षांश, 82° 5' पूर्वी देशान्तर) :

बघहीखोर शिलाश्रय, मोरहना पहाड़ के पूर्व मे लगभग एक किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। यहां पर शिलाश्रय नं0 1 में 12 × 6 फीट की एक खन्ती 1 फीट 10 इंच लगभग 55 सेमी0 मोटा मध्य पाषाणिक जमाव प्रकाश मे आया था, जिसे चार स्तरो में विभाजित किया गया है, मोरहना पहाड़ के उत्खनन से प्राप्त परिणामो से मिलता-जुलता लघु पाषाण उपकरणों का विकासात्मक क्रम बघहीखोर के उत्खनन से भी ज्ञात हुआ है। नीचे से ऊपर की ओर बघहीखोर के विभिन्न स्तरों का विवरण इस प्रकार है - यह स्तर पत्थर की चिप्पियों, राख तथा राख से मिश्रित मिट्टी से निर्मित 3 5 इंच मोटा जमाव है। इस जमाव से अज्यामितिक प्रकार के लघु पाषाण उपकरणो मे समानान्तर बाहु तथा भुथड़े पार्श्व ब्लेड 26%, शर 23.45%, अर्द्ध चान्द्रिक 27.16% तथा कोर 28.49% मिले हैं।

तीसरा स्तर महीन बलुई मिट्टी से निर्मित 3 इंच मोटा गेरुआ मिश्रित पीले रंग का जमाव है इस स्तर से भी अज्यामितिक लघु पाषाण उपकरण मिले थे, जिसमे समानान्तर बाहु ब्लेड 23.30%, भुथड़े पार्श्व ब्लेड 31.71%, अर्द्ध चान्द्रिक 9.75%, शर 10.85%, तथा कोर 28.49% हैं। इस स्तर से मृद्भाण्ड के टुकड़े भी प्राप्त हुए हैं।

दूसरा अ स्तर राख मिश्रित मिट्टी तथा पत्थर की चिप्पियों से निर्मित एक इच मोटा है।

दूसरा स्तर, स्तर 2अ के ही समान थी। इस जमाव से ढँका हुआ एक मानव कंकाल मिला था। लघु पाषाण उपकरण समुदाय में समानान्तर बाहु तथा भूथड़े पार्श्व ब्लेड - 54.77%, अर्द्ध चान्द्रिक 14.40%, शर 14.55, कोर 9 84%, त्रिभुज 3.28% तथा समलम्ब चतुर्भुज .85% थे। इस स्तर से मृद्भाण्ड सभी उपकरण का 4% प्राप्त हुए हैं।

प्रथम स्तर सख्त गहरे रंग का एक इंच मोटा जमाव था। इस जमाव से प्राप्त लघु पाषाण समुदाय में ब्लेड - समानान्तर बाहु तथा भुथड़े पार्श्व ब्लेड 56.48%, अर्द्ध चान्द्रिक 13 63%, शर 9.74%, त्रिभुज .97%, समलम्ब चतुर्भुज .64%, कोर तथा पुनरुज्जावन फलक 15.66% थे। उपकरणों के निर्माण के लिए चर्ट चाल्सेडनी एवं उसी प्रकार के पत्थरों का प्रयोग किया गया था।

मृद्भाण्ड :

मृद्भाण्ड स्तर तीन से प्राप्त हुए हैं जिन्हें अलंकरण के आधार पर दो भागो में बांटा जा सकता है -

1. अ-अलंकृत
2. अलंकृत

स्तर 2, 2अ तथा 1 की मृद्भाण्ड मे कोई अन्तर नहीं है। स्तर एक से चाक पर बने मृद्भाण्ड भी मिले थे।

ऊपरी सतह से लोहे के वाणाग्र तथा लोहे का एक टुकड़ा मिला था।

मानव शवाधान :

बघहीखोर के द्वितीय स्तर से एक विस्तीर्ण मानव शवाधान प्राप्त हुआ है जिसके लिए तीसरे तथा चौथे स्तरों को काटते हुए एक कब्र का निर्माण किया गया था। कब्र मे मानव कंकाल पश्चिम की ओर सिर तथा पूर्व दिशा की ओर पैर करके दफनाया हुआ मिला है। कंकाल छोटे-छोटे पत्थर के टुकड़ों से ढँका हुआ था। कंकाल के साथ लघु पाषाण उपकरण बहुत अधिक संख्या में मिले हैं। भारतीय नृतत्व सर्वेक्षक आर० एन० गुप्त के अनुसार इस कंकाल की लम्बाई 152.68 सेमी० है। यह 20-21 वर्षीय युवती का कंकाल है (रेखाचित्र संख्या 8)।[1]

लेखहिया (24° 47' 30" उत्तरी अक्षांश, 82° 87' 7" पूर्वी देशान्तर) :

लेखहिया शिलाश्रय भैंसोर ग्राम के पूर्व में लगभग 3 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। इस मध्य पाषाणिक पुरास्थल पर पाच शिलाश्रयों में से चार चित्रकारी से युक्त हैं। उत्खनन के लिए शिलाश्रय संख्या 1 एवं 2 का चयन किया गया था। जी० आर० शर्मा के निर्देशन मे वी० डी० मिश्र ने लेखहिया का उत्खनन कराया था। शिलाश्रय संख्या 1 मे 6.20 × 3.10 मीटर आकार की एक खन्ती डाली गई थी जिसमे 48 सेमी मोटा मध्य पाषाणिक जमाव प्राप्त हुआ, जिसे चार स्तरो में विभाजित किया गया। लेखहिया शिलाश्रय संख्या 2 के बाहर स्थित खुले हुए क्षेत्र मे 7 × 3 मीटर आकार की तीन खन्तियाँ डाली गई। 1.10 मीटर मोटा जमाव मिला है इस जमाव की संरचना तथा रंग के आधार पर 9 स्तरों में विभाजित किया गया है। इनमें से ऊपरी 8 स्तरो से लघु पाषाण उपकरण प्राप्त हुए हैं जिन्हें अज्यामितीय तथा ज्यामितीय उपकरणों की चार श्रेणियो में विभाजित किया गया है :

---

1. वर्मा, आर० के०, 2001, *पुरातत्व अनुशीलन*, पृष्ठ 109-110
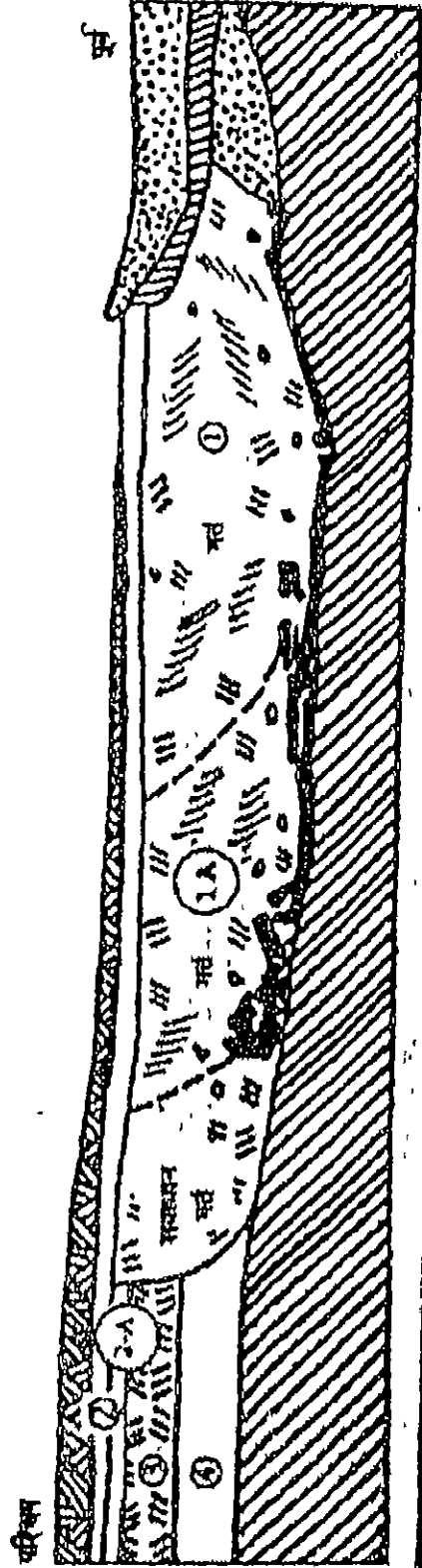
रेखाचित्र संख्या 8 - बघहीखोर (खन्ती नं0 1) अनुभाग ए-बी विस्तीर्ण शवाधान

1. अज्यामितीय मृद्भाण्ड-रहित लघु पाषाण उपकरण,
   (Non-Geometric pre-pattery microliths)
2. ज्यामितीय मृद्भाण्ड-रहित लघु पाषाण उपकरण,
   (Geometric tools without pattery)
3. ज्यामितीय मृद्भाण्ड-सहित लघु पाषाण उपकरण,
   (Geometric tools with pattery)
4. लघुतर ज्यामितीय मृद्भाण्ड-सहित लघु पाषाण उपकरण,
   (Diminutive geometric tools with pattery)

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि उत्तरी विन्ध्य क्षेत्र में लघु पाषाण उपकरणो मे एक विकासात्मक-क्रम परिलक्षित होता है। उपकरण उत्तरोत्तर छोटे होते गये हैं। प्रथम दो चरणों मे मिट्टी के बर्तनो के उपयोग के साक्ष्य नही मिलते हैं। कालान्तर में उत्तरी विन्ध्य क्षेत्र की नव पाषाणिक संस्कृति के लोगों के सम्पर्क के फलस्वरूप मध्य पाषाणिक लोगो ने हाथ से बने हुए मिट्टी के बर्तनों का उपयोग करना प्रारम्भ कर दिया था।

लेखहिया शिलाश्रय 1 में 17 × 8 फीट की एक खन्ती का उत्खनन किया गया था। इस खन्ती के उत्खनन के फलस्वरूप 17 मानव कंकाल प्रकाश में आए। प्रत्येक विस्तीर्ण शवाधान थे। इनके साथ बहुत अधिक संख्या मे लघु पाषाणोपकरण प्राप्त हुए थे। स्तरीकरण के आधार पर चौदह ककालों को आठ काल खण्डो में विभाजित किया गया है। तालिका के माध्यम से इन कंकालो का मूल्यांकन किया जा सकता है।

तालिका 7

लेखहिया के मानव कंकालों का क्षेत्र मूल्यांकन (आर0 एन0 गुप्ता)

शवाधान नं0	दिक् विन्यास	स्थिति/आसन	अन्त्येष्टि सामग्री	लिग	आयु
I	विखण्डित	?	–	?	?
II	दक्षिण-उत्तर	ऊर्द्ध मुख	पशुओं की हड्डियाँ (हिरण) घोंघा	?	बच्चा (6-8 साल का)
III	पश्चिम-पूर्व	ऊर्द्ध मुख दक्षिण की ओर	–	नर	वयस्क
IV	पश्चिम-पूर्व	ऊर्द्ध मुख टांगें मुडी हुई	–	नारी	वयस्क
V	पश्चिम-पूर्व	ऊर्द्ध मुख, पत्थर की तकिया के साथ	भैंस की एक पसली	नारी	वयस्क
VI	विखण्डित	?	हिरण का खुर	?	वयस्क
VII	पश्चिम-पूर्व	?	हड्डी के उपकरण (?)	?	वयस्क
VIII	विखण्डित	?	कछुए का कवच	नर	वयस्क
IX	पश्चिम-पूर्व	ऊर्द्धमुख पत्थर की तकिया युक्त	–	नर (?)	वयस्क
X	पश्चिम-पूर्व	?	ककड़ के टुकड़े	नर	वयस्क (50-55 वर्ष)
XI	विखण्डित	?	–	नर	वयस्क
XII	दक्षिण-उत्तर	ऊर्द्धमुख	–	नर (?)	नवयुवक (18-20 वर्ष)
XIII	पश्चिम-पूर्व	ऊर्द्धमुख, चेहरा द0 पूर्व की ओर	–	नारी	वयस्क
XIV	पश्चिम-पूर्व	ऊर्द्ध मुख	–	नर	वयस्क
XV	पश्चिम-पूर्व	?	–	नर	वयस्क
XVI	विखण्डित	?	–	नर	वयस्क
XVII	पश्चिम-पूर्व	ऊर्द्धमुख	ककड़ के टुकड़े	नर	वयस्क

यहां के ककालों के अस्थि अवशेषों का अस्थि परीक्षण लुकास (जे0 आर0 लुकास) ने किया था। उनकी धारणा है कि 14 कंकालो के अतिरिक्त और भी कंकाल थे। जिनकी कुछ हड्डियाँ मिली थी। आंशिक अस्थियो के आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि यहां पर कम से म 27 मानव शवाधान रहे होंगे।

कंकालो से सम्बन्धित अज्यामितीय तथा ज्यामितिक लघु पाषाण उपकरण बहुत बड़ी सख्या मे प्राप्त हुए हैं -

तालिका 8

लेखहिया के कंकालों से सम्बन्धित अज्यामितिक, ज्यामितिक उपकरण

काल	कंकाल	अज्यामितिक उपकरण %	ज्यामितिक उपकरण %
I	II	56%	44%
II	III	57%	43%
III	IV	73%	27%
IV	V	75%	25%
VI	V, VIII, IX, XI	79%	21%
VI	XIII, XV	90%	10%
VII	XVI	81%	18.18%
XIII	XVII	99%	1%

लघु पाषाणोपकरण के साथ गेरू तथा घिसे हुए लैटेराइट की छर्रियाँ भी मिली थी जिनका उपयोग सम्भवतः रंग बनाने के लिए किया गया होगा।

लेखहिया से दो कार्बन तिथियाँ उपलब्ध हुई हैं जो निम्न हैं - टी0 एफ0 419 - 2410 ± 115 ई0 पू0, टी0 एफ0 417-1710 ± 910 ई0 पू0 इनके अतिरिक्त दो कार्बन तिथियाँ और

हाल में उपलब्ध हुई हैं - जी0 एक्स0 20983 - ए0 एम0 एम0 8370 ± 75, जी0 एक्स 20984 - ए0 एम0 एस0 8000 ± 75।[1]

लेखहिया के ही समान अदवा घाटी में भी बहेरा, डाबर, अदईपुर, हर्रई, सरदमन, अमहटा, मघा, मनिगड़ा, बैधा एवं सोनगरा अनेक ऐसे मध्य पाषाणिक स्थल मिले हैं, जहाँ से निर्माण की विभिन्न अवस्थाओं वाले लघु पाषाण उपकरण काफी संख्या मे जमीन के ऊपरी भाग से मिले हैं, जिन्हे अज्यामितिक् एव ज्यामितिक उपकरणों के प्ररूप एवं तकनीकी के आधार पर चार श्रेणियों मे विभाजित किया गया है।

घघरिया (24° 35' उत्तरी अक्षांश, 82° 21' 12" पूर्वी देशान्तर) :

घघरिया शिलाश्रय कैमूर पर्वत व सोन के बीच सिहावल से 12 किलोमीटर उत्तर पूर्व में मध्य प्रदेश के सीधी जिले में स्थित है। यह मध्य पाषाणिक चित्रित शिलाश्रय था। इस पुरास्थल का उत्खनन इलाहाबाद विश्वविद्यालय एवं कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय बर्कले के तत्वावधान में किया गया, जिसके परिणाम स्वरूप हस्त निर्मित मृद्भाण्डो के अतिरिक्त ज्यामितिक लघु पाषाण उपकरण भी प्राप्त हुए हैं। मिर्जापुर जिले में अधेसर पहाड़ के शिलाश्रय से भी काफी संख्या में लघु पाषाण उपकरण प्राप्त हुए हैं।[2]

घघरिया शिलाश्रय का उत्खनन 3 × 1 मीटर के क्षेत्र में हुआ जहां से 58 सेमी0 मोटा आवासीय जमाव मिला, जिसको चार स्तरों में बांटा गया है (रेखाचित्र संख्या 9)। चारों स्तरो को दो कालो में बांटा गया है प्रथम काल 4, 3 से ज्यामितिक लघु पाषाण उपकरण मिले हैं, तथा द्वितीय काल स्तर 2, 1 से मृद्भाण्ड कला व ज्यामितिक लघु पाषाणोपकरण प्राप्त हुए हैं (रेखाचित्र संख्या 10)। यहा की मृद्भाण्ड कला के प्रकार व पद्धति बेलन घाटी की मध्य पाषाणिक मृद्भाण्ड कला व ज्यामितिक के समान हैं। यहां से कोटिया प्रकार के पात्र मिले हैं।[3]

---

1 लुकास, जान0 आर0 और मिश्रा बी0 डी0, *दि पिपुल ऑफ लेखहिया : ए बायो कल्चर प्रोटरेट ऑफ लेट मेसोलिथिक फारएगर्स*, आफ नार्थ इण्डिया, पृष्ठ 33-43

वर्मा, आर0 के0, 1977, *भारतीय प्रागैतिहासिक सस्कृतिया*, पृष्ठ 249-251

2. *इण्डियन आर्कियोलॉजी : ए रिव्यू*, 1979-80, पृष्ठ 50-51

3. पाल, जे0 एन0, 1986, *आर्कियोलॉजी ऑफ सदर्न उत्तर प्रदेश*, पृष्ठ 31
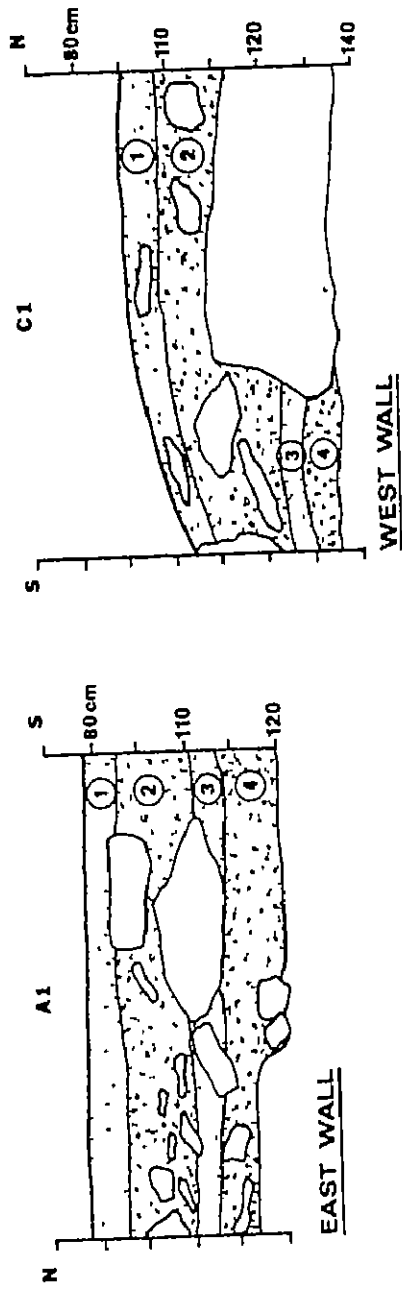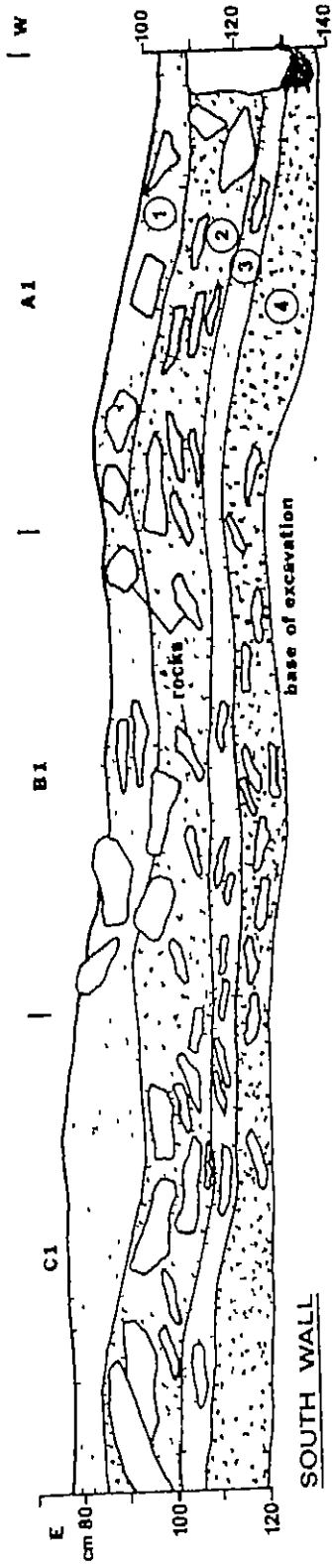
रेखाचित्र संख्या 9 - घघरिया शिलाश्रय : 1 का अनुभाग
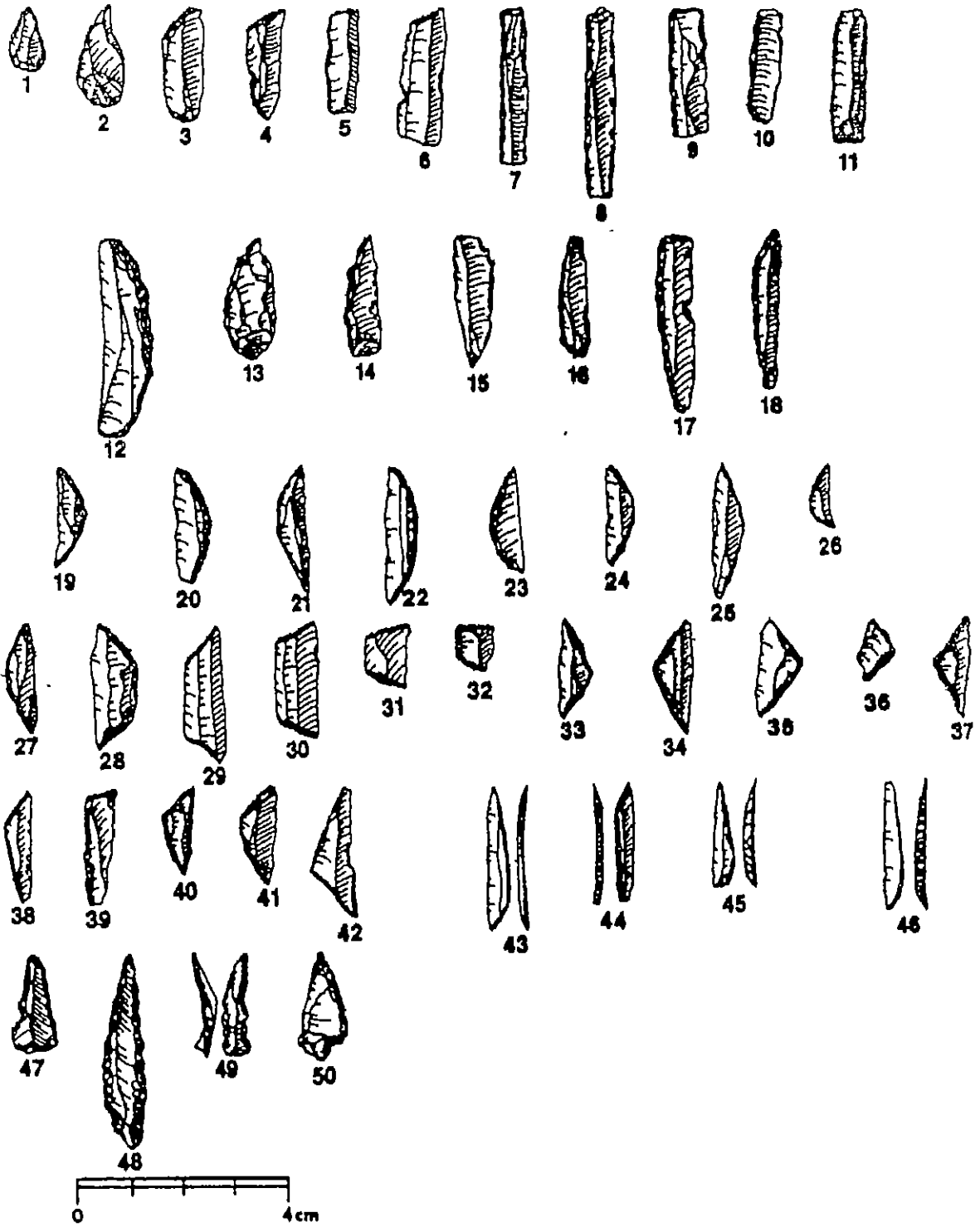
रेखाचित्र संख्या 10 - घघरिया शिलाश्रय : लघु पाषाण उपकरण

मध्य गंगा घाटी में मानव का प्रथम प्रवेश

उच्च पुरापाषाण काल में विन्ध्य क्षेत्र की जलवायु में परिवर्तन होने लगा था इसके प्रमाण यहाँ के नदी अनुभागो से प्राप्त हुए हैं बदले हुए परिवेश के कारण संभवतः उपकरण निर्माण तकनीकी में परिवर्तन करके नवीन प्रकार के उपकरणों का निर्माण किया गया। जलवायु मे इस क्रान्तिकारी परिवर्तन का प्रभाव गंगा नदी पर भी पड़ा और गंगा उत्तर से खिसककर दक्षिण मे अपनी वर्तमान स्थिति मे चली आयी। अपने मार्ग परिवर्तन के कारण उत्तर में गंगा नदी ने बहुत सी धनुषाकार झीलों का निर्माण कर दिया। कुछ झीले प्राकृतिक कारणो से भर गयी है।

इसी भौगोलिक परिवर्तन तथा साथ ही जनसंख्या वृद्धि के कारण, जो निश्चित रूप से विन्ध्य क्षेत्र के पठार का विस्तार पूरा नहीं कर पा रहा था, शायद यही विशेष कारण था कि अब तक जो मानव केवल विन्ध्य क्षेत्र तक ही निवास करता था उसने गगा घाटी की ओर निहारा, इस तरह शुरु हुआ गंगा घाटी में मानव जीवन। धीरे-धीरे और अल्पकालिक अवधि के लिए मानव गंगा घाटी पर आकर निवास करने लगा। लेकिन उनके सामने एक समस्या थी। वे अब भी उपकरण पत्थर के बनाते थे। गंगा घाटी में पत्थर नहीं थे। आवश्यकता आविष्कार की जननी है अब उपकरणों के निर्माण की दिशा मे एक नया प्रयोग प्रारम्भ हुआ। अब हड्डियों के उपकरण बड़ी संख्या मे बनने लगे। विन्ध्य क्षेत्र से गंगा घाटी मे मानव के प्रवेश का सिलसिला वैसे तो 15 हजार ई0 पू0 के पहले ही प्रारम्भ हो गया होगा। वह उच्च पुरापाषाण का परवर्ती चरण था। प्रारम्भ में संभवतः विन्ध्य क्षेत्र से गगा घाटी की ओर मनुष्य का आना और कुछ महीनों के बाद विन्ध्य क्षेत्र की ओर पुनः लौट जाना वस्तुनिष्ठ प्रव्रजन रहा होगा। लेकिन धीरे-धीरे तत्कालीन मानव ने गंगा घाटी मे ही रहने का निर्णय ले लिया।[1]

उच्च पुरा पाषाण काल के बाद मध्य पाषाण काल के मानव संस्कृति के साक्ष्य दो विभिन्न क्षेत्रों से प्राप्त हुए हैं। विन्ध्य क्षेत्र में चार-पांच लाख वर्ष पूर्व से आदि मानव के प्राचीनतम् प्रमाण मिलने लगते हैं। उस क्षेत्र की नदी उपत्यकाओं के अनुभागों से पाषाणकालीन संस्कृतियों के क्रमिक विकास के उल्लेखनीय प्रमाण मिले हैं। तत्कालीन पशुओं के अश्मीभूत अवशेषो और मानव निर्मित पाषाण, उपकरण नदी अनुभागों और वेदिकाओ से प्राप्त होते हैं।

---

1 मिश्रा, वी0 डी0, 1998, *इलाहाबाद जनपद मे प्रागैतिहासिक पृष्ठभूमि*, पृष्ठ 19

गंगा घाटी मे कई स्थलो पर गंगा के पुराने कछार के अनुभागो में चार जमाव मिलते हैं। सबसे नीचे का जमाव कंकरीली पीली मिट्टी का 4 मीटर मोटा है। इसके ऊपर 3 मीटर मोटा काली मिट्टी का जमाव है। तीसरा 2 मीटर मोटा पोतनी मिट्टी का जमाव है और सबसे ऊपर बलुई मिट्टी का लगभग 2 मीटर मोटा जमाव है। गंगा घाटी के इस ऊपरी जमाव में ऊपर से नीचे तक लघु पाषाण उपकरण प्राप्त होते हैं। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि इन उपकरणों का निर्माता मध्य पाषाण कालीन मानव इस क्षेत्र में उस समय आया जब इस ऊपरी बलुई मिट्टी का जमाव प्रारम्भ हुआ था और उसका कार्यकाल इस जमाव के अन्त तक चलता रहा। नवीन शोधों के आलोक मे मध्य पाषाण काल के पहले के भी सांस्कृतिक अवशेष गंगा के मैदान में प्राप्त हुये हैं। इन उपकरणों को उच्च पूर्व पाषाण काल तथा मध्य पाषाण काल के संक्रमण काल का माना गया है। ये उपकरण जिस धरातल पर प्राप्त होते हैं उसके अवलोकन से यह कहा जा सकता है कि ये धरातल गंगा के मैदान का तीसरा जमाव पोतनी मिट्टी का ऊपरी धरातल है। इस धरातल पर सर्वप्रथम पाषाण कालीन मानव मध्य गंगा घाटी मे आया।[1]

मध्य गंगा घाटी मे हाल मे हुये पुरातात्विक अन्वेषणों के आलोक मे सम्पूर्ण प्रागैतिहासिक सस्कृति की जो रूप-रेखा निर्मित हुई है उसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है -

अनुपुरापाषाण काल :

गगा घाटी की इस प्राचीनतम् संस्कृति के प्रमाण अभी तक पांच स्थलों से प्राप्त हुए हैं - इलाहाबाद में अहिरी (25^0 21′ 0″ उत्तरी अक्षांश, 82^0 16′ 0″ पूर्वी देशान्तर), वाराणसी में गढ़वा (25^0 23′ 45″ उत्तरी अक्षांश, 82^0 53′ 45″ पूर्वी देशान्तर) और प्रतापगढ़ में सुलेमान पर्वत (25^0 59′ 0″ उत्तरी अक्षांश, 82^0 2′ 25″ पूर्वी देशान्तर) तथा साल्हीपुर (26^0 0′ 10″ उत्तरी अक्षांश, 82^0 4′ 30″ पूर्वी देशान्तर) मे स्थल धनुषाकार झीलों अथवा इन झीलों से निकलने वाली सरिताओं के तट पर स्थित है।

उच्च पुरापाषाण तथा मध्य पाषाण काल के संक्रमण कालीन सांस्कृतिक स्थलो से अत्याधिक

1. शर्मा, जी० आर०, 1973, मेसोलिथिक लेक कल्चर्स इन दि *गंगा* वैली, प्रोसीडिंग ऑफ दि प्रीहिस्टारिक सोसायटी, *वाल्यूम 39*, पृष्ठ 129-130
   शर्मा, जी० आर०, 1975, सीजनल माइग्रेसन एण्ड मेसोलिथिक लेक कल्वर्स ऑफ दि गंगा वैली, के० सी० चट्टोपाध्याय, *वालूय्म 9*

मात्रा मे पाषाण उपकरण प्राप्त हुए हैं। इन स्थलों पर पूर्ण निर्मित उपकरणो के साथ ही निर्माण की विभिन्न अवस्थाओं के उपकरणो में क्रोड, फलक आदि प्राप्त होते हैं जिससे प्रतीत होता है कि इन उपकरणो का निर्माण इन्हीं स्थलों पर किया गया है। गंगा घाटी में पाषाणों का श्रोत नही था। विन्ध्य क्षेत्र से पाषाण कालीन मानव पत्थर के पिण्ड लेकर गंगा घाटी मे आता था, यहीं पर उपकरणो का निर्माण करता और शिकार करता था। जलवायु और परिवेश में परिवर्तन तथा तत्कालीन आबादी मे वृद्धि इस आगमन का कारण रहा होगा।

मध्य गंगा घाटी के उत्खनित स्थल

मध्य पाषाण संस्कृति के उपकरण सबसे अधिक क्षेत्र में सबसे अधिक स्थलो से प्राप्त हुए हैं। गंगा के उत्तरी वाराणसी, इलाहाबाद, सुल्तानपुर, जौनपुर और प्रतापगढ़ से इस संस्कृति के लगभग 193 स्थल प्रकाश मे आये हैं। इस सस्कृति के विकास की एक अवस्था मे कुछ नये उपकरणों का अविष्कार हो जाता था। ये उपकरण त्रिभुज और सम्लम्ब चतुर्भुज के आकार के हैं। अपने ज्यामितीय आकार के ही कारण मध्य पाषाण सस्कृति के इस चरण के उपकरणों को ज्यामितीय लघु पाषाण उपकरण कहते हैं। इस प्रकार मध्य पाषाण संस्कृति दो चरणों में विभक्त हो गयी है -

1. आरम्भिक मध्य पाषाण काल या अज्यामितीय लघु पाषाण उपकरण
2. परवर्ती मध्य पाषाण काल या ज्यामितिक लघु पाषाण उपकरण

गगा घाटी में आरम्भिक मध्य पाषाण काल के अभी तक 172 पुरास्थल प्रकाश में आये हैं, जहां से अज्यामितिक लघु पाषाण उपकरण मिले हैं। इस चरण के प्रमुख स्थलों में इलाहाबाद के कुढ़ा (25^0 35' 4'' उत्तरी अक्षांश, 81^0 43' 17'' पूर्वी देशान्तर), भीखमपुर (25^0 31' 58'' उत्तरी अक्षांश, 81' 44' 41'' पूर्वी देशान्तर) और महरूडीह (25^0 31' 58'' उत्तरी अक्षांश, 81^0 48' 25'' पूर्वी देशान्तर), प्रतापगढ़ के हड्डी भिदुली कन्धई मधुपुर (25^0 50' 38'' उत्तरी अक्षांश, 81^0 48' 25'' पूर्वी देशान्तर), कन्धई मधुपुर (25^0 59' 50'' उत्तरी अक्षांश, 82^0 4' 0'' पूर्वी देशान्तर) आदि स्थलों का उल्लेख किया जा सकता है। इन स्थलों से समानान्तर एवं कुण्ठित पार्श्व वाले ब्लेड, बेधक, खुरचनी, चान्द्रिका आदि प्रमुख लघु पाषाण उपकरण हैं जिनका निर्माण चर्ट, चाल्सेडनी, अग्रेट तथा कार्नेलियन आदि पत्थरों पर किया गया है। इस वर्ग के उपकरण प्रथम वर्ग की अपेक्षा छोटे हैं।

परवर्ती मध्य पाषाण काल के अभी तक 21 स्थल प्रकाश में आये हैं। प्रमुख स्थलो में इलाहाबाद जिले में बिछिया, जौनपुर मे लोहिना, नगोली तथा पुरागम्भीरशाह आदि और प्रतापगढ़ जिले मे स्थित भेवनी, धर्मनपुर, सराय नाहर राय, महदहा, दमदमा, बारीकलां, राजापुर, सुलेमान पर्वतपुर, मन्दाह, शल्हीपुर, कन्धई आदि मध्य पाषाण काल के प्रमुख पुरास्थल है। इन पुरास्थलों से अन्य लघु पाषाणिक उपकरणो के अतिरिक्त त्रिभुज एवं समलम्ब चतुर्भुज ज्यामितीय उपकरण मिले हैं। उपकरणों के निर्माण के लिए चर्ट, चाल्सेडनी, अगेट, जैस्पर एवं कार्नेलियन प्रकार के पत्थरो का उपयोग किया गया है। मध्य गंगा घाटी के प्रतापगढ़ जिले मे स्थित केवल तीन पुरास्थल सराय नाहर राय, महदहा एव दमदमा का उत्खनन हुआ है जिससे इस संस्कृति के विविध पक्षों पर प्रकाश पड़ा है।[1]

सराय नाहर राय (25⁰ 48' उत्तरी अक्षांश, 81⁰ 50' पूर्वी देशान्तर) :

सराय नाहर राय मध्य गंगा घाटी के सभी स्थलों मे सबसे महत्वपूर्ण है। यह प्रतापगढ़ से 15 किलोमीटर दक्षिण पश्चिम मे, एक धनुषाकार झील के किनारे स्थित है। यह झील अब सूख चुकी है। इस पुरास्थल की खोज सन् 1969 में उत्तर प्रदेश शासन के पुरातत्व विभाग के तत्कालीन निदेशक स्वा0 के0 सी0 ओझा ने किया था। सन् 1970 में उत्तर प्रदेश के पुरातत्व विभाग ने भारतीय नृतत्व सर्वेक्षक पी0 सी0 दत्त के सहयोग से एक मानव कंकाल का उत्खनन कराया था। तत्पश्चात् इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग ने उत्तर प्रदेश शासन के वित्तीय सहयोग से सन् 1971-72 तथा 72-73 में राधा कान्त वर्मा, वी0 डी0 मिश्र तथा धनेश मण्डल ने प्रो0 शर्मा के निर्देशन मे बड़े पैमाने पर उत्खनन कार्य किया गया था।

यह पुरास्थल लगभग 1800 वर्ग मीटर के क्षेत्र में फैला हुआ है। इस सम्पूर्ण क्षेत्र मे लघु पाषाण उपकरण और जानवरो की हड्डियां बिखरी हुई थीं। पानी के बहाव के फलस्वरूप ऊपरी सतह के कट जाने के कारण मानव ककाल भी झाँकते हुए मिले हैं। मध्य पाषाणिक मानव ने इस क्षेत्र का उपयोग आवास स्थल एवं शव-स्थल के रूप में किया था (रेखाचित्र संख्या 11)। सराय नाहर राय मे कुल 11 मानव समाधियों तथा 8 गर्त चूल्हों का उत्खनन इलाहाबाद विश्वविद्यालय की ओर से किया

---

1 शर्मा, जी0 आर0, 1973, मेसोलिथिक लेक कल्चर्स इन दि गंगा वैली, प्रोसीडिंग्स ऑफ दि प्री हिस्टारिक सोसाइटी, *वाल्यूम 39*, पृष्ठ 34-46
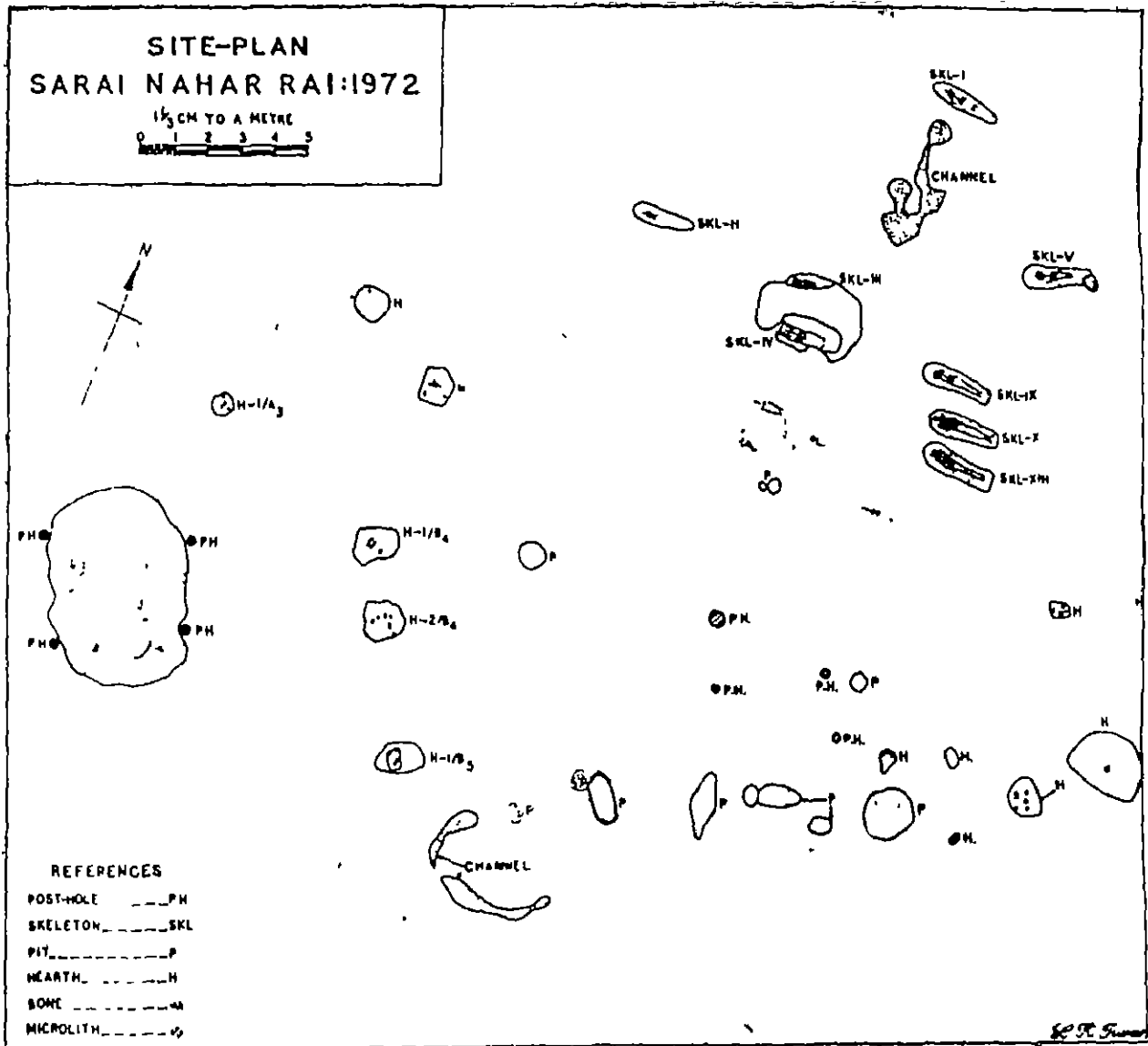
रेखाचित्र सख्या 11 - सराय नाहर राय : उत्खनित स्थल

गया था। शव स्थल इस क्षेत्र के उत्तरी-पूर्वी भाग मे सीमित था। दक्षिण-पश्चिमी भाग में चूल्हों तथा एक फर्श के प्रमाण मिले हैं। स्थल पर अभी भी कम से कम तीन शवाधान तथा चार चूल्हे सतह पर हैं।

सराय नाहर राय के उत्खनन से मध्य पाषाणिक लोगों की शवाधान प्रणाली पर विस्तृत प्रकाश पड़ा है। इस पुरास्थल की समाधियाँ (कब्र) आवास क्षेत्र के अन्दर स्थित थी। शवों को अण्डाकार छिछली कब्रो मे दफनाया जाता था। कब्र मे मृतक को रखने के पहले मुलायम भुरभुरी मिट्टी बिछाई जाती थी और उन्हे सांगोपांग लिटाकर रखा जाता था। इनका सिर पूर्व की तरफ तथा पैर पश्चिम की तरफ रखा जाता था। एक हाथ शरीर के समानान्तर और दूसरा पेट पर रखकर दफनाने की परम्परा थी। चार ककाल वाली समाधि मे ऐसा प्रतीत होता है कि एक पुरुष और एक स्त्री का शव कब्र मे रखने के बाद पुनः पुरुष के ऊपर एक अन्य पुरुष तथा स्त्री के ऊपर दूसरी स्त्री का शव रखकर दफनाया गया था। इनको खुदाई से निकली मिट्टी तथा चूल्हो की मिट्टी एव राख से भरा गया था। मरने के बाद किसी दूसरे जीवन के बारे मे भी लोग आस्था रखते थे। इसीलिए कब्रो मे लघु पाषाण उपकरण मिले हैं। ये इस बात का प्रमाण है कि कब्र में दफनाने की विधि का यथेष्ठ विकास हो चुका था। उल्लेखनीय है कि मध्य पाषाण काल की कब्र में नारिया पुरुषो के बायी ओर रखी गयी है।

इस पुरास्थल से अभी तक प्राप्त 15 ककालो में से 11 कंकाल, जिनमे 7 पुरुषो तथा 4 स्त्रियो के हैं, की पहचान की जा चुकी है। 4 कंकाल के लिग की पहचान अभी नहीं हुई है। हड्डियो के अस्थिकरण, कपाल की सधि रेखाओं के विलयन तथा स्थायी दांतों के आधार पर इनकी औसत आयु 17-31 वर्ष आंकी गयी है। स्त्रियो की मृत्यु 15-35 वर्ष की आयु में हुई। सराय नाहर राय के स्त्री-पुरुष दोनों ही अपेक्षाकृत लम्बे कद के थे। पुरुषों की अनुमानित लम्बाई 1.80 मीटर तथा स्त्रियो की उससे थोड़ा कम थी।

सराय नाहर राय से 8 गर्त चूल्हों का उत्खनन किया गया। ये गोलाकार, अण्डाकार तथा अनियमित आकार के हैं। गर्त चूल्हो का मुंह चौड़ा तथा पेटी संकरी है जिसकी ऊपरी माप 1.49 मीटर से 72 सेमी0 है तथा पेदी 1 02 मीटर से 45 सेमी0 है। इनकी गहराई 25 सेमी0 से 10 सेमी0 के बीच में है। गर्त चूल्हो से गाय, भैंस, बैल, भेंड़, बकरी आदि की जली-अधजली हड्डियाँ

मिली हैं। इनके अतिरिक्त कछुआ की खोपड़ी के टुकड़े तथा हाथी की एक पसली भी प्राप्त हुई है। गर्त चूल्हो का उपयोग संभवतः पशुओ का मास भूनने के लिए होता था। इन चूल्हो मे केवल, राख मिली है, कोयले के टुकड़े नही मिले है। यह अनुमान किया गया है कि घास-फूस आदि का उपयोग ईंधन के रूप में किया जाता रहा होगा। आवास क्षेत्र से 5 × 4 मीटर आकार का एक फर्श मिला है जिसके चारो कोनों पर एक-एक स्तम्भ गर्त मिला है (रेखाचित्र संख्या 12)। जी0 आर0 शर्मा ने इसको सामुदायिक चूल्हा कहा है, क्योंकि इसके फर्श से लघु-पाषाण उपकरण, पशुओ की हड्डिया तथा कई छोटे चूल्हे मिले हैं।

इस पुरास्थल से लघु पाषाण उपकरण अपेक्षाकृत कम संख्या में मिले हैं। प्राप्त लघु पाषाण उपकरणो मे समानान्तर एव कुण्ठित पार्श्व वाले ब्लेड, बेधक, चन्द्रिका, खुरचनी, समबाहु तथा विषमबाहु त्रिभुज आदि ज्यामितीय उपकरण हैं, जो चर्ट, चाल्सेडनी, अगेट, जैस्पर आदि पर बने हुए हैं। पशुओ की हड्डियाँ तथा श्रृगों पर बने हुए उपकरण भी इस काल में अत्यल्प संख्या में प्राप्त हुए हैं।

साराय नाहर राय के उत्खनन से मध्य पाषाणिक मानव के सामाजिक जीवन पर भी प्रकाश पड़ता है। सम्भवतः ये छोटे-छोटे समुदायों मे अपेक्षाकृत स्थायी रूप मे रहते थे। जिस तरह स्त्री-पुरुषों के शव एक विधि में रखे हुए मिले हैं उससे अनुमान किया जा सकता है कि किसी प्रकार की सामाजिक व्यवस्था अथवा स्त्री और पुरुषों के सम्बन्ध का प्रारम्भ होने लगा था।

सराय नाहर राय से एक कार्बन तिथि 10,345 ± 110 ई0 पू0 उपलब्ध है।

महदहा (25° 5' 92'' उत्तरी अक्षांश, 82° 30' पूर्वी देशान्तर) :

महदहा नामक मध्य पाषाणिक पुरास्थल प्रतापगढ़ से पूर्वोत्तर दिशा में 31 किलोमीटर और पट्टी कस्बे से 5 किलोमीटर उत्तर में प्राचीन गोखुर झील के पश्चिम तट पर महदहा गांव के पूर्व में स्थित है। सन् 1978 ई0 में शारदा सहायक नहर परियोजना की जौनपुर शाखा की चौड़ी करने की प्रक्रिया में इस पुरास्थल की जानकारी इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग को अपने भूतपूर्व छात्र एवं पट्टी तहसील के तत्कालीन परगनाधिकारी लाल बिहारी पाण्डेय के सौजन्य से प्राप्त हुई। सन् 1978 एवं 1979 ई0 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के
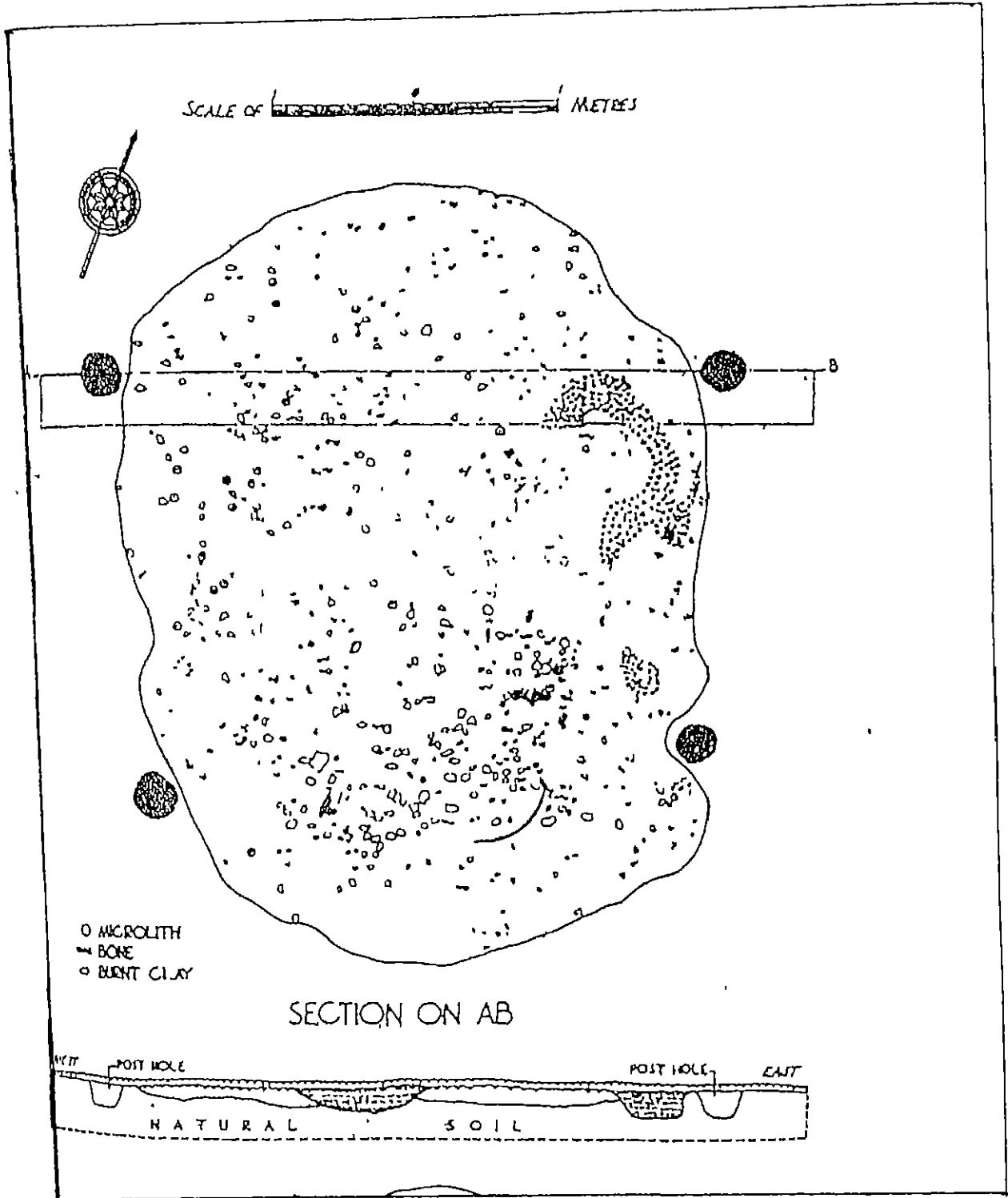
रेखाचित्र संख्या 12 - सराय नाहर राय : स्तम्भगर्त सहित फर्श (शर्मा 1975 के अनुसार)

प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग ने 'बचाव उत्खनन' के रूप में यहां पर कार्य किया जिसका सचालन प्रो0 वी0 डी0 मिश्र एव डॉ0 जे0 एन0 पाल ने किया।

महदहा का यह स्थल लगभग 8,000 वर्ग मीटर के क्षेत्र मे फैला हुआ है। 'गोखुर झील' के पश्चिम दिशा में 216 वर्ग मी0 के क्षेत्र मे क्षैतिज उत्खनन किया गया (रेखाचित्र संख्या 13)। दूसरे स्थल पर भी 34.56 वर्ग मीटर क्षेत्र मे उत्खनन किया गया। यह भी नहर के पश्चिम मे है। तीसरा स्थल नहर के पूर्व मे स्थित है (छायाचित्र संख्या 17)। चतुर्थ स्थल पुरानी झील के दक्षिण-पश्चिमी कोने मे स्थित है। यहां पर अनुक्रम को जानने के लिए उत्खनन किया गया था।

उत्खनन से 60 से0 मी0 आवासीय जमाव प्रकाश मे आया जिन्हें चार स्तरो में विभाजित किया गया है। चारो जमाव मे जली हड्डियाँ तथा लघु पाषाण उपकरणो के अवशेष मिले हैं। महदहा के उत्खनन के फलस्वरूप जिन 28 समाधियों की जानकारी प्राप्त हुई उनको चार उपकालों में विभाजित किया गया है (छायाचित्र संख्या 18)। महदहा के प्रथम उपकाल से तीन मानव समाधियां मिली है जिनसे चार कंकाल प्राप्त हुए हैं क्योंकि प्रथम समाधि एक युग्म समाधि है। अन्य दो समाधियों में एक-एक कंकाल मिले है। युग्मित समाधि में पुरुषों को दाहिनी ओर तथा स्त्री को बांयी ओर लिटाकर दफनाया गया है। सभी ककालों के सिर पश्चिम की ओर हैं। इस उपकाल के चार मे से दो पुरुष तथा दो स्त्री कंकाल थे। सभी कंकाल वयस्क लोगो के थे।

दूसरे उपकाल से दो समाधिया मिली हैं जिसमें से एक एकल तथा दूसरी युग्मित समाधि है (छायाचित्र संख्या 19)। युग्म समाधि में पुरुष कंकाल के ठीक ऊपर स्त्री कंकाल को दफनाया गया है। दिक्-स्थापना पश्चिम-पूर्व है। इस उपकाल की दोनों समाधियों मे अन्त्येष्टि सामग्री रखी हुई मिली है। एकांकी समाधि में एक पुरुष ककाल जानवर की सीगों से बनी हुई पाच मुंडिकाओ की एक माला गले में पहने हुए था (छायाचित्र संख्या 20)। युग्म समाधि का पुरुष सीगों की बनी हुई 12 मुंडिकाओ की एक माला गले मे पहने हुए तथा कान में शृंग का बना हुआ गोल कुण्डल धारण किये हुए था (छायाचित्र संख्या 21)।

तीसरे उपकाल से 9 समाधियाँ मिली हैं प्रत्येक समाधि से एक-एक मानव कंकाल मिला है। इनमें से 4 स्त्रियों और 2 पुरुषों के कंकाल हैं। शेष तीन की पहचान संभव नहीं है। सात ककाल पश्चिम-पूर्व दिशा में दफनाये हुए मिले हैं दो में भिन्नता है। एक पूर्व-पश्चिम दिशा में तथा दूसरा
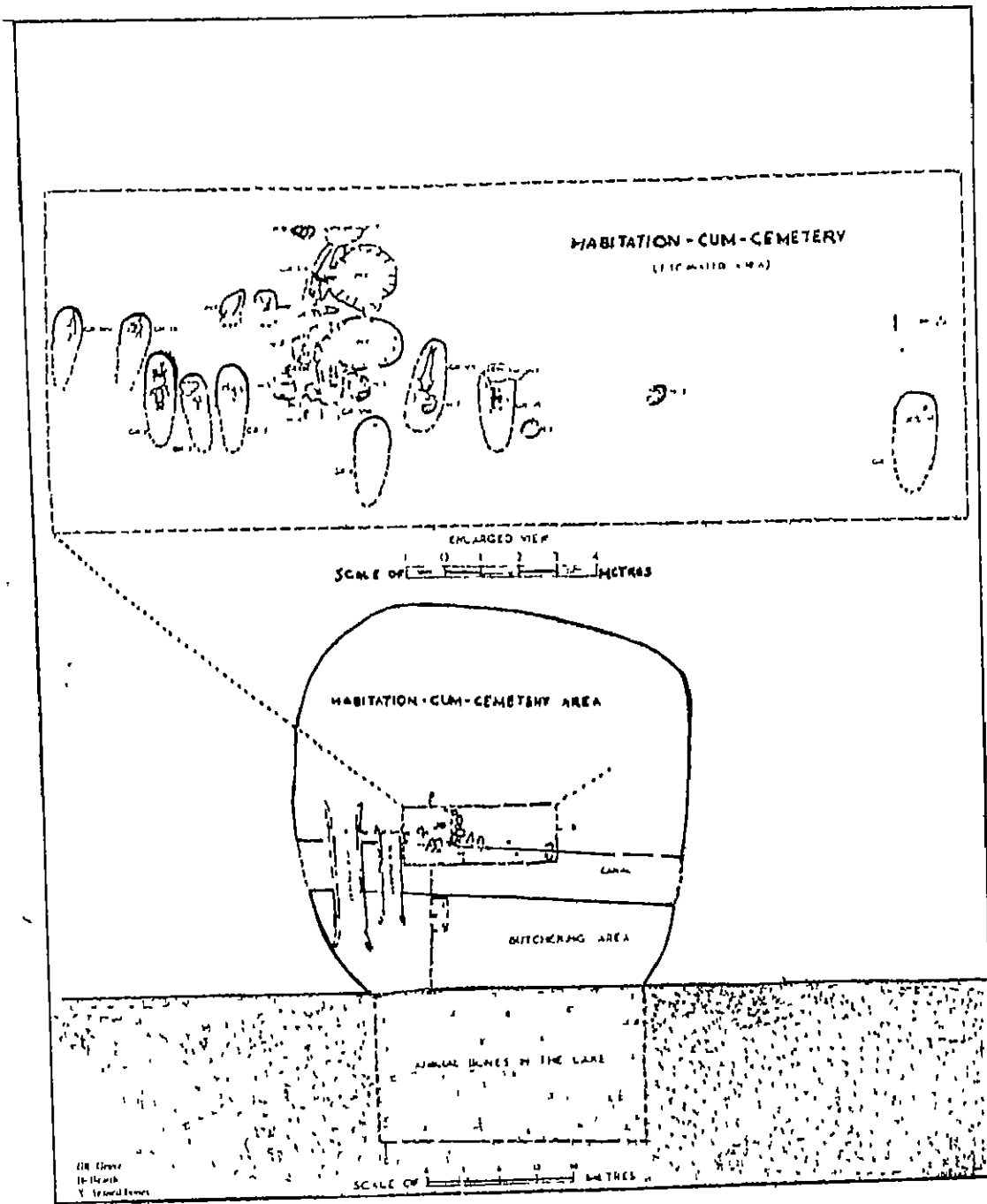
रेखाचित्र संख्या 13 - महदहा : उत्खनित क्षेत्र (साइट प्लान)
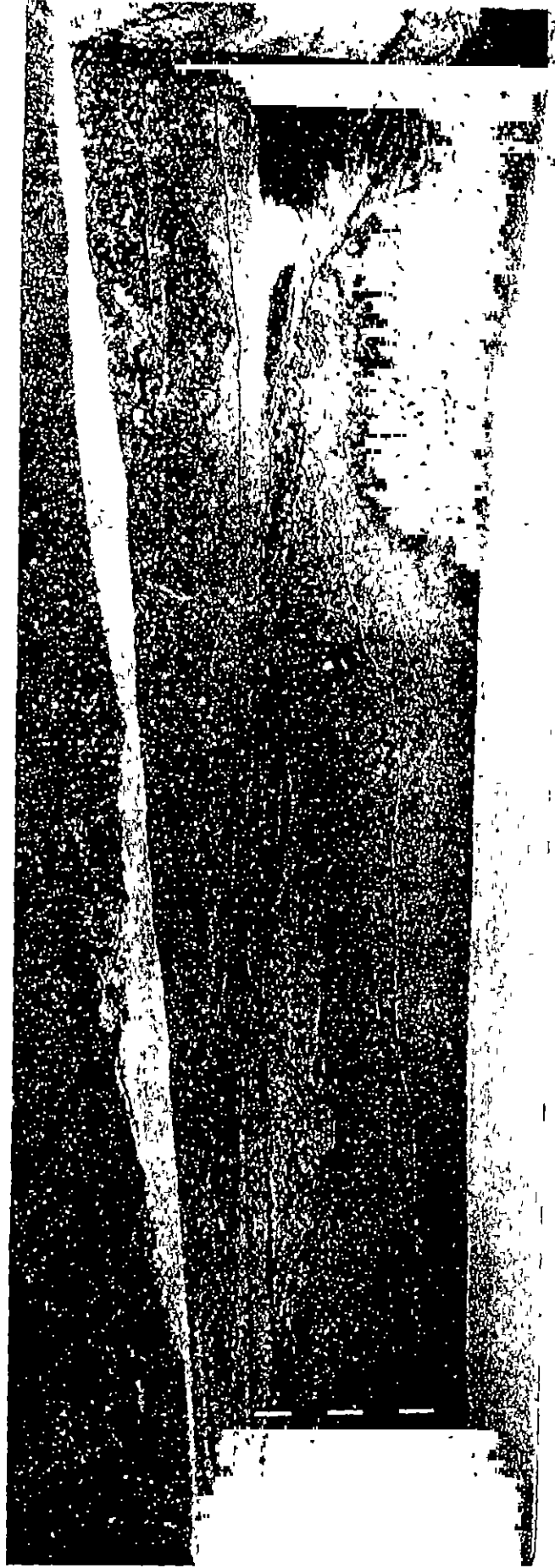
छायाचित्र संख्या 17 - महदहा : झील क्षेत्र

छायाचित्र संख्या 18 - महदहा : कब्रगाह एवं आवास स्थल

छायाचित्र संख्या 19 - महदहा : युग्म शवाधान
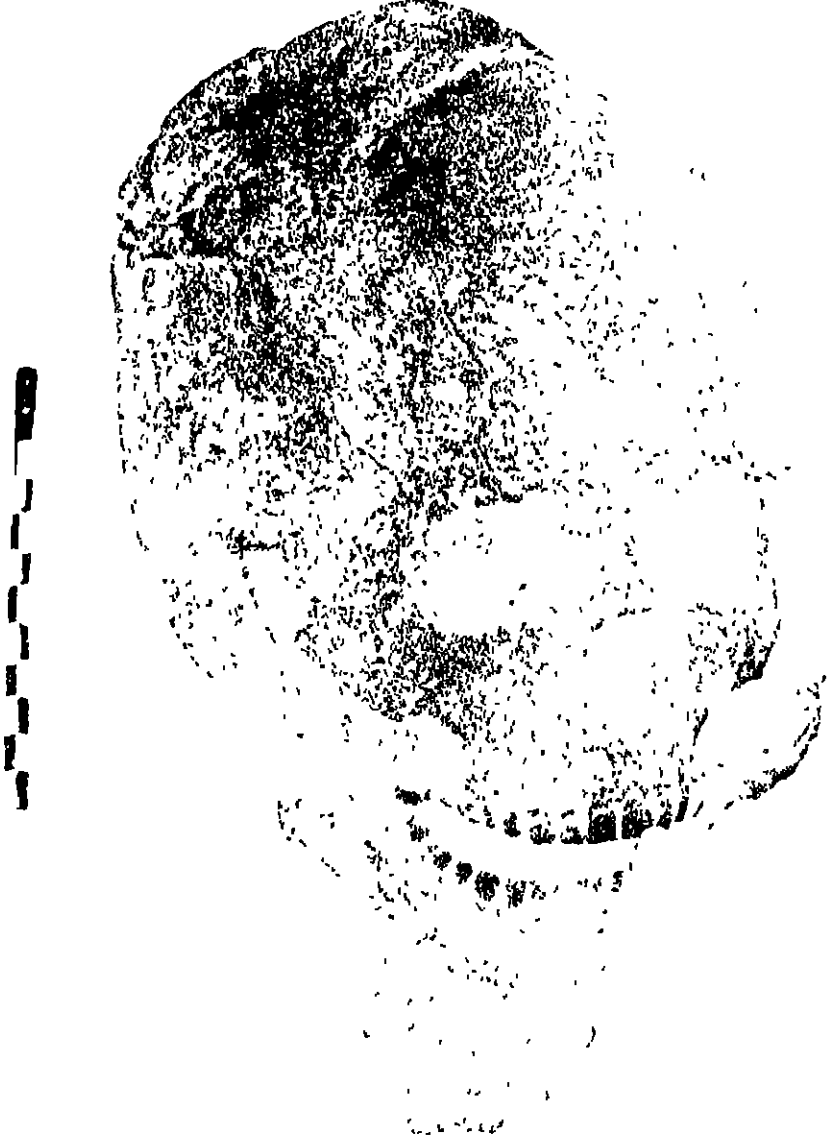
छायाचित्र संख्या 20 - महदहा : आभूषण युक्त पुरुष कपाल

छायाचित्र संख्या 21 - महदहा : आभूषण युक्त कंकाल

पूर्व-पूर्व दक्षिण से पश्चिम-पश्चिम उत्तर की ओर सिर करके दफनाया गया है। दो समाधियो से अन्त्येष्टि सामग्री मिली है। एक महिला कंकाल के साथ सींग की बनी दो गुरिया सीग का एक बाण मिला है तथा दूसरी स्त्री के साथ कछुआ की खोपड़ी का एक टुकड़ा रखा हुआ मिला है।

महदहा के चौथे उपकाल से सर्वाधिक 14 समाधियाँ मिली हैं, जिनमे से प्रत्येक में एक-एक मानव कंकाल दफनाया हुआ मिला है। एक मुड़े हुए कंकाल को छोड़कर शेष सभी 13 विस्तीर्ण शवाधान हैं। चौदह में से 12 की लिंग पहिचान की जा सकी है जिसमें 8 महिलाये तथा 4 पुरुष हैं। दो कंकालों की पहचान नहीं की जा सकी है। 14 में से 11 वयस्क, 1 वृद्ध की तथा 2 बच्चों के ककाल हैं। चौदह में से सात का सिर पश्चिम तथा पाच का सिर पूर्व दिशा की ओर करके दफनाया गया था। दो कंकालो का दिक्-स्थापना सीधा न होकर तिरछा था। दो महिलाओं तथा एक पुरुष के साथ अन्त्येष्टि सामग्री रखी हुई मिली है। कंकाल नहर की खुदाई के कारण कटे हुए मिले थे इसलिए उनकी वास्तविक लम्बाई का निर्धारण कठिन है फिर भी अनुमान है कि स्त्री-पुरुष लम्बे कद के हृष्ट-पुष्ट और स्वस्थ थे।

महदहा से 35 गर्त चूल्हे मिले हैं। कुछ चूल्हों का भीतरी भाग लीप पोत कर चिकना बनाया गया था। गर्त चूल्हों से राख, जली हुई मिट्टी तथा पशुओ की जली हुई हड्डियाँ मिली हैं। महदहा के एक गर्त चूल्हे से भैंसे की सींग युक्त पूरा सिर मिला है। मांस को भूनकर खाने का ये अत्यन्त महत्वपूर्ण साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं।

महदहा के गर्त चूल्हो तथा गोखुर झील से वन्य पशुओं की हड्डियां मिली हैं। गाय, बैल, भैंस, सांभर, चीतल, बारहसिंधा, जंगली सुअर, भेंड-बकरी, गैंडा, हाथी आदि पशुओं का शिकार ये लोग करते थे। कछुआ, मछली आदि जलचरों का भी शिकार किया जाता था।

महदहा से लघु पाषाण उपकरण अपेक्षाकृत कम संख्या में मिले हैं (रेखाचित्र संख्या 14)। प्रमुख उपकरणों में से ब्लेड, खुरचनी, बेधक, चान्द्रिक, त्रिभुज तथा समलम्ब चतुर्भुज उल्लेखनीय हैं। महदहा से सींग तथा शृंग के बने उपकरण और आभूषण सराय नाहर राय की तुलना मे अधिक संख्या में मिले हैं। सींग तथा शृंग के उपकरणों में वाणाग्र, बेधक, खुरचनी, आरी, रुखानी, चाकू आदि हैं। शृंग के आभूषणों में कुण्डल तथा मुद्रिकायें उल्लेखनीय हैं। महदहा से बलुआ पत्थर पर बने हुए टूटे हुए सिल-लोढ़े, गोफन पाषाण तथा हथौड़े आदि भी मिले हैं। सिल-लोढ़ों की प्राप्ति
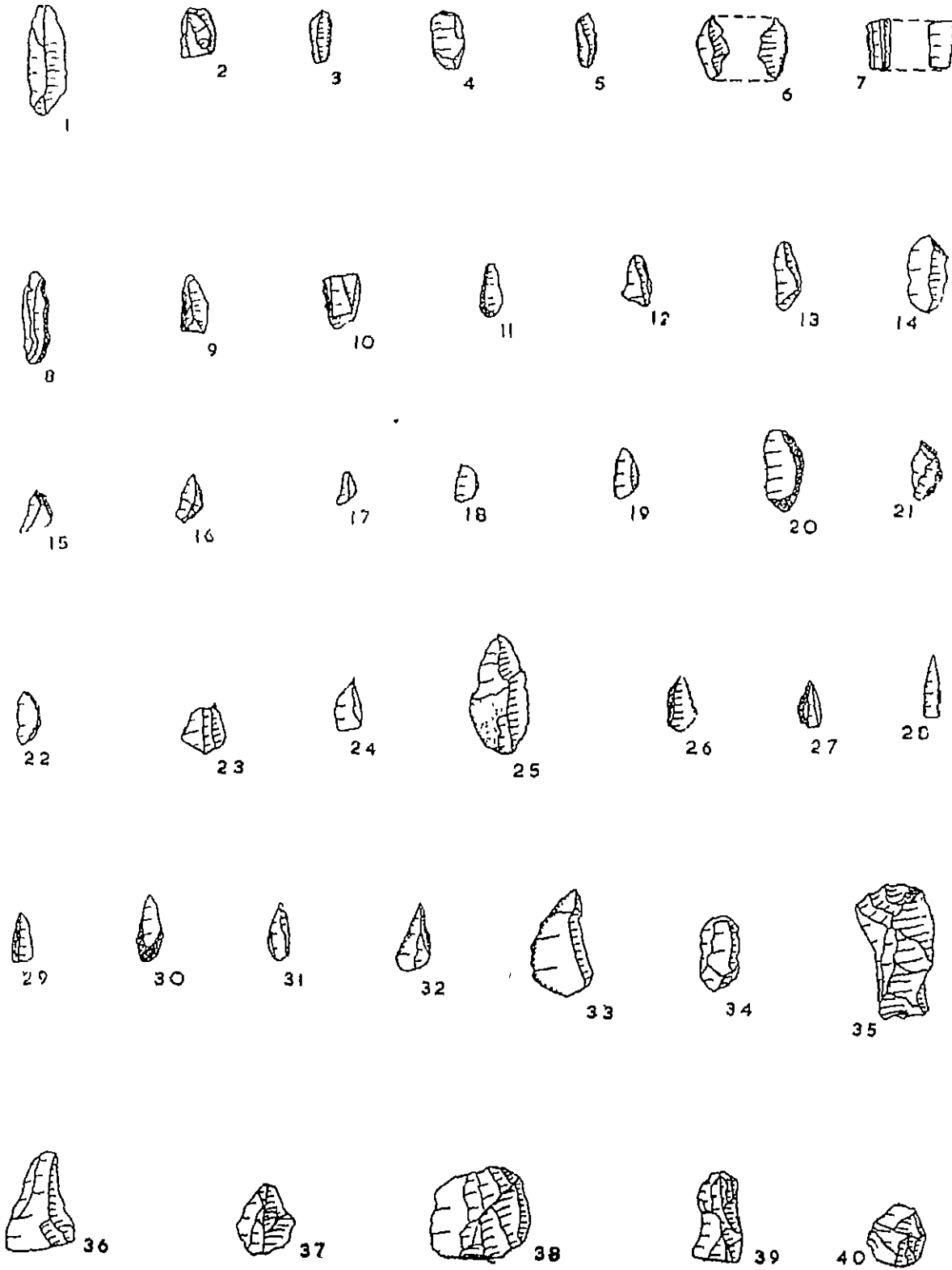
महदहा-उत्खनित लघु पाषाणोपकरण- 1-7 समानान्तर पृष्ठ ब्लेड, 8-12 भुथड़े पर्श्व ब्लेड 13- नोक 14, खाचेदार ब्लेड 15, समलम्ब चतुर्भुज, 16-18 त्रिभुज, 19-22 अर्ध चन्द्रिक, 23-24 छिद्रक, 25-32 प्वाइंट 35-40 स्क्रेपर

रेखाचित्र संख्या 14 - महदहा · लघु पाषाण उपकरण

से यह इंगित होता है कि सम्भवतः जगली घास के दानों को पीसकर भोज्य सामग्री के रूप मे उपयोग किया जाने लगा था। पुरापुष्पपराग विश्लेषण से हरे-भरे घास के मैदान के विषय में संकेत मिला है।

ये लोग आभूषणो का उपयोग ही नहीं करते थे अपितु उनका निर्माण भी स्थानीय रूप से करते थे। कुछ अर्द्ध निर्मित तथा निर्मित शृंग छल्ले मिले हैं जिनसे इन पर विशेष प्रकाश पड़ता है।

महदहा का तिथिक्रम पुरातात्विक साक्ष्यो के आधार पर ज्यामितीय चरण में रखा जा सकता है। जली हुई हड्डियो के नमूनो के विश्लेषण के आधार पर 'बीरबल साहनी इन्स्टीट्यूट' लखनऊ के तीन रेडियो कार्बन तिथियाँ निकाली हैं - ये अंसशोधित तथा 'अद्य-पूर्व' (Before Besent) में है। ये तिथियाँ 1410 ± 120, 2880 ± 250 तथा 3830 ± 130 हैं।[1]

दमदमा (26° 10' उत्तरी अक्षांश, 82°, 10' 36'' पूर्वी देशान्तर) :

दमदमा का मध्य गंगा घाटी के मध्य पाषाण काल के उत्खनित पुरास्थलो मे सबसे महत्वपूर्ण स्थान है क्योकि यह एक सुरक्षित पुरास्थल है और इसका उत्खनन अपेक्षाकृत विस्तार से किया गया है। महदहा से लगभग 5 किलोमीटर उत्तर-पश्चिम में प्रतापगढ़ जिले की पट्टी तहसील की बारीकलाँ नामक गांव के पास दमदमा का मध्य पाषाणिक पुरास्थल स्थित है। सई नदी की एक सहायक सरिता पीली नदी में मिलने वाले तम्बूरे नाले की दो धाराओ के संगम पर स्थित दमदमा पुरास्थल मध्य पाषाणिक सामग्री से परिपूर्ण लगभग 8.750 वर्ग मीटर के क्षेत्र मे फैला हुआ है। इस पुरास्थल की खोज सन् 1978 ई0 मे हुई थी। पूर्ण रूप से सुरक्षित होने के कारण इसको एक सुनियोजित योजना के अनुसार उत्खनन के लिए चुना गया, जिससे मध्य गंगा घाटी के मध्य पाषाण काल के लोगों के जीवन के विभिन्न पक्षों के विषय में सम्यक जानकारी प्राप्त की जा सके। सन् 1982-83 में 1986-87 ई0 तक दमदमा के उत्खनन का सचालन इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग के आर0 के0 वर्मा, वी0 डी0 मिश्र, जे0 एन0 पाण्डेय तथा जे0 एन0 पाल के द्वारा संयुक्त रूप से किया गया। पांच वर्ष तक हुए लगातार उत्खनन के फलस्वरूप मध्य गंगा घाटी की संस्कृति पर नवीन प्रकाश पड़ा है।

---

1. शर्मा, जी0 आर और मिश्रा, वी0 डी0 पाल और जे0 एन0, 1980, *एक्सकैवेशन एट महदहा*, इ0 वि0 वि0, इलाहाबाद

   पाल, जे0 एन0, 1992, *वरियल प्रैक्टिसेज एण्ड आर्कियोलॉजिक रिकवरी*, साथ में कनेडी के0 ए0 आर, लुकास, जे0 आर0, पास्टर, आर0 एफ0 जोस्टन, टी0 आई0, लोपेल, एन0 सी0 आदि

दमदमा को उत्खनन के लिए पूर्वी, मध्यवर्ती एवं पश्चिमी इन तीन क्षेत्रों में विभाजित किया गया है (रेखाचित्र संख्या 15)। इन तीनों क्षेत्रों से मध्य पाषाणिक पुरावशेष समान रूप से मिले हैं, किन्तु मानव शवाधान अभी तक पूर्वी क्षेत्र से नहीं मिले हैं। मानव शवाधान मध्यवर्ती तथा पश्चिमी क्षेत्रो से ही प्रकाश मे आये हैं। उत्खनन से उपलब्ध प्रमाणो से दमदमा का 1.50 मीटर मोटा सांस्कृतिक जमाव प्रकाश मे आया है जिसे 10 स्तरों मे विभाजित किया गया है। सबसे ऊपरी स्तर को छोड़कर शेष सभी स्तर मध्य पाषाण काल से सम्बन्धित है। ऊपरी स्तर मे विविध प्रकार के पुरावशेष आपस मे मिले हुए प्राप्त हुए हैं। मध्य पाषाण काल के सम्पूर्ण सांस्कृतिक जमाव को नव उपकालों में विभाजित किया गया है। प्रत्येक उपकाल से मध्य पाषाण काल के लोगों के रहने के उल्लेखनीय साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। इस सन्दर्भ मे मिट्टी के कई पर्त वाले लेप से युक्त तथा बिना लेप वाले गर्त चूल्हो, जली हुई मिट्टी के प्लास्टर युक्त फर्श, वन्य पशुओ की हड्डियां, लघु पाषाण उपकरण, सींग के बने हुए उपकरण एवं आभूषण और मानव शवाधानो आदि का विशेष रूप से उल्लेख किया जा सकता है। स्तरीकरण और पुरावशेषों की दृष्टि से सभी 9 स्तर अविच्छिन्नता द्योतित करते हैं। इस पुरास्थल पर सर्वप्रथम बसने के लिए आने वाले मध्य पाषाण काल के लोगों ने प्राकृतिक पीली गाद मिट्टी के ऊपर आवास बनाया। उन लोगों ने उसे पीली मिट्टी को ही खोदकर मृतको के लिए शवाधान बनाये तथा पशुओं का मांस भूनने के लिए गर्त चूल्हो का निर्माण किया।
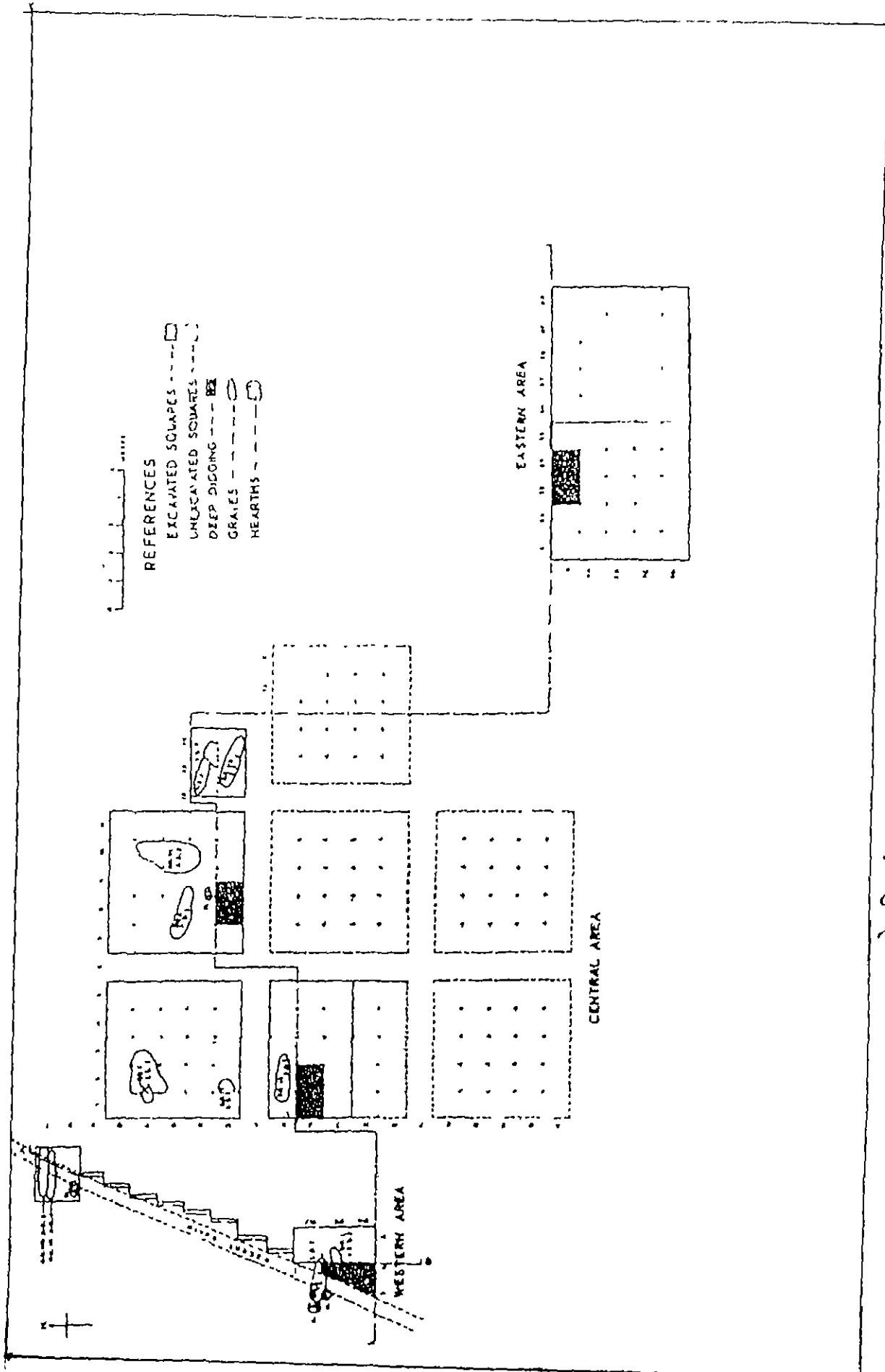
· रेखाचित्र संख्या 15 - दमदमा . साइट प्लान (वर्मा और अन्य 1985 के अनुसार)

तालिका 9

दमदमा के मानव शवाधान की तालिका

सांस्कृतिक उपकाल	शवाधान संख्या
प्रथम उपकाल	1 शवाधान
द्वितीय उपकाल	2 शवाधान
तृतीय उपकाल	3 शवाधान
चतुर्थ उपकाल	1 शवाधान
पचम उपकाल	2 शवाधान
षष्ठम उपकाल	3 शवाधान
सप्तम उपकाल	3 शवाधान
अष्टम उपकाल	13 शवाधान
नवम उपकाल	15 शवाधान
योग	**41 शवाधान**

लगातार पांच वर्षों तक दमदमा में किये गये उत्खनन के फलस्वरूप पश्चिमी तथा मध्यवर्ती क्षेत्रों से कुल मिलाकर 41 मानव शवाधान प्राप्त हुए हैं जो मध्य पाषाणिक शवाधान के विषय में प्रमाणिक जानकारी प्रदान करते हैं। पूर्वी क्षेत्र से अभी तक कोई शवाधान नहीं मिला है। स्तरीकरण के प्रमाण के आधार पर शवाधानो को 9 उपकालों में विभाजित किया जाता है।

इन शवाधानों में से 5 शवाधान (शवाधान संख्या VI, XVI, XX, XXX एवं XXXVI) युग्म शवाधान हैं (छायाचित्र संख्या 22) और एक शवाधान (संख्या XVIII) मे 3 मानव कंकाल एक साथ दफनाये गये हैं। शेष शवाधानों में एक-एक कंकाल मिले हैं। अधिकांश कंकाल पश्चिम-पूर्व दिशा में, पश्चिम में सिर करके दफनाये गये है जबकि कतिपय कंकालों के सिर पूर्व अथवा उत्तर या दक्षिण दिशा मे रखे हुए मिले हैं। अधिकांश मानव कंकालों को पीठ के बल सांगोपाग लिटाकर दफनाया गया था, लेकिन दो मानव कंकालों को पेट के बल और दो को पैर मोड़कर दफनाया गया था। सीगों के बने हुए बाण तथा आभूषण और पशुओं की हड्डियां अन्त्येष्टि सामग्री के रूप मे रखी गई थी। अधिकांश कंकाल वयस्क स्त्री-पुरुष के थे, जिनकी आयु का औसत 16-35 वर्ष के बीच आंका जा सकता है। बच्चों के कंकाल यहां से नहीं मिले हैं।

छायाचित्र संख्या 22 - दमदमा : युग्म शवाधान

दमदमा के उत्खनन से बहुसंख्यक लघु पाषाण उपकरण मिले हैं जिनमें से ब्लेड, फलक, क्रोड, माइक्रो ब्यूरिन के अतिरिक्त विभिन्न कार्यों मे उपयोग के प्रमाण से युक्त ब्लेड, पुनर्गढ़ित ब्लेड, समानान्तर एवं कुण्डित पार्श्व वाले ब्लेड, समद्वि बाहु त्रिभुज, समलम्ब चतुर्भुज, विभिन्न प्रकार की खुरचनियां, छिद्रक, चान्द्रिक आदि सम्मिलित हैं (रेखाचित्र संख्या 16, 17)। इन उपकरणों का निर्माण चाल्सेडनी, चर्ट, क्वार्टज, अगेट कार्नेलियन आदि माणिक्य कोटि के प्रस्तरो पर किया गया है। पाषाण उपकरणों के अतिरिक्त शृंग के उपकरण तथा आभूषण भी मिले है। इनमें वाणाग्र तथा मुद्रिकायें प्रमुख हैं। बलुआ पत्थर के सिल के टूटे हुए टुकड़े, लोढ़े, हथौड़े, निहाई आदि प्राप्त हुए हैं।

दमदमा के उत्खनन से प्रायः सभी स्तरों से वन्य पशुओ की हड्डियाँ मिली हैं। पशुओं के हड्डियो के प्रारम्भिक विश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ये गाय, बैल, भैंस, गैंडा, हाथी, भेड़-बकरी, चीतल, सांभर, बारहसिंघा, सुअर आदि जंगली पशुओं की हड्डियां हैं। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि लगभग 90% पशु हड्डियां जली हुई अथवा अधजली हैं जो यह घोषित करती हैं कि मध्य पाषाण काल के लोग पशुओं का मांस भून कर खाते थे। पशुओ के अतिरिक्त अनेक पक्षियों तथा मछली, कछुआ आदि की हड्डियां भी काफी बड़ी संख्या मे मिली हैं। वनस्पतियों के अवशेष (बेर की अधजली गुठलिया) भी यहां से प्राप्त हुए हैं जो उनकी भोज्य सामग्री के विषय मे संकेत प्रदान करते हैं।

इस प्रकार दमदमा के उत्खनन के फलस्वरूप मध्य गंगा घाटी की मध्य पाषाणिक सस्कृति पर सर्वथा नया प्रकाश पड़ा है। विविध प्रकार के मानव शवाधानो, लघु पाषाण उपकरणो, पशुओ के सीगो के बने हुए उपकरणो एवं आभूषणों, मिट्टी के प्लास्टर से युक्त आवास के फर्श, गर्त-चूल्हों, वन्य पशुओं की अस्थियां तथा वनस्पतियों के अवशेषों आदि के साक्ष्यों की दृष्टि से दमदमा का उत्खनन अत्यधिक महत्वपूर्ण कहा जा सकता है (छायाचित्र संख्या 23)।

दमदमा से दो कार्बन तिथियाँ उपलब्ध हुई हैं जो 8.640 ± 65, 8,365 ± 65 ई0 पू0 है।[1]

---

1 वर्मा, आर0 के0 मिश्रा, वी0 डी0, पाण्डेय, जे0 एन0 व पाल, जे0 एन0, 1985, ए प्रीलिमिनरी रिपोर्ट ऑन दि इक्सकैवेशन एट दमदमा, मैन एण्ड इनवायरमेण्ट वाल्यूम - 9, पृष्ठ 45-65

पाल, जे0 एन0 1988, मेसोलिथिक डबुल वरियल फ्राम रीमेन्ट एक्सकैवेशन एट दमदमा, *मैन एंड इन्वायरमेन्ट*, वाल्यूम 12, पृष्ठ 115-122
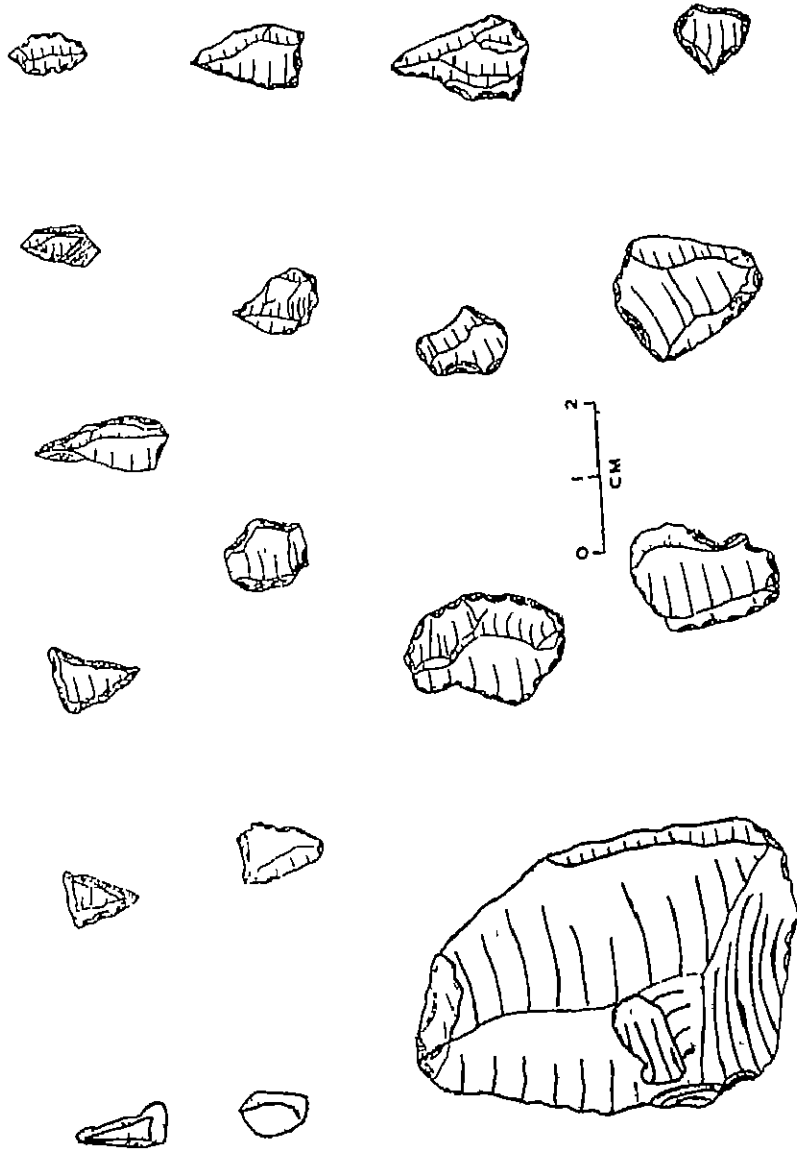
रेखाचित्र सख्या 16 - दमदमा : लघु पाषाण उपकरण
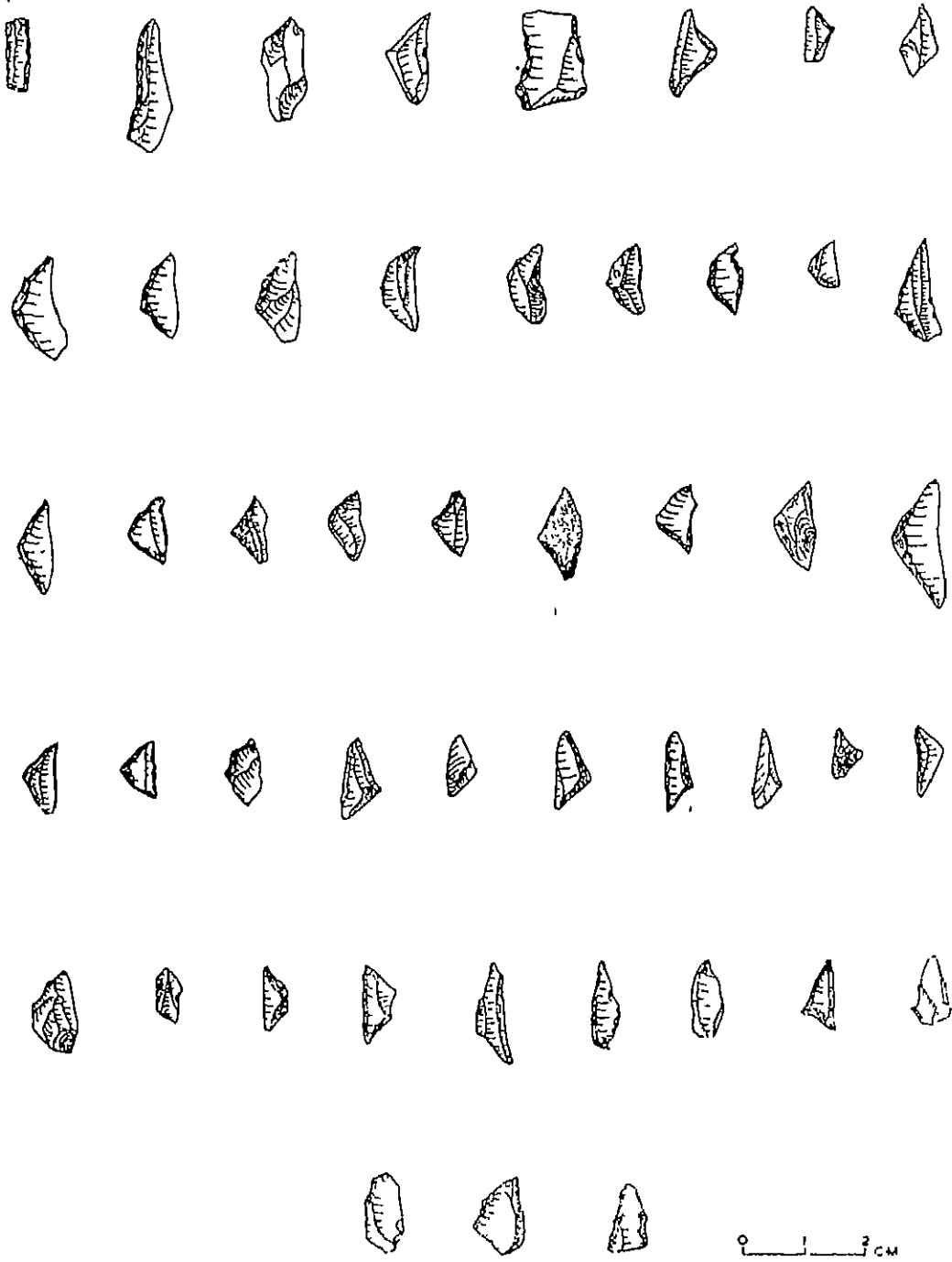
रेखाचित्र सख्या 17 - दमदमा . लघु पाषाण उपकरण

छिछला गर्त चूल्हा : दमदमा
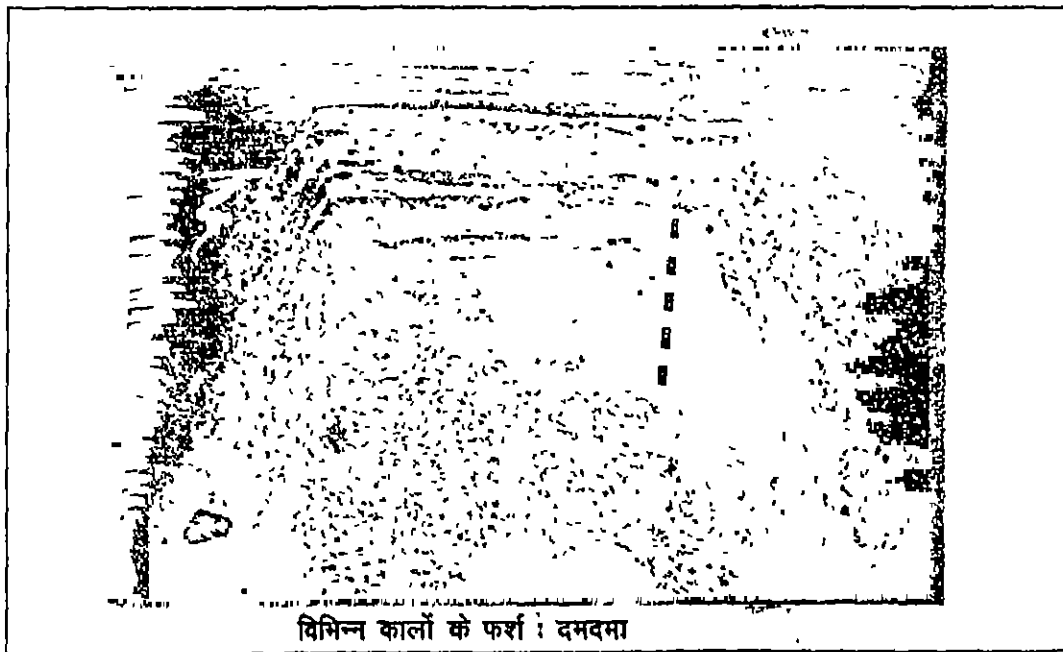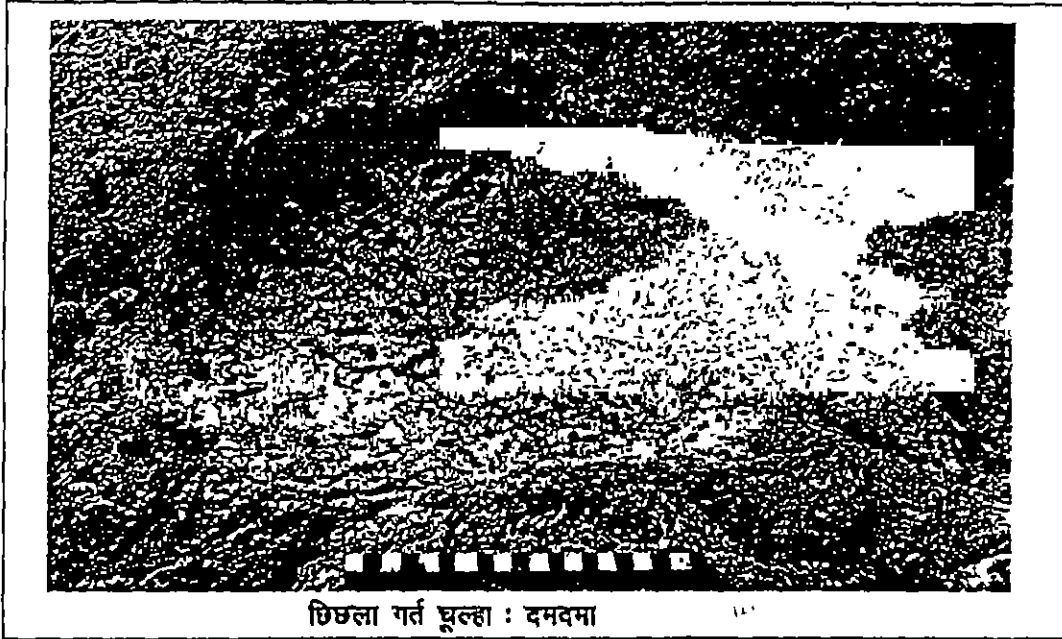
विभिन्न कालों के फर्श : दमदमा

छायाचित्र संख्या 23 - दमदमा : छिछला गर्त चूल्हा, विभिन्न कालों के फर्श

विन्ध्य क्षेत्र एवं मध्य गंगा घाटी की मध्य पाषाण कालीन संस्कृतियों के अन्तर्सम्बंधों पर प्रकाश

दोनो क्षेत्रो की मध्य पाषाणिक संस्कृति सामान्यतया शिकार, मत्स्यपालन एव गहन संचयन अर्थ व्यवस्था से संबधित है, जबकि नव पाषाणिक संस्कृति 'स्वालम्बी खाद्य उत्पादन अर्थव्यवस्था' से, वनस्पतियो एवं पशुओं का पालन नव पाषाणिक संस्कृति का एक मुख्य आधार है लेकिन शिकारी पशुपालक एवं खाद्य उत्पादक अर्थ व्यवस्थाओ की विभाजक रेखा बहुत स्पष्ट नहीं है।

आवास :

विन्ध्य क्षेत्र एवं मध्य गंगा मैदान के मध्य पाषाणिक संस्कृति संबंधी अधिवास स्थल प्रकाश मे आये है। आगे इन संस्कृतियों के कुछ पहलुओं पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

विन्ध्य क्षेत्र के उत्खनित मध्य पाषाणिक स्थलों में बघईखोर, मोरहना पहाड़, लेखहिया, चोपनी माण्डो, घघरिया, बघोर-2, मेढौली एवं बांकी मुख्य हैं, तथा गंगा मैदान मे सराय नाहर राय, महदहा एव दमदमा मुख्य हैं। इन स्थलों के उत्खनन से मध्य पाषाणिक लघु पाषाण उपकरणो के आकार एव तकनीकी विकास की विविध अवस्थाओं की जानकारी प्राप्त हुई हैं।

विन्ध्य क्षेत्र के मध्य पाषाणिक लोग शिलाश्रयो अथवा खुले आसमान मे 3 मीटर व्यास वाली छोटी झोपड़ियों वाले मकानों में रहते थे। ये झोपड़ियां खम्भों पर आधारित थी एवं एक दूसरे के पास स्थित थीं। इनकी फर्श चौरस बलुआ पत्थर के टुकड़ों से बनी थी। इन झोपड़ियो की दीवारे नरकट एव बास की पट्टियों से बनी थी। फर्श पर पत्थरों के कुछ गोलाकार ढेर भी हैं। जिनके सही स्वरूप के बारे मे अभी भी भ्रम है।

इस क्षेत्र मे उपलब्ध नृजातीय प्रमाणो के आधार पर यह कहना सम्भव है कि ये प्रस्तर रचनायें कुछ सामान रखने के उद्देश्य से बनायी गयी थी। चोपनी माण्डों में अन्तिम अवस्था के फर्श पर लघु पाषाण उपकरण, निहाई, हथौड़ा, गोल पत्थर, सिल-लोढ़ा आदि प्राप्त हुए हैं। स्पष्टतया ये झोपड़ियाँ मात्र निवास के लिए ही नहीं थी, बल्कि ये अन्य प्रकार के क्रिया-कलापों जैसे लघु पाषाण उपकरणों का निर्माण, भोजन पकाने आदि के लिये भी प्रयुक्त होती थी। मध्य पाषाणिक मानव वन्य आनाजों को एकत्र करते थे, जो केवल पत्थर चक्की के ऊपरी एवं निचले पत्थरों से ही नही प्रमाणित

होता, बल्कि जले हुए मिट्टी के टुकड़ों मे बंद वन्य धान की भूसी से भी प्रमाणित होता है। दो झोपड़ियो के मध्य खाली स्थान में गड्ढे वाले चूल्हे बनाये जाते थे, जो सामुदायिक चूल्हे का कार्य करते थे।

मध्य गंगा घाटी मे सम्भवतः महदहा पर निवास शरद एवं ग्रीष्म ऋतु में किया गया होगा, वर्षा काल में निवास अन्यत्र रहा होगा। इसी समय सराय नाहर राय पर भी आबादी बसी होगी। किसी स्थान पर पूरक मानसून स्थल स्थित था या थे? इस प्रश्न का उत्तर हिरण, बकरी, भेड, गाय, सुअर जैसे जानवरो के वर्षा ऋतु के दौरान घूमने के स्थान के क्रम में अच्छी तरह से दिया जा सकता है। मध्य गंगा घाटी के प्रातिनूतन कालीन भू-आकृति विज्ञान के विषय में जानकारी अल्प है।

मिट्टी के बर्तन :

विन्ध्य क्षेत्र की मध्य पाषाणिक संस्कृति की अन्तिम अवस्था में मृद्भाण्ड कला उद्योग का शुभारम्भ हुआ, जिसका प्रमाण मोरहना पहाड़, बघईखोर, लेखहिया चोपनी-माण्डो एवं घघरिया स्थलो पर की गयी उत्खनन से मिलता है। यहां पर पायी गयी मृद्भाण्डो में साधारण किनारो वाले तसले एवं छोटे कलश मुख्य हैं। चूँकि ये पात्र छोटे हैं अतः इनका प्रयोग खाने या पीने के लिए होता रहा होगा, भण्डारण के लिए नहीं।[1] विभिन्न क्षेत्रों से प्राप्त मृद्भाण्ड कला इस प्रकार है -

मोरहना पहाड़ की मृद्भाण्ड कला :

यहां की मृद्भाण्ड निर्माण कला सामान्यतः भद्दी और हस्त निर्मित है। बर्तनों को बनाने में प्रयोग की गयी मिट्टी अच्छी किस्म की नही थी। सिल्का व बालू के कण के साथ-साथ उसमें कैल्शियम लेटेराइट के रवेदार मिट्टी यह इगित करते हैं कि इनको जलोढ़ मिट्टी में मिला कर मृद्भाण्ड बनाये गये थे। कभी-कभी कुछ बर्तनों मे घास-फूस मिले दिखायी देते हैं। बिना छनी मिट्टी कम ताप पर पकाए जाने के कारण बर्तन मुलायम या भुर-भुरे हैं कि छूने मात्र से रंग छूटता है।

यद्यपि मृद्भाण्डों को देखकर ऐसा लगता है कि सभी बर्तन एक जैसे ताप पर पकाए गये है क्योंकि ऐसे बर्तनों के केन्द्र व सतह एक समान रंग के हैं। कुछ बर्तनों में घास फूस मिले होने से

---

1 पाल, जे0 एन0, 2000, *मेसोलिथिक एण्ड नियोलिथिक सोसाइटिज आफ दि विन्ध्याज एण्ड दि मिडिल गंगा प्लेन*, वी0 डी0 पाल, जे0 एन0, 2000, *सोशल हिस्ट्री एण्ड सोशल थ्योरी*, पृष्ठ 7-8

उनका रंग काला चमकीला है। सतही रंग के आधार पर मृद्‌भाण्डों को दो भागों मे बांटा जाता है।

1. भद्दे लाल रंग

2. खाकी या भूरे चमकदार पात्र

कुछ टूटे बर्तनों में अन्दर की ओर भूरे चमकदार तथा सतह पर भद्दे लाल, दोनों तरह के पात्र साथ-साथ मिलते हैं। बर्तनों पर अलंकरण मिलता है।

बघईखोर की मृद्‌भाण्ड कला :

कुछ विशेषताओं को छोड़कर, मोरहना पहाड़ व बघईखोर की मृद्‌भाण्ड कला एक समान है। बघईखोर शिलाश्रय की मृद्‌भाण्ड कला तीन स्तरों (3, 2, 2ए, 1) में पायी गयी, जो नीचे से ऊपर की ओर क्रमबद्ध है। यहां के विभिन्न स्तरों से प्राप्त मृद्‌भाण्डों की रचना और उसकी बनावट में कोई अन्तर नहीं है। स्तर 2 मे टूटे मृद्‌भाण्ड, कुल अवशेषो के 4% हैं। पात्रों की टेढ़ी-मेढ़ी बनावट, घेरे की भिन्नता और बहुत साधारण आकार यह प्रमाणित करता है कि यहां मृद्‌भाण्ड कला हस्त निर्मित है। लेकिन स्तर 1 में उपयुक्त मृद्‌भाण्ड के अतिरिक्त ऊपर के स्तर से चाक पर बने मृद्‌भाण्ड प्राप्त हुए हैं। बघईखोर की मृद्‌भाण्ड कला भद्दे लाल और काले चमकदार हैं। मृद्‌भाण्ड रचना माध्यम है।

स्तर 3 से प्राप्त मृद्‌भाण्ड को अलंकरण के आधार पर दो भागो में बांटा गया है -

1. अनअलकृत।

2. अलंकृत।

बघहीखोर के अलंकृत मृद्‌भाण्ड बहुत रुचिकर हैं। यहां के ऊपरी स्तर से प्राप्त अलकृत पात्र चोपनी माण्डो की मृद्‌भाण्ड कला के समान हैं। इस प्रकार बघहीखोर की मृद्‌भाण्ड कला के अलंकरण प्रतिरूप के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि उसका सम्बन्ध नव पाषाणिक स्थल महगड़ा तथा कोलडिहवा के मृद्‌भाण्ड कला से एक ओर तो दूसरी ओर मध्य पाषाणिक स्थल चोपनी माण्डों के मृद्‌भाण्ड कला से मिलती-जुलती है।

चोपनी माण्डो के तीसरे उपकाल (विकसित मध्य पाषाण अथवा आद्य नव पाषाण काल) से हस्त निर्मित मृद्‌भाण्ड मिले हैं जो अत्यन्त भंगुर हैं बर्तनों की मिट्टी भली-भाँति गुंथी हुई नही थी। मिट्टी

चोपनी माण्डों की मृद्भाण्ड कला :

तालिका 10

चोपनी माण्डों की स्तरवार मृद्भाण्डों का विवरण उपकाल तृतीय

स्तर	लाल पात्र			खाकी पात्र			चित्रित पात्रों के टूटे भाग			कुल	%
	आकारयुक्त	आकार रहित	कुल	आकारयुक्त	आकार रहित	कुल	आकार युक्त	आकार रहित	कुल		
1	47	115	158	68	216	281	6	21	27	466	42.831
2	51	78	129	68	153	218	5	20	25	372	34 191
2ए	21	49	70	18	98	116		2	2	188	17 279
3	5	28	33	5	7	12		17	17	62	5 699
कुल			390			627			71	1088	100%
%			35.845			57.629			6.527		

मे बालू तथा कभी-कभी धान की भूसी और पुआर के छोटे-छोटे टुकड़े सालन के रूप में प्रयुक्त हुए है। पात्र बहुत अच्छी तरह से पके नही हैं। छोटे-छोटे कटोरे तथा कलश, तश्तरी प्रमुख पात्र प्रकार हैं। बर्तनों मे स्लिप चिपकाने तथा रंगने के साक्ष्य मिलते हैं। सम्पूर्ण मृद्भाण्डों को दो वर्गों में बाँटा गया है -

1. लाल मृद्भाण्ड
2. खाकी या धूसर मृद्भाण्ड

दोनों ही प्रकार के पात्रो पर ठप्पे लगाकर डिजाइने बनाई गई हैं। बर्तनों के बाहरी सतह पर फूल-पत्ती तथा शंख की छाप मिलती है।

चोपनी माण्डो की मध्य पाषाणि मृद्भाण्डो के सतह पर ठप्पों द्वारा डिजाइन बनाने की कला केवल भारत मे ही नहीं, बल्कि विश्व के मध्य पाषाणिक संस्कृति में अनोखी है।

लेखहिया की मृद्भाण्ड कला :

तालिका 11

लेखहिया के पात्र खण्डों का स्तरवार विवरण

स्तरों की संख्या	पात्रों की संख्या	पात्रों का प्रतिशत
1	192	40.252%
2	111	23 270%
3	89	18.658%
4	85	17.820%
कुल	**477**	**100.00%**

लेखहिया के चारों स्तरों से मृद्भाण्ड प्राप्त होते हैं पात्रों की संख्या क्रमशः बढ़ती गई है। लेखहिया मे भी मोरहना पहाड़ तथा बघहीखोर की तरह, बर्तनों के निर्माण में प्रयुक्त मिट्टी अच्छी तरह से गुथी नही दिखायी पड़ती है और उसमे कैल्शियम तथा लेटेराइट के रवेदार कण, सिल्का, बालू के कण, जलोढ़ मिट्टी के साथ मिलाकर तथा साथ ही घास-फूस मिला कर बर्तन का निर्माण किया जाता था। मृद्भाण्ड हस्त निर्मित हैं और बर्तनों के आकार अनिश्चित व टेढ़े-मेढ़े हैं।

लेखहिया के पात्रों में अलंकरण मिलते हैं। उनमें से कुछ टूटे बर्तनो पर डोरी छाप अलंकरण हैं। कुछ पात्रो की बाहरी सतह खुरदुरे हैं। पात्रो में अलंकरण अभिप्राय क्षैतिज, तिर्यक, वर्गाकार (धन) आकार की रेखाएं बनी हैं।

निम्न तापक्रम पर बर्तनो को पकाने के कारण उनका रंग गेरुए लाल, भूरा चमकदार या खाकी रंग के तथा सतह लाल रंग की है। लेखहिया की मृद्भाण्डों को उसके सतही रंग के आधार पर दो भागो में बांटा गया है -

1. लाल मृद्भाण्ड
2. भूरा चमकदार या खाकी मृद्भाण्ड

दोनों प्रकार के पात्रो पर साधारण और डोरी छाप अलंकरण हैं। डोरी छाप पात्र 63 टूटे बर्तनों को प्रदर्शित करते हैं। सभी स्तरो से डोरी छाप पात्र प्राप्त हुए हैं -

तालिका 12

लेखहिया के डोरी छाप पात्र :

स्तरों की संख्या	पात्र खण्डों की संख्या	पात्र खण्डों का प्रतिशत %
1	8	14.287%
2	11	17.460%
3	22	34.920%
4	21	33.333%
कुल	**63**	**100**

लेखहिया मे माध्यम और छोटे आकार के बर्तनो मे सबसे अधिक संख्या छिछले और गहरे कटोरों की है।

घघरिया के मृद्भाण्ड कला :

घघरिया शिलाश्रय-1 के स्तर 2 तथा उपकाल 2 की विशेषताओं के आधार पर मृद्भाण्ड, हस्तनिर्मित प्रतीत होती है।

अन्तिम दो पात्रों के बारे में ब्रान्ट (1983 : 1210) ने सन्देह व्यक्त किया है। शायद यहा यह सम्भावना की गयी है कि यह शिलाश्रय नव पाषाण काल के पूर्व का है लेकिन पद्धति, प्रकार, पकाने के आधार पर घघरिया शिलाश्रय की मृद्भाण्ड कला विन्ध्य क्षेत्र के अन्य उत्खनित स्थलों की मध्य पाषाणिक मृद्भाण्ड कला के समान प्रतीत होती है। यहां यह भी संभावना व्यक्त की जाती है कि

तालिका 13

घघरिया शिलाश्रय के मृद्भाण्ड कला का स्तरवार विवरण

स्तर	लाल पात्र			खाकी पात्र			डोरीछाप पात्र			भूरे चमकदार पात्र			कुल प्रतिशत %
	आकार युक्त	आकार रहित	कुल	आकार युक्त	आकार रहित	कुल	आकार युक्त	आकार रहित	कुल	आकार युक्त	आकार रहित	कुल	
1	2	23	25	6	15	21	2	4	6	5	19	24	76/37.255
2	6	51	57	3	41	44	1	5	6	2	19	21	28/62 745
	कुल % 82/40 196%			कुल % 55/31 863%			कुल % 12/5.882%			कुल % 45/22.59%			204/100%

बेलन घाटी के समान, यहा के मध्य पाषाणिक लोगो ने स्वयं अपनी मृद्‌भाण्ड कला विकसित की (रेखाचित्र संख्या 18)।[1]

विन्ध्य क्षेत्र एवं मध्य गंगा घाटी के मध्य पाषाणिक शवाधान :

विन्ध्य क्षेत्र एवं मध्य गंगा घाटी के कुछ मध्य पाषाणिक स्थलों पर विस्तृत मानव शवाधान भी पाये गये हैं, जिससे मध्य पाषाणिक लोगो की सामाजिक संरचना के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त की जा सकती है। दमदमा, महदहा और सराय नाहर राय आदि स्थलों पर आवास और समाधियां पास ही पास मिले हैं। मध्य पाषाणिक मानव अपने मृतकों के लिए उसी क्षेत्र में समाधियां बनाते थे, जिस क्षेत्र में वे रहते थे, तथा दैनिक जीवन के विविध क्रिया कलाप करते थे। विन्ध्य क्षेत्र में ऐसी समाधियां शिलाश्रयों में पायी जाती है।[2]

मध्य गंगा घाटी के सराय नाहर राय, महदहा एवं दमदमा नामक मध्य पाषाणिक पुरास्थलो से प्राप्त शवाधान का तुलनात्मक अध्ययन से कुछ मनोरंजक तथ्य प्राप्त हुए हैं। इन तीनों स्थलों से विस्तृत कब्र मिले हैं। सराय नाहर राय, महदहा से कब्रें छिछले और आयताकार अलग-अलग प्राप्त किये गये हैं किन्तु दोनो जगहों की कब्रें एक जैसी हैं। सराय नाहर राय मे एक साथ चार मानव कंकाल मिले, जिसमें से दो पुरुष तथा दो स्त्रियों के हैं, जबकि महदहा में दो युग्म शवाधान के प्रमाण प्राप्त हुए हैं। एक समाधि मे नारी बाये और पुरुष दाये रखकर दफनाये गये हैं तथा दूसरी मे पुरुष नीचे और नारी उसके ठीक ऊपर है और दमदमा से 5 शवाधान (शवाधान संख्या 6, 16, 20, 30 एवं 36) युग्म शवाधान हैं और एक शवाधान मे 3 मानव कंकाल एक साथ दफनाये गये हैं। सराय नाहर राय में पाये गये अस्थि कंकालों से ज्ञात होता है कि उनकी उम्र 16 से 30 वर्ष या इससे अधिक, जबकि मदहदा में पाये गये अस्थि ककाल से ज्ञात होता है कि उनकी उम्र 17 से 25 वर्ष तथा एक जगह एक 10 वर्ष तथा दूसरा 40 वर्ष से अधिक का मिला है और दमदमा में अधिकांश ककाल वयस्क स्त्री-पुरुष के थे, जिनकी आयु का औसत 16-35 वर्ष के बीच आंका जा सकता है। बच्चे के कंकाल यहां से नहीं मिले हैं जबकि महदहा से बच्चों के कंकाल प्राप्त हुए हैं। और लगभग 50 वर्ष की एक वृद्धा का कंकाल प्राप्त हुआ है।

---

1. पाल, जे0 एन0, 1986, *आर्कियोलॉजी ऑफ सदर्न उत्तर प्रदेश* पृष्ठ 76-84
2. पाल, जे0 एन0, 2000, मेसोलिथिक एण्ड नियोलिथिक सोसाइटीज आफ दि विन्ध्याज एण्ड दि मिडिल गंगा प्लेन, मिश्रा, बी0 डी0 एण्ड पाल, जे0 एन0 2000 *सोशल हिस्ट्री एण्ड सोशल थ्योरी*, पृष्ठ 9
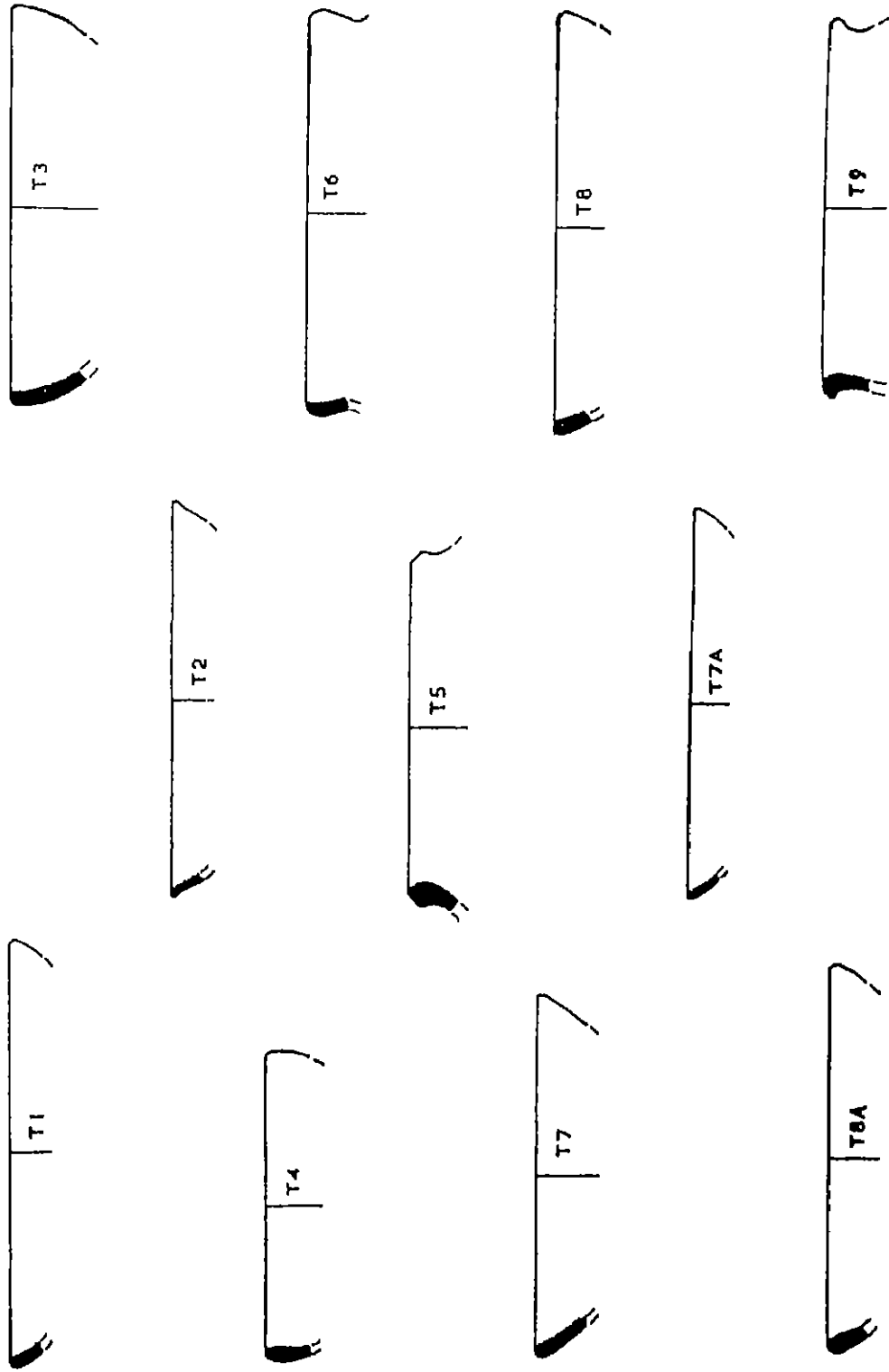
रेखाचित्र सख्या 18 - घघरिया शिलाश्रय : मृद्भाण्ड

उपर्युक्त तीनों स्थलों के मध्य पाषाणिक मानव सामान्यतः 1.80 मीटर लम्बे थे, हाथ-पैर के हड्डियो के अस्थिकरण, कपाल की संधि रेखाओं के विलयन के आधार पर वे लम्बे, हृष्ट-पुष्ट तथा सुगठित शरीर वाले मानव थे।

सराय नाहर राय, महदहा तथा दमदमा में समाधियों मे कंकालों को पश्चिम-पूर्व दिशा मे दफनाए हुए मिले हैं जिसके सिर पश्चिम दिशा की ओर थे। जबकि महदहा के दो मे भिन्नता थी। एक कंकाल पूर्व-पश्चिम तथा दूसरा पूर्व-पूर्व दक्षिण से पश्चिम-पश्चिम उत्तर की ओर सिर करके दफनाया गया था।

सराय नाहर राय के कब्रों मे शवों के हाथ भिन्न-भिन्न मुद्राओं में पाये गये हैं। प्रायः सभी कंकालों का एक हाथ समानान्तर और दूसरा (पुरुषों का दाहिना और स्त्रियों का बायां) हाथ पेट पर रखकर दफनाने की परम्परा थी और महदहा के समाधियों में मृतकों के दोनों हाथ प्रायः शरीर के समानान्तर फैलाकर रखे गये हैं लेकिन कुछ मृतकों का एक हाथ कटि के नीचे अथवा जांघों के बीच में रखा हुआ भी मिला है। अधिकतर मृतकों के कपाल बायीं ओर झुके हुए हैं। नं0 1 के सम्बन्ध में हाथ सीने पर पाये गये है। दमदमा में मानव कंकालों को पेट के बल और दो को पैर मोड़ कर दफनाया गया था।

सराय नाहर राय के किसी भी कब्र में गहने नहीं मिले हैं। बल्कि यहां के कब्रों में लघु पाषाण उपकरण, जानवरों की हड्डियाँ तथा घोंघे आदि मिले हैं। महदहा के समाधियो के कंकाल पुरुष अपने कान मे कुण्डल धारण किये हुए है और गले में हार। एक दूसरी कब्र में भी पुरुष के गले में हार उपलब्ध हुए हैं। उल्लेखनीय है एक भी नारी आभूषण नहीं पहने है। लगता है आभूषण से अपने को सुसज्जित करने की परम्परा पुरुष तक ही सीमित थी। प्रागैतिहासिक भारत में आभूषण के प्रयोग का यह प्राचीनतम् प्रमाण है। ये आभूषण छिद्रयुक्त गोलाकार हड्डियों को प्रायः बारहसिंघे की सींग के निचले भाग को काट कर बनाये गये हैं। उत्खनन में कई आभूषण निर्माण की विभिन्न अवस्थाओं मे प्राप्त हुए हैं। जिनसे इनकी निर्माण प्रक्रिया पर प्रकाश पड़ता है और ये आभूषण कुछ कब्रों में ही मिले हैं, अतः यह सम्भव है कि ये लोग अपने जीवन काल में अपने समुदाय में विशिष्ट स्तर के थे। इन कब्रों में लघु पाषण उपकरण, अस्थि उपकरण, अस्थि आभूषण एव जानवरों की अस्थियाँ प्राप्त की गयी हैं जो मृतक को दिये गये चढ़ावा का प्रमाण है। मध्य पाषाणिक युग में भी मृत्यु के

पश्चात जीवन की सकल्पना का प्रचलन माना जा सकता है। दमदमा के शवाधनो मे भी अन्त्येष्टि सामग्री के रूप में सींगो के बने हुए बाण, आभूषण तथा पशुओं की हड्डियाँ रखी गयी थी।

रोग निदान के विषय में देखा जाये तो (सराय नाहर राय, महदहा) दोनो जगहों पर जिसमे सराय नाहर राय मे तीन असाधारण आकृति के कंकाल पाये गये हैं जिनके स्कन्धों मे छिद्र पाये गये और उनके बाये पैर के अंगूठे कटे मिले, इसी तरह महदहा मे पाये गये कंकाल के बाये स्कन्ध मे छिद्र थे।

तुलनात्मक अध्ययन मे गंगा घाटी के महदहा के मध्य पाषाणिक शवाधान तथा विन्ध्य क्षेत्र के लेखहिया और बघहीखोर शिलाश्रय के मध्य पाषाणिक शवाधान पुरातात्विक एवं मानव शास्त्र के लिए रुचिकर हैं। दोनों क्षेत्रों में मृतको को आवासीय क्षेत्रों में दफन किया जाता था। विन्ध्य क्षेत्र में मध्य पाषाणिक संस्कृति के लोग खुले आसमान में, या घास-फूस की झोपड़ियो में निवास करते थे। शवाधानो से जो प्रमाण प्राप्त हुए हैं उससे प्रतीत होता है कि आवास स्थल एकाकी तथा सीमाबद्ध होते थे। विन्ध्य क्षेत्र के शवाधान महदहा शवाधान से अधिक विस्तृत थे। यहां लेखहिया से सत्रह मानव कंकाल मिले, तथा वहां पर प्रमाण के तौर पर केवल एक ही निश्चित स्थान पर शवाधान केन्द्र है। महदहा तथा विन्ध्य क्षेत्र के कब्रों में पश्चिम की ओर सिर तथा पूर्व दिशा मे पैर करके दफनाया हुआ मिला है। इसके अपवाद भी हैं महदहा में दिक्-स्थापना पूर्व-पश्चिम मे है।

विन्ध्य क्षेत्र मे जो कंकाल मिले है उसमे मृतक पुरुष और स्त्री के समाधियो को पूर्ण रूप से ढँका जाता था। बघहीखोर में एक कंकाल मिला जो एक स्त्री का था। लेखहिया मे तेरह मानव कंकाल का लिंग अनुमान के अनुसार 10 पुरुष के और 3 स्त्रियों के हैं।

साक्ष्यों से प्रतीत होता है कि विन्ध्य क्षेत्र के मध्य पाषाणिक लोगों की मृत्यु कम उम्र मे हो जाती थी। बघहीखोर शिलाश्रय से 20-21 वर्ष की एक युवती का कंकाल मिला है। इसी प्रकार लेखहिया मे 12 कंकालो की उम्र आंकी गयी है उसमें से 10 युवक 20 वर्ष से अधिक उम्र के तथा दो तरुण अवस्था के थे।

महदहा के मध्य पाषाणिक मानव विन्ध्य क्षेत्र के मानव की तुलना में अधिक लम्बे, सुगठित शरीर वाले थे। महदहा के सबसे लम्बे मानव की लम्बाई 1.80 मीटर, जबकि लेखहिया के मानव

की लम्बाई 1 75 मीटर थी। इस तरह दोनो क्षेत्रों मे पाये गये कंकालों के मध्य विरोधाभाष है। लेखहिया तथा बघहीखोर के कंकाल चमकदार तथा मुलायम है जबकि महदहा के सख्त है। वास्तव मे यह भिन्नता इसलिए है कि गंगा घाटी में अच्छे भोजन की उपलब्धता तथा जातीय भिन्नता थी।[1]

दमदमा, महदहा और सराय नाहर राय आदि स्थलो पर आवास और समाधियाँ पास ही पास मिले है जहां पर लोग निवास करते थे वहीं पर अपने मृतकों के लिए समाधियाँ भी बनाते थे। महदहा में गर्त चूल्हे सराय नाहर राय की तरह गोल अथवा अण्डाकार हैं लेकिन कभी-कभी इन्हें गीली मिट्टी से लीपा जाता था। मिट्टी का यह लेप भी पक गया है। सम्भवतः लेपयुक्त गर्त चूल्हो में मांस पिण्ड रखकर उन पर घास-फूस रख दिया जाता था और मिट्टी के टुकड़ों से ढँककर आग लगा दी जाती थी। यही कारण है कि इन चूल्हो मे जली हड्डियां और राख के अतिरिक्त जली मिट्टी के टुकड़े भी प्राप्त होते हैं। आवास स्थल और वध क्षेत्र से लगे हुये झील मे जानवरों की हड्डियां, लघु पाषाण उपकरण प्राप्त हुए हैं।

महदहा के वध क्षेत्र और झील से जिन जानवरों की हड्डियां मिली हैं उनमें बैल, जंगली भैंस, हिरण, बारहसिघा, सुअर, दरियाई घोड़ा, गैंडा, हाथी आदि का उल्लेख किया जा सकता है। ये सब जानवर जंगली है। पशुपालन का कोई प्रमाण नहीं मिलता है।

शैलचित्रों तथा उत्खननों से प्राप्त हड्डियो के परीक्षण से ज्ञात होता है कि ये लोग गैडे, भैंसे, सुअर विविध प्रकार के हिरण आदि का शिकार करते थे। शिकार के बाद मांस अपने आवास पर लाकर आग में भून कर खाते थे। गर्त चूल्हों में पशुओं की अधजली हड्डियाँ मिली हैं। इनके अलावा चिड़ियाँ तथा जलचरो मे मछली, केकड़े, घोघें आदि का भी सेवन ये लोग करते थे। ये लोग खाद्यान्नों को भी एकत्रित करते थे, जिसका प्रमाण चोपनी माण्डों तथा दमदमा मे प्लास्टर किए हुए छोटे गर्त से मिलता है। इस समय पशुपालन का प्रारम्भ नही हुआ था। पशुपालन का प्रमाण केवल आदम गढ़ शिलाश्रय के उत्खनन से ही मिले हैं।[2]

---

1 शर्मा, जी0 आर0, मिश्रा, वी0 डी0, मण्डल, डी0 मिश्रा, बी0 बी0 एण्ड जे0 एन0 पाल, 1980, *बिगनिंग ऑफ एग्रीकल्चर*, पृष्ठ 112-114

2. वर्मा, आर0 के0 और नीरा वर्मा, 2001, *पुरातत्व अनुशीलन*, पृष्ठ 99

उपकरण :

मोरहना पहाड़ तथा बघहीखोर दोनों स्थलो पर निम्नतर स्तर से अज्यामितिक उपकरण मिले, जो मृद्भाण्डो से सम्बन्धित नहीं थे। उसके ऊपर के स्तर से ज्यामितिक उपकरण मृद्भाण्डो के साथ मिले थे। मृद्भाण्ड हस्तनिर्मित प्रतीत होते है। अन्तिम स्तर से प्राप्त उपकरण दूसरे स्तर के उपकरणों के ही समान थे, किन्तु आकार मे अपेक्षाकृत ये बहुत छोटे हो जाते हैं। मोरहना पहाड़ तथा बघहीखोर के उत्खननों के साक्ष्यों को लेखहिया के उत्खनन ने पुष्ट किया। लेखहिया के उत्खनन से इस पर भी प्रकाश पड़ा कि मृद्भाण्ड कला के विकास के पहले ही ज्यामितिक उपकरणों का विकास हो चुका था।[1]

लेखहिया के नौ स्तरों में से आठ स्तरो से लघु पाषाण उपकरण मिले हैं, जिन्हें ज्यामितीय उपकरणो के प्रारूप एवं तकनीकी के आधार पर चार अवस्थाओं मे विभाजित किया गया, जो निम्न हैं -

पहली अवस्था के लघुपाषाण उपकरण अपेक्षाकृत बड़े आकार के हैं। दूसरी अवस्था के उपकरण अज्यामितीय प्रकार के हैं क्योंकि इस अवस्था के उपकरणो में त्रिभुज एवं समलम्ब चतुर्भुज आदि ज्यामितीय उपकरणों का अभाव है। तीसरी अवस्था को ज्यामितीय लघु पाषाण, उपकरण उपकाल की संज्ञा दी गई है। इस काल में अन्य मध्य पाषाणिक उपकरणों के साथ त्रिभुज एवं समलम्ब चतुर्भुज उपकरण भी मिले हैं। चौथी अवस्था में ज्यामितीक प्रकारों सहित बहुत छोटे लघु पाषाण उपकरण प्राप्त हुए हैं। इन उपकरणों के निर्माण में चर्ट, चाल्सेडनी आदि पत्थरों का उपयोग किया गया है।

महदहा से लघु पाषाण उपकरण सराय नाहर राय की अपेक्षा सख्या में कम हैं। इसी कमी को पूरा करने के लिए सम्भवतः हड्डियों के उपकरण बनाये गये। हड्डी के उपकरणों में वाणाग्र, नोक, खुरचनी, आरी, रूखानी आदि प्रमुख हैं। हड्डियों के बने वाणाग्रों का भारत में प्राचीनतम् प्रमाण महदहा से ही प्राप्त हुए हैं। बलुआ पत्थर पर बने सिल-लोढ़े, हथगोले आदि भी महदहा से अत्यधिक संख्या में उपलब्ध हुए है।

1 वर्मा, आर० के०, 2001, *भारतीय प्रागैतिहासिक*, पृष्ठ 112

दमदमा और महदहा के लघु पाषाण उपकरण भी सराय नाहर राय की ही तरह चर्ट, चाल्सेडनी, कार्नेलियन, अगेट और जैस्पर पत्थरों पर बने हैं। उपकरण प्रकारों में समानान्तर बाहु ब्लेड, भूथड़े ब्लेड, नोक, खुरचनी, तक्षणी, त्रिभुज, समलम्ब चतुर्भुज सम्मिलित हैं। सराय नाहर राय से समलम्ब चतुर्भुज नहीं मिले हैं। विन्ध्य क्षेत्र मे लेखहिया और चोपनी माण्डों के उत्खनन से इस बात के प्रमाण मिले है कि समलम्ब चतुर्भुज का ज्ञान मनुष्य को त्रिभुज के बाद हुआ। इस आधार पर कहा जा सकता है कि महदहा की मध्य पाषाणिक संस्कृति कालक्रम मे सराय नाहर राय के बाद की है।

विन्ध्य क्षेत्र मे, जहां गगा घाटी मे मध्य पाषाणिक संस्कृति के लोग पत्थर पिण्ड लेकर जीविका की तलाश मे आये, लोग पहाड़ की गुफाओं अथवा खुले स्थलों पर रहते थे। वहा ये लोग शिलाश्रयो की दीवारों और छतों पर तत्कालीन पशुओ के चित्र, आखेट दृश्य, धनुष-बाण धारण किये मनुष्यो तथा नृत्य करते हुए पुरुष महिलाओं को बनाते थे। जिन रंगों से ये चित्र बनाये गये हैं उनके प्रमाण गेरू पिण्डों के रूप में शिलाश्रयों के उत्खनन से प्राप्त हुए है। इस संस्कृति के गंगा घाटी के स्थलों पर शिलाश्रयो के अभाव में इनकी कलात्मक अभिरुचि के कोई प्रमाण नहीं मिलते लेकिन गेरू के घिसे टुकड़े प्राप्त हुए हैं।[1]

---

1. मिश्रा, वी0 डी0, 1977, *सम एस्पेक्ट्स ऑफ इण्डियन आर्कियोलॉजी*, पृष्ठ 53

तालिका 14

विन्ध्य क्षेत्र एवं मध्य गंगा घाटी के मध्य पाषाण कालीन कंकालों से प्राप्त कार्बन - 14 तिथियाँ

स्थल	ईकाई	स्तर	तिथियाँ	नमूने की सख्या		स्त्रोत
लेखहिया	काल III	4	3 560 ± 110 आज से पूर्व (बी० पी०)	टी० एफ० 417	हड्डी	अग्रवाल और कुसुमगार 1974
	काल 1	8	4 240 ± 115 आज से पूर्व (बी० पी०)	टी० एफ० 419	हड्डी	
महदहा	LOC-XII-XIV	2	4.010 ± 120 आज से पूर्व (बी० पी०)	बी० एस० 136	टूटी कार्बोनेट युक्त हड्डी	राजगोपालन 1982
	LOC-XII-XVIII	3	2 880 ± 250 आज से पूर्व (बी० पी०)	बी० एम० 137		
	LOC-VI-XII	4	3 840 ± 130 आज से पूर्व (बी० पी०)	बी० एस० 138		
सराय नाहर राय	अग्नि स्थल 1/A3	7	2 860 120 आज से पूर्व (बी० पी०)	टी० एफ० 1356	हड्डी	अग्रवाल और कुसुमगार, 1975
	अग्नि स्थान 2/R-4	1	10.50 ± 110 आज से पूर्व (बी० पी०)	टी० एफ० 1356	हड्डी चूर्ण	अग्रवाल और कुसुमगार 1973

तालिका 15

लेखहिया और दमदमा के मध्य पाषाण कालीन कंकालों से प्राप्त नयी ए एम एस 14 कार्बन - तिथियाँ

स्थल	काल	स्तर	तिथि	नमूने की संख्या	ककाल संख्या
दमदमा	VIII		8 640 ± 65 आज से पूर्व (बी० पी०)	जी० एक्स-20829 - ए एम एस	डी० डी० एम०-360
	I		8.865 ± 65 आज से पूर्व (बी० पी०)	जी० एक्स-20827- ए एम एस	डी० डी० एम०-12
लेखहिया	III	3	8 370 ± 75 आज से पूर्व (बी० पी०)	जी० एक्स-20983- ए एम एस	एल० के० एच-4
	II	6	8.000 ± 75 आज से पूर्व (बी० पी०)	जी० एक्स-20984- ए एम एस	एल० के० एच-13

गगा घाटी और विन्ध्य क्षेत्र की मध्य पाषाण संस्कृति को क्या समय प्रदान किया जाये? लेखहिया, दमदमा, सराय नाहर राय महदहा आदि स्थलों से प्राप्त तिथियो के आधार पर विन्ध्य क्षेत्र एवं गंगा घाटी के मध्य पाषाणिक संस्कृति को 15,000 ईसा पूर्व या 1000 ईसा पूर्व तक ले जा सकते हैं।

अध्याय पाँच

विन्ध्य क्षेत्र एवं मध्य गंगा के मैदान की नव पाषाणकालीन संस्कृतियां

- विन्ध्य क्षेत्र एवं मध्य गंगा घाटी के उत्खननोपरान्त मिले स्थलों का विस्तृत विवरण तथा अंर्तसंबंध
- विन्ध्य क्षेत्र के उत्खनित स्थल
- मध्य गंगा घाटी के उत्खनित स्थल
- विन्ध्य क्षेत्र एवं मध्य गंगा घाटी की नव पाषाण कालीन संस्कृतियो के अंर्तसंबन्धो पर प्रकाश

विन्ध्य क्षेत्र एवं मध्य गंगा घाटी के उत्खननोपरान्त मिले स्थलों का विस्तृत विवरण एवं अंतर्सम्बंधों पर प्रकाश

विन्ध्य क्षेत्र एवं मध्य गंगा घाटी के नवपाषाणिक संस्कृति के तुलनात्मक अध्ययन से इनके पारस्परिक सम्बन्ध या अंर्तसंबंधों के बारे मे कुछ महत्वपूर्ण तथ्य प्राप्त होते हैं। दोनो संस्कृतियों के नवपाषाणिक कुल्हाड़ियो मे साम्य है और एक ही तरह के लघु पाषाण उपकरण भी प्राप्त होते हैं[1]। कुछ पात्र परम्पराएं विशेषतः रस्सी की छाप वाले और चमकाई गई पात्र परम्पराएं तथा कुछ अन्य पात्र प्रकार भी दोनो संस्कृतियो की सामान्य विशेषताएं हैं। चिरांद मे मिट्टी के बर्तनो को पकाने के बारे में खरोच कर अलकृत किया गया है। दोनों सस्कृतियों के लोग धान की खेती से परिचित थे। चिरांद से मिलने वाली मृण्मूर्तियां भी कोलड़िहवा, पंचोह, महगड़ा, इन्दारी एवं बरौधा से नहीं मिली हैं[2]। इसके अतिरिक्त चिरांद से मिलने वाले हड्डी के उपकरणों की विविधता और अधिकता का भी इन स्थलों पर अभाव है। उपरोक्त विश्लेषण से यही प्रतीत होता है कि चिरांद की नव पाषाणिक संस्कृति अधिक विकसित है जबकि विन्ध्य क्षेत्र की यह संस्कृति अभी भी शैशवावस्था में है। उपलब्ध कार्बन तिथियों के आलोक में चिरांद की नवपाषाणिक संस्कृति विन्ध्य क्षेत्र की संस्कृति के काफी बाद की प्रमाणित होती है।

विन्ध्य क्षेत्र के उत्खनित स्थल

मध्य गंगा घाटी के दक्षिण मे विन्ध्य क्षेत्र नव पाषाणिक संस्कृति का प्रसार क्षेत्र है। नव पाषाणिक मानव के उद्‌भव एवं विकास का स्थल रहा है। विन्ध्य क्षेत्र में बेलन घाटी एवं विन्ध्य की उत्तरवर्ती पाद पहाड़ियो तथा पठार, जिसमें वाराणसी, दक्षिण मिर्जापुर, दक्षिण इलाहाबाद तथा सोन घाटी तथा रीवा का त्यौथर का क्षेत्र सम्मिलित है। इस क्षेत्र के धरातल से त्रिकोणात्मक ओपदार कुल्हाड़ियां जिनका प्रसार दक्षिण भारत मे है समय-समय पर प्रतिवेदित होती रही हैं। इसके अतिरिक्त गोलाकार समानान्तर की कुल्हाड़ियां भी यदाकदा इसी क्षेत्र से मिलती थी। इनकी स्थिति तथा अन्तर्सम्बन्ध को समझने के लिए प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्रोफेसर शर्मा के नेतृत्व में इस क्षेत्र का सघन सर्वेक्षण से नव पाषाणिक कई पुरास्थल प्रकाश आये

---

1. मिश्रा, वी० डी०, 1977, *सम ऐस्पेक्ट ऑफ इण्डियन आर्कियोलॉजी*, पृष्ठ 116
2. सिह, एम० पी०, 1996, *अदवा घाटी मे पुरा-पर्यावरण एवं प्रागैतिहासिक संस्कृतियां*, पृष्ठ 216

हैं जिसमें कोलड़िहवा, महगड़ा, पंच्चोह, इन्दारी, कुन्झुन, टोकवा आदि स्थलों का उत्खनन भी हुआ है। जिसके फलस्वरूप इस सम्पूर्ण क्षेत्र की नव पाषाण संस्कृति पर यथेष्ठ प्रकाश पड़ा है।

कोलडिहवा (24° 54' 30'' उत्तरी अक्षांश, 82° 2' पूर्वी देशान्तर) :

उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद जिले से दक्षिण पूर्व दिशा में 85 किलोमीटर की दूरी पर मेजा तहसील में बेलन नदी के बायें तट पर स्थित है। सन् 1964 मे किये गये पुरातात्विक अन्वेषण के फलस्वरूप कोलडिहवा का टीला प्रकाश में आया, जो पूर्व से पश्चिम 500 मीटर लम्बा और उत्तर से दक्षिण 200 मीटर चौड़ा है। बेलन नदी तथा उसके सहायक नालो के निरन्तर कटाव के कारण अब यह अनेक छोटे-छोटे टीलों में विभक्त हो गया है। कालानुक्रम को जानने के उद्देश्य से यहाँ पर अत्यन्त सीमित उत्खनन किया गया था। कोलडिहवा के टीले का 1.90 मीटर मोटा सांस्कृतिक जमाव से तीन संस्कृतियो से सम्बन्धित सामग्री मिली हैं। ये संस्कृतियाँ हैं[1] -

1- नव पाषाण संस्कृति (45 सेमी मोटा जमाव)

2-ताम्र पाषाणिक संस्कृति

3- आरम्भिक ऐतिहासिक काल की लौह युगीन संस्कृति।

कोलडिहवा सबसे पहला पुरास्थल है जिसके उत्खनन से विन्ध्य क्षेत्र की नव पाषाण काल की संस्कृति के विषय में जानकारी प्राप्त हुई है। कोलडिहवा की प्रथम संस्कृति नव पाषाण काल से सम्बन्धित है जिसका कुल जमाव 45 सेमी मोटा है तथा नीचे से चौथा तथा तीसरा स्तर इस काल से सम्बन्धित है। गोल समानान्तर वाली प्रस्तर कुल्हाड़ियाँ, गदाशीर्ष, हथौड़े एवं सिल-लोढ़े यहा से मिले हैं। चर्ट, चाल्सेडनी, अगेट, क्वार्ट्ज आदि के बने हुए लघु पाषाण उपकरण प्राप्त हुए हैं जिनमें से कोई भी दन्तुरित तकनीक पर निर्मित नहीं है।

कोलडिहवा के नव पाषाण काल के लोगों का आर्थिक जीवन कृषि तथा पशुपालन पर आधारित था। कोलडिहवा से धान की खेती के साक्ष्य मिले हैं। इस काल के हाथ से बने हुए मिट्टी के बर्तनो मे धान के अधजले दाने, भूसी तथा पुआल के टुकड़े चिपके हुए प्राप्त हुए हैं जिनके विश्लेषण के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि यहां के लोग धान की खेती करते थे। गाय-बैल, भैंस तथा भेंड़-बकरी प्रमुख पालतू पशु थे। सुअर तथा हिरण आदि जंगली पशुओं का शिकार होता था।

---

1. वर्मा, आर0 के0 एवं नीरा वर्मा, 2001, *पुरातत्व अनुशीलन*, पृष्ठ 148

कछुआ एवं मछली पकड़ने के संकेत भी मिले हैं।

कोलडिहवा से आवास सम्बन्धी उल्लेखनीय साक्ष्य नहीं मिले हैं। उत्खनन से सरकण्डों की छाप से युक्त जली हुई मिट्टी के टुकड़े मिले हैं जिनसे यह इंगित होता है कि बांस-बल्लियो से निर्मित झोपड़ियों मे लोग निवास करते थे।

कोलडिहवा के नव पाषाण काल के लोग चार प्रकार के हस्त-निर्मित मिट्टी के बर्तनो का प्रयोग करते थे–

1. डोरी छाप मृद्भाण्ड
2. खुरदरे मृद्भाण्ड
3. चमकाये हुए लाल मृद्भाण्ड
4. चमकाये हुए काले मृद्भाण्ड

डोरी छाप मृद्भाण्ड सबसे प्रमुख हैं जिनकी बाहरी सतह पर डोरी अथवा बटी हुई रस्सी की छाप के निशान मिलते हैं (छायाचित्र संख्या 24)। इस प्रकार के अलंकरण कछुआ की खोपड़ी की छाप से भी बनाये जा सकते थे। बर्तनों का रंग हल्का लाल है तथा अधिकांश पात्र मोटी गढ़न के हैं। छिछले एव गहरे कटोरे, टोटीदार कटोरे तथा घड़े प्रमुख पात्र प्रकार हैं (रेखाचित्र संख्या 19)। खुरदरे मृद्भाण्ड भी लाल रंग के हैं जिनके बाहरी भाग को जानबूझ कर खुरदरा बनाया गया है। कटोरे, छिछले तसले, तश्तरियाँ, चौड़े मुँह की हाँडियां तथा घड़े प्रमुख प्रकार हैं। बर्तनो की बाहरी सतह को आड़ी तिरछी तथा अंगुष्ठनख डिजाइनों से अलंकृत किया गया है। लाल तथा काले मृद्भाण्डों की भीतरी तथा बाहरी सतहों को पकाने के पूर्व किसी वस्तु से रगड़ कर चिकना किया गया है। कटोरे, तश्तरियाँ, तसले एवं घड़े प्रमुख पात्र-प्रकार हैं जिन पर उत्कीर्ण तथा चिपकवा दोनों प्रकार के अलंकरण मिलते हैं (रेखाचित्र संख्या 20)।

कोलडिहवा की नव पाषाणिक संस्कृति का कालक्रम पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर छठवीं पाँचवी सहस्राब्दी ईसवी पूर्व निर्धारित किया गया है। यहां से तीन कार्बन तिथियाँ उपलब्ध हैं जो क्रमशः इस प्रकार है - $657^0 \pm 210$ ई0 पू0, $544^0 \pm 240$ ई0 पू0, 4530 ± 185 ई0 पू0।[1]

---

1 पाण्डेय, जे0 एन0, 1995, *पुरातत्व विमर्श*, पृष्ठ 323-324
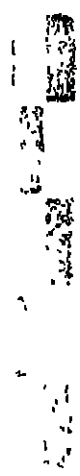
छायाचित्र संख्या 24 - कोलडिहवा : डोरी छाप पात्र
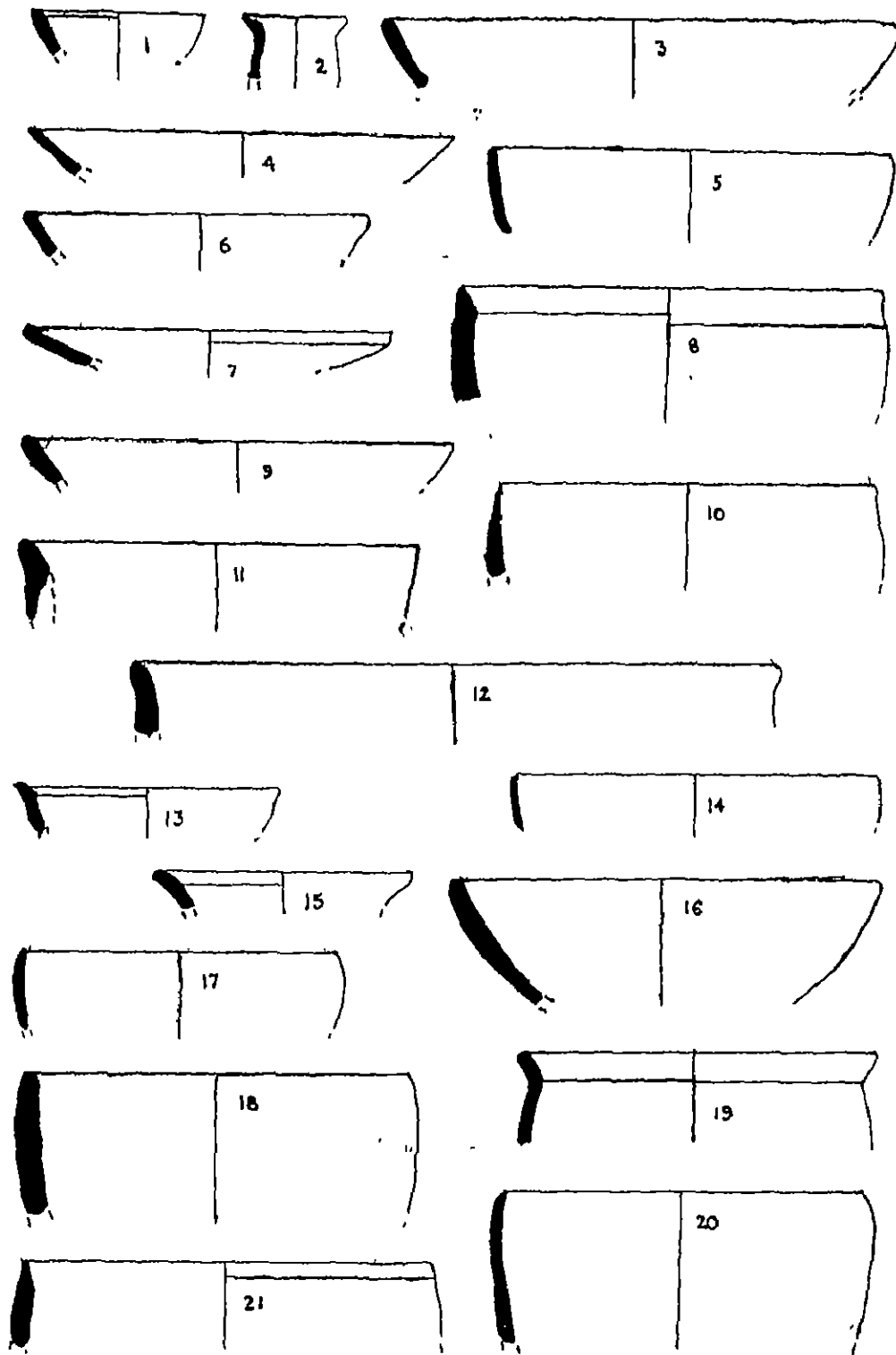
रेखाचित्र सख्या 19 - कोलडिहवा : नव पाषाणिक मृद्भाण्ड
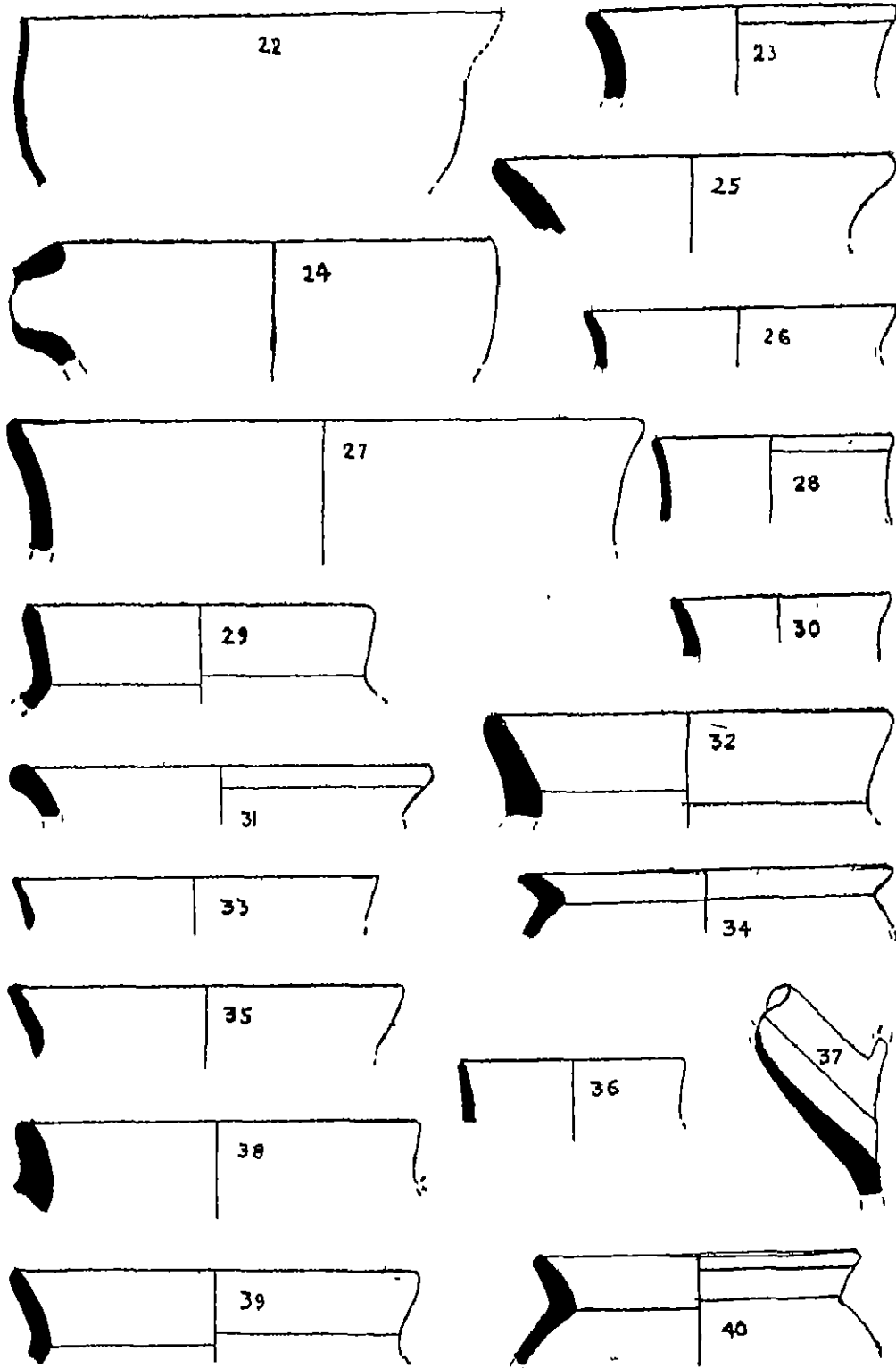
रेखाचित्र सख्या 20 - कोलडिहवा : नव पाषाणिक मृद्भाण्ड

महगड़ा - (24° 54' 50'' उत्तरी अक्षांश, 82° 3' 30'' पूर्वी देशान्तर) :

महगड़ा इलाहाबाद की मेजा तहसील में इलाहाबाद से 85 किलोमीटर की दूरी पर नयी तथा बूढ़ी बेलन के सगम के पश्चिम मे कोलड़िहवा के सामने, नई बेलन धारा के बाये तट पर स्थित है। चोपानी माण्डो से महगड़ा दक्षिण-पश्चिम दिशा मे 3 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है।

महगड़ा पुरास्थल लगभग अण्डाकार है, तथा इसका क्षेत्र लगभग 8,000 वर्ग फीट मे विस्तृत है। महगड़ा के दक्षिण-पूर्व मे बूढ़ी बेलन तथा दक्षिण पश्चिम मे नई धारा है। इसके अतिरिक्त यह सभी दिशाओ मे एक प्राकृतिक कटक से सुरक्षित है।

यह पुरास्थल 1975-76 मे प्रकाश में आया था। 1976 से 1978 तक यहाँ पर क्षैतिज उत्खनन किया गया। जिससे यहां की नव पाषाणिक संस्कृति पर समुचित प्रकाश पड़ता है। उत्खनन के परिणाम स्वरूप जो 2.60 मीटर मोटा सांस्कृतिक जमाव ज्ञात हुआ है।[1]

उत्खनन से 20 झोपड़ियों के फर्श प्रकाश में आ चुके हैं। स्तम्भगर्तों से घिरे हुए ये फर्श गोलाकार या अण्डाकार हैं, जिसका क्षेत्रफल 6.70 × 6.25 मीटर से 5.0 × 3.50 मीटर तक है (छायाचित्र संख्या 25)। इन फर्शों पर अत्यधिक संख्या में जली मिट्टी के टुकड़े मिले हैं, जिन पर बांस बल्ली और घास-फूस के निशान हैं। झोपड़ियों की फर्शों पर मिट्टी के बर्तनो के टुकड़े, सिल, लोढ़े, निहाई, लघु पाषाण उपकरण, हथगोले, कुल्हाड़ियाँ, गदाशीर्ष, हड्डियों के टुकड़े, मिट्टी के मनके आदि प्राप्त हुए हैं। महगड़ा के उत्खनन से गोल समानान्तर वाली नव पाषाणिक कुल्हाड़ियां, बसुले, छेनी, हथौड़े, सिल-लोढ़े, गोफन पाषाण, चक्रिक-प्रस्तर तथा लघु पाषाण उपकरणो मे भुथड़े ब्लेड, अर्द्धचान्द्रिका, स्क्रेपर, छिद्रक, त्रिभुज, समलम्ब चर्तुभुज और चौड़ी धार वाले वाणाग्र सम्मिलित हैं (रेखाचित्र सख्या 21)।

कृषि उत्पादित धान के साथ-साथ जंगली धान का प्रयोग होता था, जिसकी भूसी मिट्टी के बर्तनो मे सालन के रूप में मिलती है (छायाचित्र संख्या 26)। उत्खनन मे जंगली और पालतू दोनों प्रकार की पशुओं की हड्डियाँ प्राप्त हुई हैं। गाय, बैल, भेड़, बकरी, हिरण, जंगली सुअर, कछुए और मछली की हड्डियो के अतिरिक्त चिड़ियों की हड्डियाँ भी यहां से मिली है।

---

1 पाण्डेय, जे० एन०, 1995, *पुरातत्व विमर्श*, पृष्ठ 323
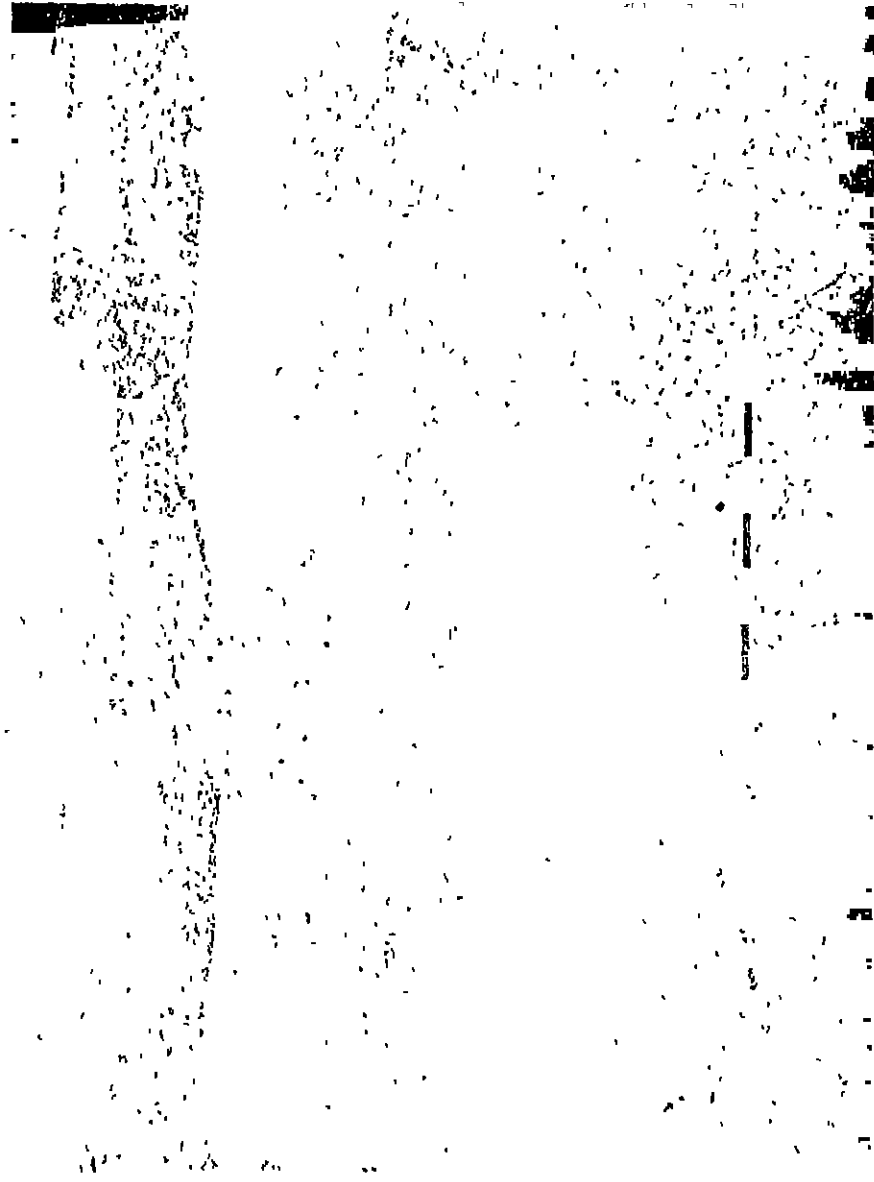
छायाचित्र संख्या 25 - महगड़ा : दो फर्शों के साक्ष्य
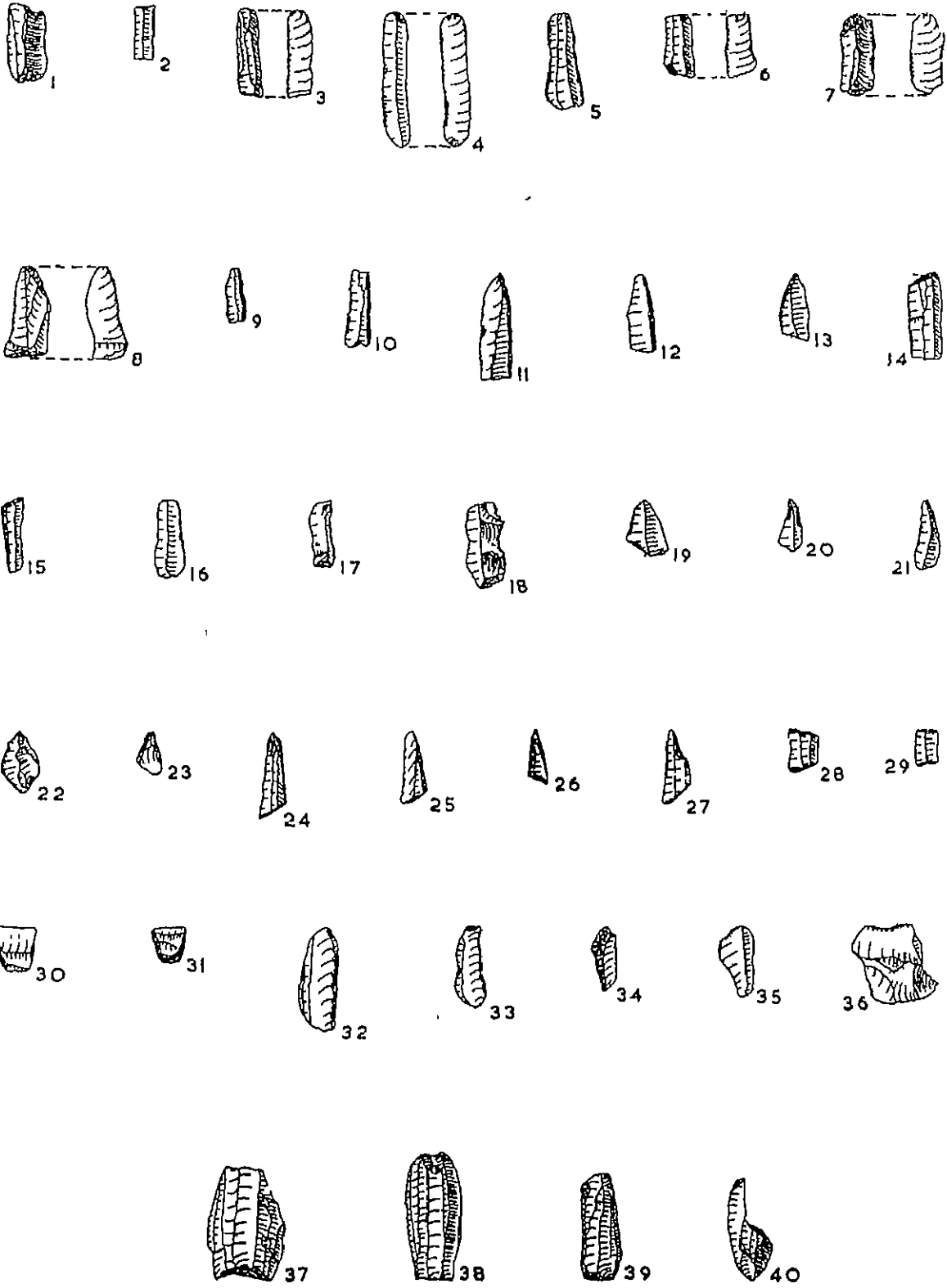
महगड़ा -1-8 समानान्तर पृष्ठ ब्लेड, 9-11 पृष्ठ ब्लेड, 12-15 चाकूवाले ब्लेड 16-18 दातेदार ब्लेड, 19-23-शट, 24-26 त्रिभुज, 27-29 समलम्ब चतुर्भुज, 30-31 ट्राचेट, 32-34, स्क्रेपर 35, स्क्रेपर, 36-40 कोर

रेखाचित्र सख्या 21 - महगड़ा : लघु पाषाण उपकरण
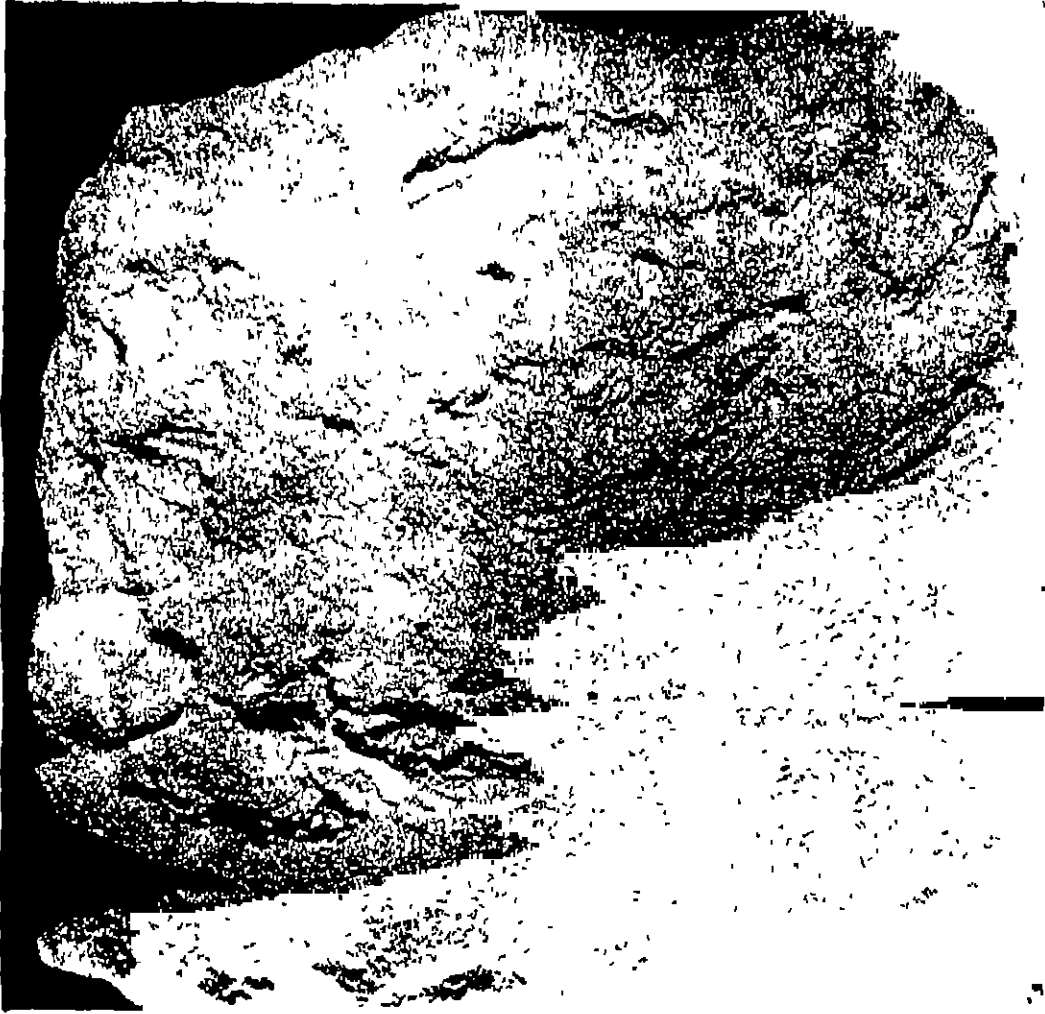
छायाचित्र संख्या 26 - महगड़ा : बर्तनों में चावल की भूसी के प्रमाण

महगड़ा से भी चार प्रकार के हस्तनिर्मित मिट्टी के बर्तन प्राप्त हुए हैं - डोरी छाप मृद्भाण्ड (रेखाचित्र संख्या 22), खुरदरे मृद्भाण्ड (रेखाचित्र संख्या 23), ओपदार लाल पात्र (रेखाचित्र संख्या 24) और ओपदार काले पात्र (रेखाचित्र सख्या 25) प्रमुख हैं। पात्र प्रकारो मे छिछले अथवा गहरे कटोरे, टोटीदार कटोरे, बड़े-छोटे आकार के घड़े एवं नांद आदि सम्मिलित हैं।[1]

इंदारी (24° 37' 38" उत्तरी अक्षांश, 82° 20' पूर्वी देशान्तर) :

नव पाषाणिक स्थल अदवा नदी के पूर्व में मधा ग्राम से लगभग 5 किलोमीटर उत्तर-पूर्व तथा निकटवर्ती ग्राम मनिगड़ा के दक्षिण में मिर्जापुर जिले में स्थित है। 1981 में यहां पर 3 × 3 मीटर के क्षेत्रफल का उत्खनन किया गया, जिसके फलस्वरूप 95 से0 मी0 का एक मोटा नव पाषाणिक जमाव मिला। उत्खनन के फलस्वरूप घर्षित धूसर एवं फीके रंग की लाल मृद्भाण्ड, हस्तनिर्मित काले और लाल मृद्भाण्ड मिले हैं। इसके अतिरिक्त काली घर्षित मृद्भाण्ड, गोलाकार छिछले कटोरे, छिछली थालियाँ एवं तश्तरियां इत्यादि मिली हैं। खन्ती के पूर्वी किनारे में कुछ झोपड़ियों के साक्ष्य मिले हैं। यहां से जली मिट्टी के टुकड़े प्राप्त हुए हैं, जिससे यह प्रतीत होता है कि आवासो की फर्श कड़ी लाल मिट्टी से पोता गया था। यहां से प्राप्त मृद्भाण्ड बेलन घाटी में स्थित नव पाषाणिक स्थल कोलडिहवा एवं महगड़ा पुरास्थलों के समान है। कुछ मृद्भाण्डों के टुकड़ों पर पुआल के कार्बनीकृत अवशेष चिपके हुए मिले हैं। यहां से ओराइजा सताइवा (Oryza Sativa) किस्म के धान उत्पादन व उपयोग के स्पष्ट प्रमाण मिले हैं।[2]

पंचोह (24° 55' 45" उत्तरी अक्षांश, 82° 2' 30" पूर्वी देशान्तर) :

पंचोह नव पाषाणिक पुरास्थल जो कोलड़िहवा के उत्तर-पश्चिम में लगभग 2.5 किलोमीटर की दूरी पर बेलन नदी के दाहिने तट पर स्थित है। इस स्थल पर कोई टीला नहीं है, लेकिन समतल क्षेत्र के ऊपरी सतह से ही लघुपाषाण उपकरण, कुल्हाड़ियाँ तथा कोलड़िहवा की तरह के मिट्टी के बर्तन प्राप्त हुए हैं। कालानुक्रम जानने के उद्देश्य से यहाँ पर 1975-76 मे सीमित उत्खनन किया गया जिससे 60 सेमी मोटा नव पाषाणिक जमाव प्रकाश में आया। इस आवासीय जमाव से मिट्टी के बर्तनों के अतिरिक्त गदाशीर्ष बांस बल्ली के निशान से युक्त जली मिट्टी के टुकड़े, गोलाकार

---

1. सिह, एस0 पी0, 1996, अदवा घाटी में पुरा-पर्यावरण एवं *प्रागैतिहासिक संस्कृतिया*, पृष्ठ 215
2. *इण्डियन आर्कियोलॉजी : ए रिव्यू*, 1980-81, पृष्ठ 72-73
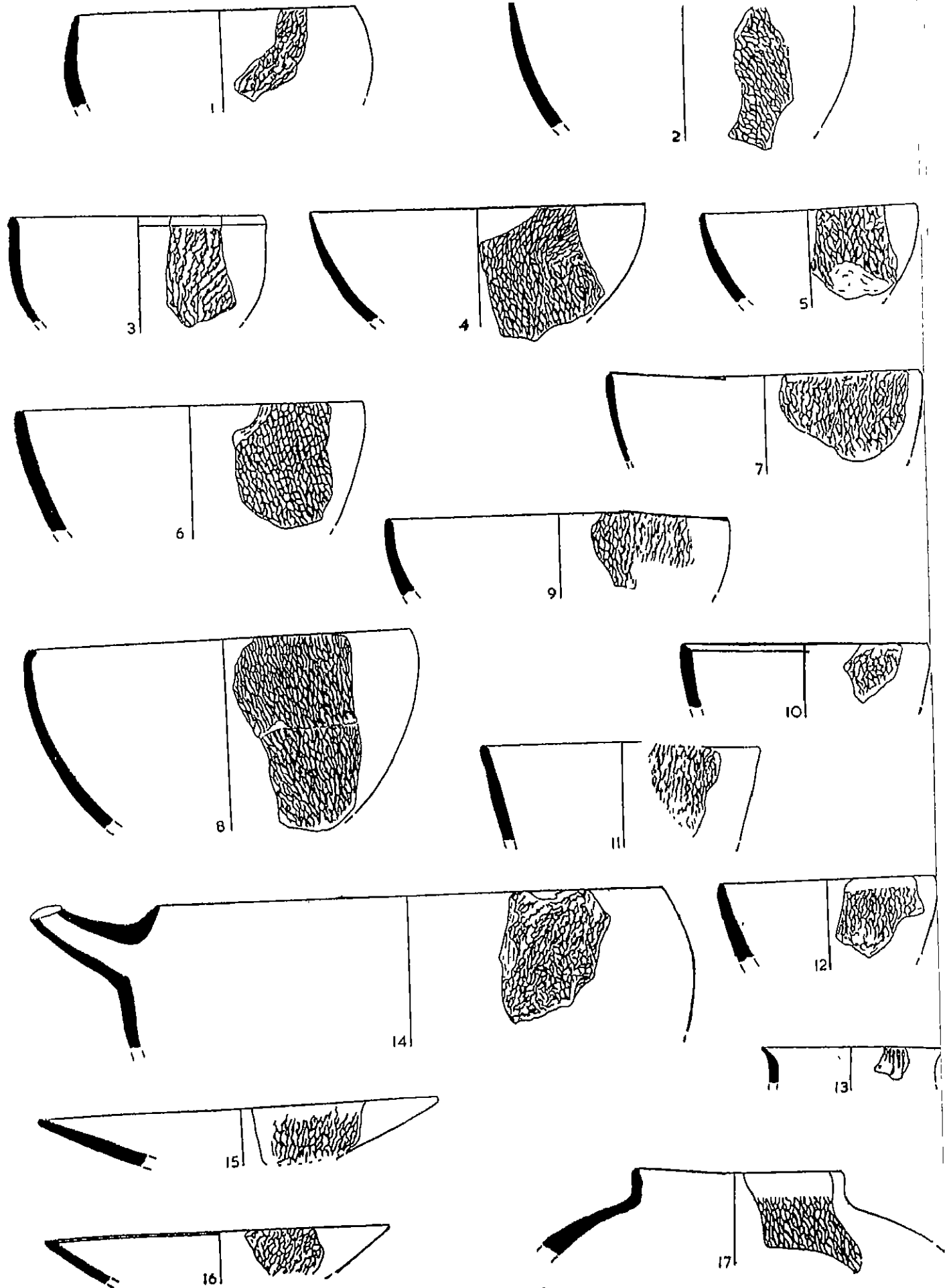
रेखाचित्र सख्या 22 - महगड़ा : डोरी छाप पात्र
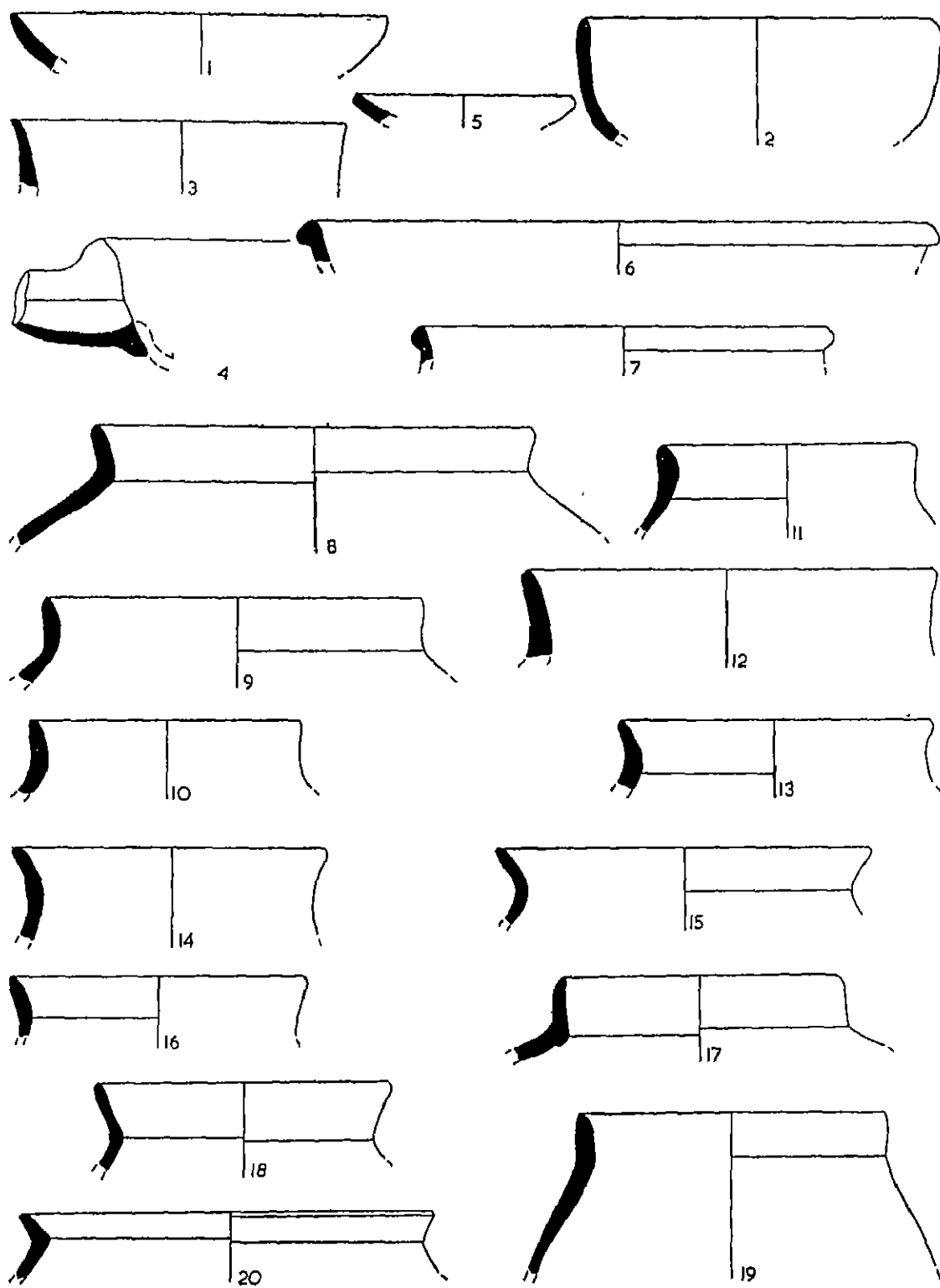
रेखाचित्र संख्या 23 - महगड़ा : खुरदरे पात्र
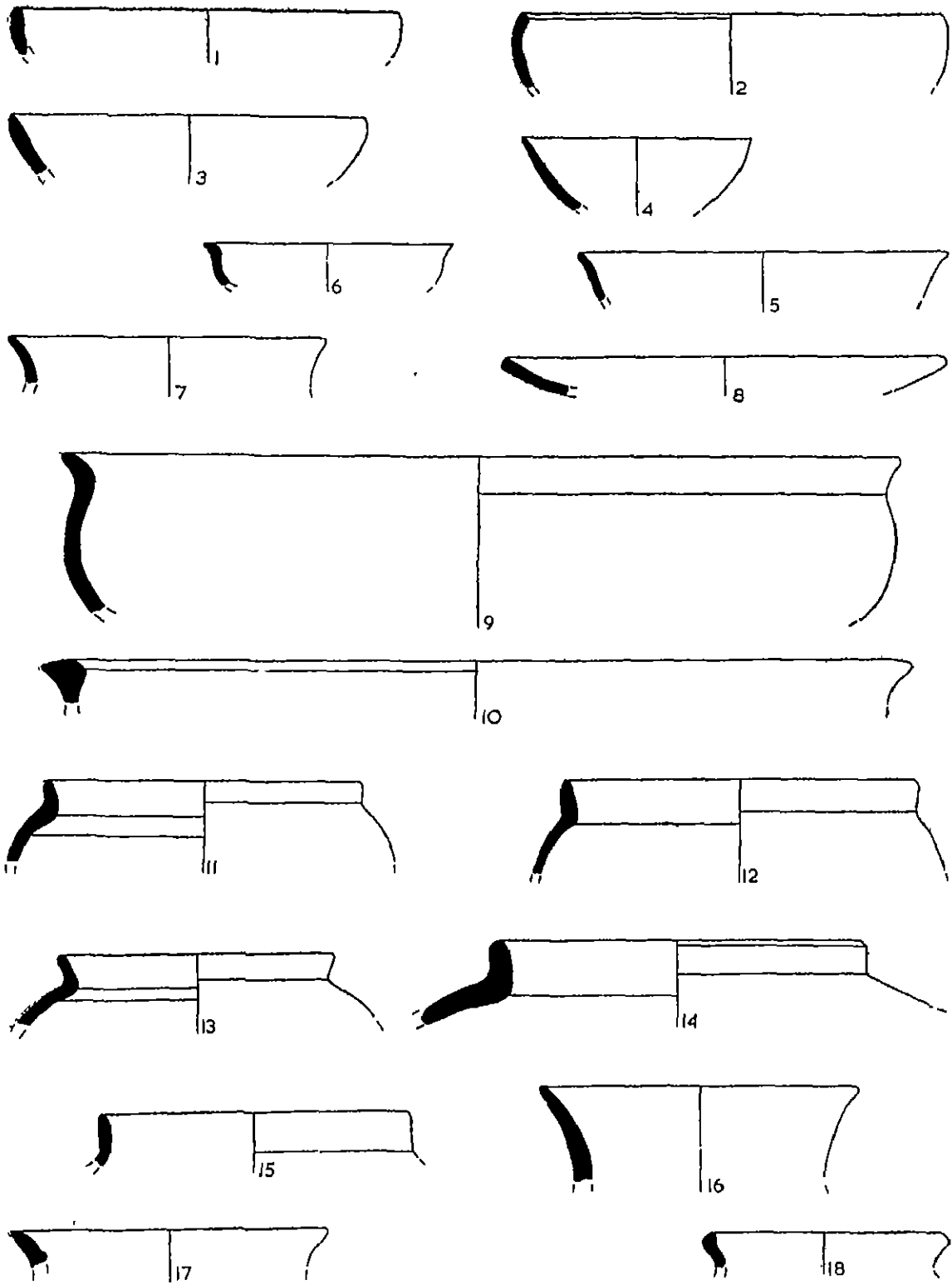
रेखाचित्र संख्या 24 - महगड़ा : ओपदार लाल पात्र
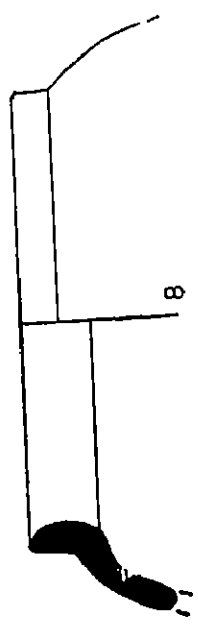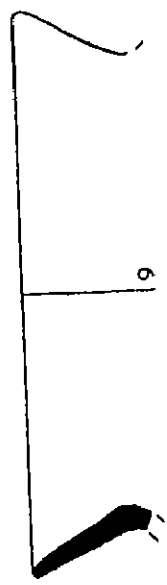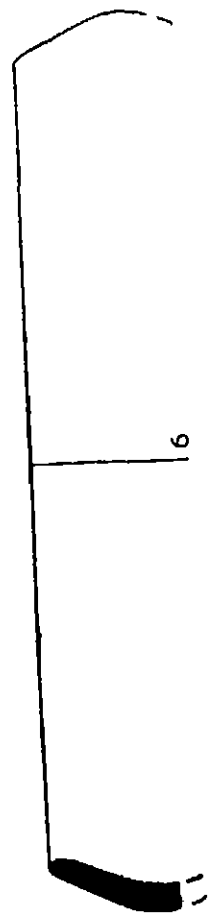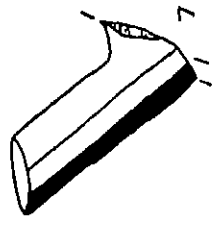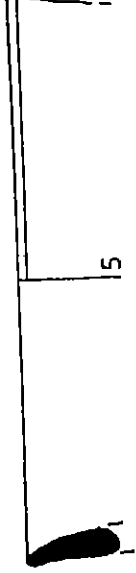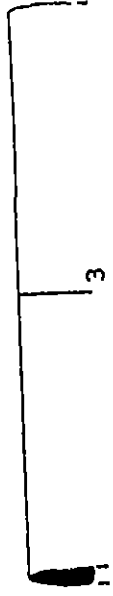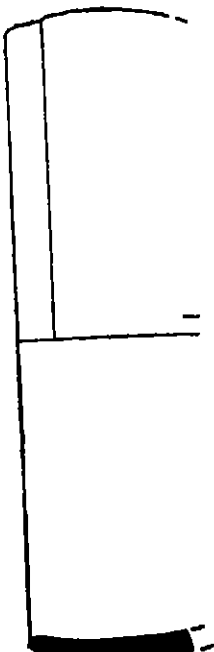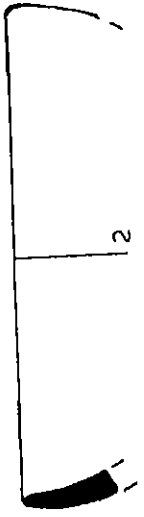
रेखाचित्र सख्या 25 - महगड़ा : ओपदार काले पात्र

कुल्हाड़ियाँ आदि प्राप्त हुई हैं। पंचोह नवपाषाणिक पुरास्थल की तुलना अदवाघाटी के नव पाषाणिक पुरास्थलो से की जा सकती है क्योंकि पंचोह के ही समान यहां के पुरास्थलों से भी नव पाषाणिक उपकरण प्राप्त हुए है।[1]

कुन्झुन (24° 31' 15'' उत्तरी अक्षांश, 82° 11' 15'' पूर्वी देशान्तर) :

कुन्झुन नवपाषाणिक स्थल मध्य प्रदेश में सीधी जिले से 36 कि0 मी0 उत्तरी पूर्व सोन नदी के दाहिने किनारे के अन्तिम वेदिका पर स्थित है। यह स्थल 3000 वर्ग मीटर के क्षेत्रफल में फैला हुआ है। 1975-76 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग द्वारा यहा का सर्वेक्षण किया गया।[2] इलाहाबाद विश्वविद्यालय एवं कैलीफोर्निया स्थित बर्कले विश्वविद्यालय के संयुक्त दल द्वारा 1980-81 में उत्खनन किया गया[3]। उत्खनन के बाद यहाँ से नव पाषाणिक कुल्हाड़ियाँ, गदाशीर्ष, लघु पाषाण उपकरण एवं हस्त निर्मित मृद्भाण्ड प्राप्त हुए हैं[4]। 14 मीटर क्षेत्रफल में किये गये उत्खनन के फलस्वरूप विभिन्न जानवरों की हड्डियाँ एवं लघु पाषाण उपकरण प्राप्त हुए हैं।

1980 मे मध्य प्रदेश के सीधी जिले के सोन घाटी में गोपद बनास उपविभाग में ललनहिया पुरास्थल प्रकाश मे आया। इलाहाबाद विश्वविद्यालय द्वारा यहां पर उत्खनन किया गया है। इस उत्खनन के फलस्वरूप डोरी छाप मृद्भाण्ड, गदाशीर्ष एवं सिल आदि प्राप्त हुए हैं।[5]

टोकवा (24° 54' उत्तरी अक्षांश, 82° 16' 45'' पूर्वी देशान्तर) :

टोकवा नव पाषाणिक पुरास्थल मिर्जापुर जनपद की लालगंज तहसील के हलिया ब्लाक अन्तर्गत अदवा और बेलन नदी के संगम पर ऊँचे टीले पर स्थित है (छायाचित्र संख्या 27)।

पुरातत्व विशेषज्ञ प्रो0 वी0 डी0 मिश्र, प्रो0 जे0 एन0 पाल एवं डा0 अनिल कुमार दुबे द्वारा टोकवा स्थल की खोज सन् 1999 में किया गया था। इस पुरास्थलो के खोज तथा उत्खनन कार्य

---

1. सिह, एस0 पी0, 1996, *अदवा घाटी में पुरा-पर्यावरण एवं प्रागैतिहासिक संस्कृतियां*, पृष्ठ 214
2. *इण्डियन आर्कियोलॉजी : ए रिव्यु*, 1975-76, पृष्ठ 27
3. *इण्डियन आर्कियोलॉजी : ए रिव्यु*, 1981-82, पृष्ठ 44
4. *इण्डियन आर्कियोलॉजी . ए रिव्यु*, 1981-82, पृष्ठ 43-44
5. *इण्डियन आर्कियोलॉजी . ए रिव्यू*, 1977-78, पृष्ठ 46-49

छायाचित्र संख्या 27 - टोकवा का सामान्य दृश्य

के सचालन का श्रेय इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग को है। कालानुक्रम को जानने के उद्देश्य से सन् 2000 में यहा पर विस्तृत पैमाने पर उत्खनन किया गया, जिसके परिणामस्वरूप दो सास्कृतिक स्तर प्रकाश मे आए जो नीचे से ऊपर क्रमश· नवपाषाण काल, ताम्र पाषाण काल।

यहां की प्रथम संस्कृति नवपाषाण काल से सम्बन्धित थी। यहा से हाथ से बने मिट्टी के बर्तन प्राप्त हुए हैं। यहाँ से चार प्रकार की पात्र परम्परा प्राप्त हुई है। डोरी छाप पात्र, खुरदरे पात्र, लाल रंग की पात्र तथा लाल रंग की घर्षित पात्र थे।

बर्तनो के निर्माण में प्रयुक्त मिट्टी में धान की भूसी के टुकड़े पर्याप्त मात्रा में मिलते है जो इस संस्कृति मे धान की खेती के प्रमाण साबित होते हैं।[1]

मध्य गंगा घाटी के उत्खनित स्थल

मध्य गंगा घाटी की नव पाषाण संस्कृति का प्रसार क्षेत्र दक्षिणी बिहार का क्षेत्र है। इसका मुख्य पुरास्थल सारन जिले में स्थित चिरांद है। चिरांद के अतिरिक्त चेचर, सोहगौरा, सेनुआर, लहुरादेवा आदि स्थलों के उत्खनन से इस संस्कृति के विविध अवयवों पर प्रकाश पड़ता है।

चिरांद (25° 45' उत्तरी अक्षांश, 48° 45' पूर्वी देशान्तर) :

बिहार के सारन जिले मे गंगा के बायें तट पर स्थित है। यहाँ पर सर्वप्रथम सन् 1962-63 में बिहार के पुरातत्व विभाग और पटना विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास एवं पुरातत्व विभाग की ओर से उत्खनन कार्य आरम्भ किया गया। सन् 1968 तक इसे ताम्र पाषाणिक पुरास्थल माना जाता था किन्तु 1969-70 में और इसके बाद यहाँ पर जो उत्खनन हुए उनके फलस्वरूप यहां पर नव पाषाणिक संस्कृति से सम्बन्धित अत्यन्त महत्वपूर्ण साक्ष्य उपलब्ध हुए। चिरांद के उत्खनन से प्राप्त पुरावशेषों को ध्यान में रखते हुए यहाँ कुल छः सांस्कृतिक काल माने गये हैं। इस स्थल पर क्रम से नव पाषाणिक, ताम्र पाषाणिक और लौह काल के सांस्कृतिक जमाव प्राप्त हुए हैं। डा0 वी0 पी0

---

1. *दैनिक जागरण समाचार पत्र*, 2000, 14 फरवरी और 3 मार्च।
मिश्रा, वी0 डी0, पाल, जे0 एन0 एण्ड एम0 सी0 गुप्ता, इक्सकैवेशन एट टोकवा : ए नियोलिथिक - चल्कोलिथिक सेटेलमेण्ट, *प्राग्धारा न0 11*, पृष्ठ 59-72।

सिन्हा के नेतृत्व मे किये गये उत्खनन से यहाँ पर नव पाषाण काल का 3 5 मीटर मोटा जमाव प्राप्त हुआ है। चिराद से नव पाषाणिक काल के ओपदार प्रस्तर उपकरण (छायाचित्र संख्या 28), हड्डी तथा श्रृंग पर बने उपकरण, मृद्भाण्डो के ठीकरे प्राप्त हुए हैं।[1]

सोहगौरा (26° 32' उत्तरी अक्षांश, 80° 32' पूर्वी देशान्तर) :

सोहगौरा, नामक पुरास्थल उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जनपद मे आमी और राप्ती नदियो के संगम पर स्थित है। इस स्थल का उत्खनन गोरखपुर विश्वविद्यालय के डा० एस० एन० चतुर्वेदी ने सन् 1962-63 और 1975-76 ई० में किया था। नव पाषाणिक संस्कृति के प्रमाण सोहगौरा के निचले धरातल से भी मिले हैं।

सोहगौरा स्थल के उत्खनन से पाँच सांस्कृतिक कालों के प्रमाण उपलब्ध हुए हैं। जिसमें से प्रथम काल से रस्सी की छाप से युक्त हाथ से बने हुए मिट्टी के बर्तन और कुछ अन्य नव पाषाणिक सामग्रियाँ उपलब्ध हुई हैं। द्वितीय सांस्कृतिक काल से चाक पर निर्मित, चित्रित और सादे ब्लैक स्लिप्ड वेयर, चित्रित और सादे ब्लैक ऐण्ड रेड वेयर, भूरे रंग की पात्र-परंपराएँ और लाल पात्र परम्पराओ के बर्तन उपलब्ध हुए हैं। कुछ पात्रों को आसंजन विधि से और कुछ को पक जाने के बाद उत्कीर्णन विधि से अलंकृत किये गये हैं। जैस्पर, अगेट और स्टेएटाइट पर बने मनके और हड्डी के वाणाग्र भी उपलब्ध हुए हैं। इस धरातल से कोई भी लौह उपकरण नहीं उपलब्ध हुए हैं। इसीलिए इसे ताम्र पाषाणिक संस्कृति से समीकृत किया गया है।

तीसरे सांस्कृतिक काल में यद्यपि एन० बी० पी० डब्ल्यु० पात्र परम्पराएं मिलने लगती है, लेकिन अन्य पूर्ववर्ती पात्र परम्पराएं भी चलती रहती है। एन० वी० पी० डब्ल्यू० जमाव से युक्त तृतीय सांस्कृतिक काल को दो उपचरणों मे विभाजित किया गया है। जिसके परिवर्ती चरण मे पकी मिट्टी की ईंटों का प्रयोग दिखाई पड़ता है। इस चरण में धरातल के विभिन्न भागो से धान और गेहूँ के पके दानें और ढले सिक्के, हड्डी के वाणाग्र और ताँबे तथा लोहे के अन्य उपकरण भी उपलब्ध हुए हैं। यहाँ के चतुर्थ सांस्कृतिक काल मे एन० बी० पी० डब्ल्यू० नहीं मिलता है इस धरातल से

---

1. चिराद का उत्खनन बिहार प्रान्त के पुरातत्व विभाग द्वारा डा० वी० पी० सिन्हा के निर्देशन में किया गया *इण्डियन आर्कियोलॉजी : ए रिव्यू*, 1962-63, पृष्ठ 6, 63-64, पृष्ठ 6-8, 68-69, पृष्ठ 5-6, 68-70, पृष्ठ 3-4, 70-71, पृष्ठ 6-7, 71-72, पृष्ठ 6-7

छायाचित्र संख्या 28 - चिरांद : पत्थर के उपकरण

कुषाण और अयोध्या मुद्राएं और वलयकूप (रिंग वेल) प्राप्त हुए है। पांचवे सांस्कृतिक काल का सम्बन्ध मध्य काल से है।[1]

विन्ध्य क्षेत्र एवं मध्य गंगा घाटी की नव पाषाण कालीन संस्कृतियों के अंतर्सम्बन्धों पर प्रकाश

मध्य गगा घाटी और इसके समीपवर्ती विन्ध्य क्षेत्र के उत्खनित और सर्वेक्षित नव पाषाणिक स्थलो से प्राप्त प्रमाणों से प्रतीत होता है कि इन दोनो क्षेत्रो की नवपाषाणिक संस्कृतियों का स्वरूप एक ही है। यद्यपि गगा घाटी की नव पाषाणिक संस्कृति विन्ध्य क्षेत्र की नव पाषाणिक संस्कृति की तुलना मे अधिक विकसित है।

नव पाषाणिक स्थल नदियों के तट पर कुछ ऊँचाई पर स्थित है। जल की सुलभता और वार्षिक बाढ़ का पानी नहीं पहुँच पाता था। जल की सुलभता और वार्षिक बाढ़ से समीपवर्ती क्षेत्रों मे उपजाऊ भूमि नदियों के तट पर स्थिति के मुख्य कारण हैं। विन्ध्य क्षेत्र के महगड़ा, इन्दारी जैसे स्थल प्राकृतिक भू-तात्विक जमावो की प्राचीर से घिरे हुए प्राप्त हुए हैं। जो सम्भवतः तीव्र लू और ठंडी हवाओ से उनकी रक्षा करते थे। अधिकाश नव पाषाणिक स्थलों के समीप जंगल थे जहा से जंगली वनस्पतियो और वन्य् जीवों का दोहन होता था।

आवास :

विन्ध्य क्षेत्र एवं मध्य गंगा घाटी की नवपाषाणिक पुरास्थल के उत्खनन से प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर आवास नियोजन के तुलनात्मक अध्ययन से इसके पारस्परिक सम्बन्ध के बारे मे कुछ महत्वपूर्ण तथ्य प्राप्त होते हैं। विन्ध्य क्षेत्र के नवपाषाणिक पुरास्थल महगड़ा के क्षैतिज उत्खनन से इस सस्कृति के आवास प्रक्रिया पर उल्लेखनीय प्रकाश पड़ता है। यहां की सभी बीस उत्खनित झोपड़ियों के फर्श गोलाकार अथवा अण्डाकार ही हैं। गोलाकार झोपड़ियो का व्यास 6.40 मीटर से 4.30 मीटर के नीचे और अण्डाकार झोपड़ियों की न्यूनतम् तथा अधिकतम दूरी क्रमशः 3.40 मीटर से 6 मीटर और 2.80 मीटर से 4.20 मीटर के बीच की थी। इन झोपड़ियों के फर्शों का

---

1 *इण्डियन आर्कियोलॉजी : ए रिव्यू,* 1975-76, पृष्ठ 46-47

चतुर्वेदी, एस0 एन0, 1988, एडवास ऑफ इण्डियन नियोलिथिक एन सरयू पार रीजन ऑफ यू0 पी0 *मैन एण्ड इन्वायरमेण्ट* अंक 9, पृष्ठ 101-108

औसत आवासीय क्षेत्र 15.79 वर्ग मीटर है[1]। इन फर्शों के चारो ओर स्तम्भ गर्तों के प्रमाण है जिन पर झोपड़ियो की छत टिकी थी। बांस बल्ली और घास-फूस से निर्मित दीवार भी बनाई जाती थी जिस पर मिट्टी का मोटा लेप भी लगाया जाता था, जिसके प्रमाण जली मिट्टी के टुकड़ों के रूप मे प्राप्त हुए हैं। चिरांद के उत्खनन से उपलब्ध वृत्ताकार अथवा अर्द्ध-वृत्ताकार झोपड़ी जिसका व्यास 2 मीटर था तथा जिसकी फर्स को मिट्टी से पीटकर बनाया गया था। महगड़ा के उत्खनित फर्शं की स्थिति से ऐसा लगता है कि आवास प्रक्रिया मे इन झोपड़ियों की केन्द्रीय भूमिका भी मकान प्रायः सीधी रेखा मे न होकर गोलाई में स्थित होते थे। एक मकान में एक अथवा एक से अधिक झोपड़ियां सम्मिलित थी क्योकि दो या तीन झोपड़ियाँ एक दूसरे से जुड़ी हुई प्राप्त हुई हैं। झोपड़ियों के फर्शों से उपलब्ध पुरा सामग्रियों के विश्लेषण से झोपड़ियों के प्रयोग सम्बन्धी प्रमाण प्राप्त हुए हैं। तीन झोपड़ियों वाले बड़े घरों की एक झोपड़ी सम्भवतः आवास के लिए प्रयुक्त की जाती थी और शेष दो उपकरण निर्माण, खाद्य सामग्री, भोजन आदि के लिए प्रयुक्त की जाती थी।

महगड़ा के उत्खनन से उपलब्ध 12.5 मीटर 7.5 मीटर के क्षेत्र में विस्तृत पशुओं का एक बाड़ा जिसे अधिवास सम्बन्धी एक महत्वपूर्ण प्रमाण के रूप में देखा जा सकता है। इस बाड़े के चारो ओर झोपड़ियो के फर्श विद्यमान है। जो सम्भवतः बाड़े की सुरक्षा की दृष्टि से बाड़े के चारों ओर निर्मित किये गये थे। इस बाड़े के चारों तरफ अट्ठाइस स्तम्भ गर्त प्राप्त हुए हैं। गर्तो की दूरी के आकलन से प्रतीत होता है कि इसमें तीन प्रवेश द्वार थे जो क्रमशः 2.25 मी0 1.55 मीटर तथा 1.50 मीटर चौड़े थे। सम्भवतः बाड़े को बास-बल्ली से निर्मित घास-फूस की दीवारो से घेरा गया था और उसके ऊपर कोई छत नहीं थी, क्योकि बाड़े के भीतर स्तम्भ गर्त का कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। इस बाड़े में विभिन्न आयु वर्ग के पशुओ के खुरों के निशान उपलब्ध हुए हैं। इस बाड़े में खूटे के भी कोई प्रमाण नहीं उपलब्ध हुए हैं। इससे लगता है कि पशुओ को बाड़े में खुला ही रखा जाता था। बाड़े के भीतर की मिट्टी भी अपेक्षाकृत अधिक काली थी। इसमें कोई उपकरण अथवा मृद्भाण्ड के अवशेष नहीं मिले।

जैसा कि मध्य गंगा घाटी और इसके दक्षिणावर्ती विन्ध्य क्षेत्र से प्राप्त नव पाषाण कालीन संस्कृति के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट है कि ये दोनों एक ही संस्कृति समूह के विभिन्न अंग प्रतीत

1 मण्डल, डी0, 1997, नियोलिथिक कल्चर्स इन दि विन्ध्याज, *इण्डियन प्रीहिस्ट्री*, 1980, (सम्पा0), मिश्रा, वी0 डी0 एवं पाल, जे0 एन0

होते है। इसलिए दोनो ही क्षेत्रो से उपलब्ध प्रमाणो के आधार पर नव पाषाणिक संस्कृति के अधिवास प्रक्रिया के पुननिर्माण का प्रयास किया जा सकता है।

मृद्भाण्ड :

विन्ध्य क्षेत्र एवं मध्य गंगा घाटी की नव पाषाणिक संस्कृति के पात्र परम्परा के अध्ययन से भी अन्तर्सम्बन्धो के स्वरूप पर प्रकाश पड़ा है। हाथ से बने मिट्टी के बर्तन दोनों क्षेत्रो की संस्कृतियों से प्राप्त हुए हैं। लेकिन यदा-कदा चिरांद से धीमी गति से चलने वाले चाक पर बने हुए बर्तन भी मिल जाते है।

विन्ध्य क्षेत्र के नव पाषाण संस्कृति की कुछ पात्र परम्परा के बर्तनों के ऊपरी सतह पर रस्सी की छाप अथवा कछुए की हड्डी से पीट कर अलंकृत किया गया है और कुछ की ऊपरी सतह को खुरदरा बनाया गया है। डोरी छाप पात्र इस संस्कृति के विशिष्ट पात्र हैं। ये पात्र हल्के लाल रंग के तथा मोटी गढ़न के हैं। कुछ पात्रों के ऊपरी सतह को घोटकर चिकना और चमकीला बनाया गया है। पात्रो को घोटकर चिकना बनाने की प्रथा से दोनों ही संस्कृतियों का परिचय था।

मध्य गंगा घाटी की नव पाषाणिक संस्कृति की मुख्य पात्र परम्परा लाल रंग की है, लेकिन भूरे, काले, और कृष्ण लोहित पात्र भी मिलते हैं। एक ही तरह के घड़े और कटोरे तथा टोटीदार बर्तन दोनो सस्कृतियों से प्राप्त हुए हैं। इसके अलावा विन्ध्य क्षेत्र के नव पाषाणिक पुरास्थलो से गहरे अथवा छिछले कटोरे, थाली तथा हाण्डी उल्लेखनीय हैं और मध्य गंगा घाटी के चिरांद पुरास्थल से ओष्ठयुक्त कटोरे, छिद्रयुक्त और गोड़े युक्त कटोरे, साधार कटोरे, चम्मच, कलछी आदि मिले हैं।

बर्तनो पर अलंकरण करने की परम्परा दोनों क्षेत्रों मे मिलती है। विन्ध्य क्षेत्र में पट्टी चिपकाकर आड़ी बेड़ी रेखाओं तथा उत्कीर्णन द्वारा बर्तनों पर अलंकरण किया गया है। यहां से कोई भी चित्रित पात्र नही मिले हैं। जबकि मध्य गंगा घाटी में अलंकरण अभिप्रायों में पांच से सात तिरछी रेखाएं, संकेन्द्रित अर्द्धवृत्त एवं वृत्त, लहरिया आदि से किया गया है। चिरांद में नव पाषाण काल में पात्रों को पकाने के बाद चित्रित किया जाता था। लेकिन विन्ध्य क्षेत्र में पात्रों को पकाने के बाद चित्रित करने की परम्परा नहीं थी और न ही उन्हें पकाने के बाद खरोच कर अलंकृत.ही किया गया था।

चिरांद में सेलेटी और कृष्ण लोहित पात्रो को पकाने के बाद गैरिक रंग से चित्रकारी की गयी थी।

चिपकवा तथा उत्कीर्ण अलंकरण बनाने की परम्परा दोनो क्षेत्रो में मिलते हैं। टोंटीयुक्त बर्तनों का प्रयोग सम्भवत. पानी और अन्य द्रव्य पदार्थों के लिए किया जाता रहा होगा, जबकि सकरे मुंह वाले बड़े बर्तन अनाजों के संग्रह के लिए किये जाते रहे होगे। चिरांद के उत्खनन से प्लेट या तश्तरी जैसे बर्तनो की संख्या कम है जबकि कटोरे, हाण्डी और टोटीदार बर्तन अधिक है। इस आधार पर यह अनुमान किया गया है कि इस क्षेत्र का नव पाषाण कालीन सस्कृति का मानव अपने भोजन में तरल पदार्थों का अधिक प्रयोग करता था। उपरोक्त विवरण से यही प्रतीत होता है कि चिरांद की नव पाषाणिक सस्कृति अधिक विकसित है जबकि विन्ध्य क्षेत्र की यह संस्कृति अभी भी शैशवावस्था में है।

उपकरण :

मध्य गंगा घाटी एवं विन्ध्य क्षेत्र के नव पाषाणिक संस्कृति के उपकरणों के तुलनात्मक अध्ययन से इनके पारस्परिक सम्बन्ध के बारे मे कुछ महत्वपूर्ण तथ्य प्राप्त होते हैं। दोनो ही क्षेत्रों के नव पाषाणिक पुरास्थलों के उत्खनन से नव पाषाणिक छोटे आकार तथा गोल समानान्तर, त्रिभुजाकार, आयताकार कुल्हाड़ियां प्राप्त हुई है (रेखाचित्र संख्या 26)। प्रस्तर उपकरणों में कुल्हाड़ियों का प्रमुख स्थान है। दक्षिण एशिया मे विन्ध्य क्षेत्र से 1972 मे सर्वप्रथम कोलडिहवा नामक पुरास्थल से नव पाषाणिक उपकरण प्राप्त हुए थे।[1] विन्ध्य क्षेत्र से काफी संख्या में नव पाषाणिक कुल्हाड़ियाँ, बसुली एव गदाशीर्ष आदि विभिन्न पुरास्थलों से प्राप्त हुए हैं।

क्वार्टजाइट, ग्रेनाइट तथा बेल्साट आदि पत्थरों के बने सिल-लोढ़े, हथौड़े, गोफन पाषाण आदि प्रस्तर उपकरण दोनो क्षेत्रो से प्राप्त हुए हैं।

चिरांद से प्राप्त लघु पाषाण उपकरणों मे समानान्तर बाहु वाले ब्लेड, स्क्रेपर, प्वाइन्ट, ब्लेड, खांचों वाले ब्लेड, चन्द्रिका, खुरचनी, बाण, छिद्रक, तथा बेधक आदि हैं और विन्ध्य क्षेत्र के नव पाषाणिक स्थलों से प्राप्त लघु पाषाण उपकरणो मे समानान्तर द्विबाहु ब्लेड, भूथड़े पार्श्व ब्लेड, दन्तुरित ब्लेड, तिरछा पार्श्वान्त ब्लेड, शर, बेधक, स्क्रेपर, त्रिभुज, समलम्ब चतुर्भुज, अर्द्धचान्द्रिका तथा ट्रांचेट आदि हैं। गंगा घाटी मे दन्तुरिक ब्लेड, त्रिभुज, समलम्ब चतुर्भुज आदि का अभाव है। विन्ध्य क्षेत्र से लघुपाषाण उपकरण जिसमें उपकरणो के अतिरिक्त ब्लेड, कोर तथा अनुपयोजित प्रस्तर सामग्री भी प्राप्त हुए हैं।[2] विन्ध्य क्षेत्र का नवपाषाणिक मानव अपने उपकरणों के निर्माण के

1. *इण्डियन आर्कियोलॉजी : ए रिव्यू*, 1972-73, पृष्ठ 25-26
2. वर्मा, आर0 के0 एवं नीरा वर्मा, 2001, *पुरातत्व अनुशीलन*, पृष्ठ 150

1
2
3
4
5
6
7
8
9
10
11
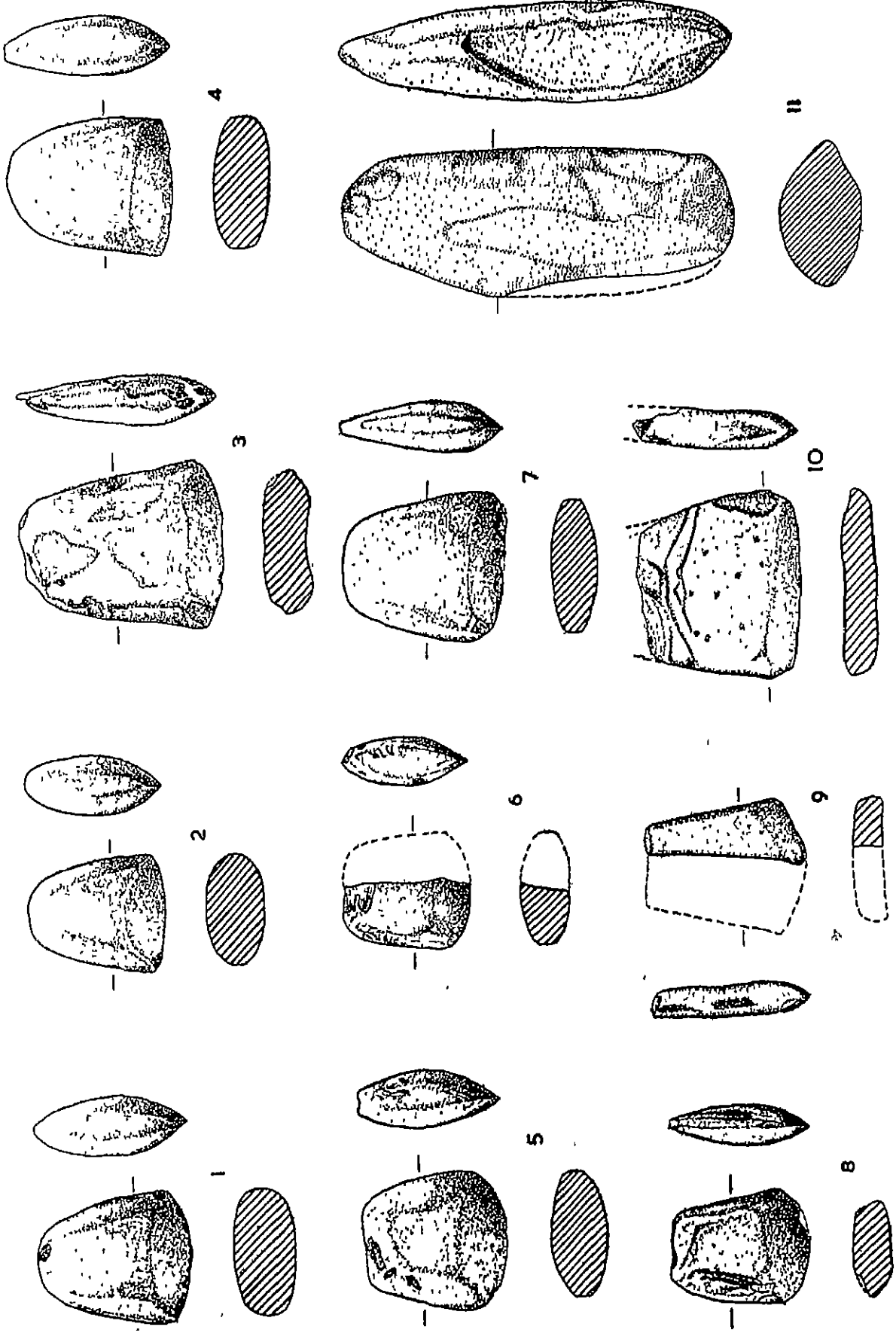
लिए चाल्सेडनी, चर्ट, अगेट, कार्नेलियन, क्वार्टज तथा क्रिस्टल आदि पत्थरों का प्रयोग करते थे। जबकि चिरांद में चाल्सेडनी, जैस्पर, अगेट, तथा चर्ट आदि पत्थरो का उपयोग किया गया है। यह आलेख है कि विन्ध्य क्षेत्र के आवासीय स्थल से कोई भी उद्योग स्थल नहीं मिले हैं।

मध्य गंगा घाटी की नव पाषाणिक पुरास्थलो से हड्डी एव शृंग पर बने उपकरण बहुत अधिक सख्या मे प्राप्त हुए हैं जो इस सस्कृति की प्रमुख विशेषता है। जबकि विन्ध्य क्षेत्र के नव पाषाणिक पुरास्थलो से हड्डी के बने उपकरणो की संख्या कम है। महगड़ा से एकल-स्कंधित हड्डी के शर प्राप्त हुए हैं (छायाचित्र संख्या 29)। हड्डी के उपकरणों से मध्य गंगा घाटी मे नव पाषाण कालीन मानव के विशिष्ट उद्योगों का पता चलता है क्योकि गंगा के मैदान में उपकरणों के निर्माण के लिए पत्थरो की कमी थी, इसलिए बड़े पैमाने पर पशुओं की हड्डियो (छायाचित्र संख्या 30) और सींगों से उपकरणो का निर्माण किया गया।

हड्डी के बने उपकरणों मे छिद्रक, छेनी, हथौड़ा, सुई, प्वाइंट, पुच्छल एवं खांचेदार बाण, कुदाल, बरमे, भालाग्र और वाणाग्र आदि प्राप्त हुए हैं। बैल के एक कंधे की हड्डी का प्रयोग बेलचे के रूप मे किया गया है। चम्पा, सोनपुर, मनेर, ताराडीह, खैराडीह और नरहन से हड्डियो की नोके और वाणाग्र बहुत बड़ी संख्या मे मिले हैं।[1] उपकरणों का उपयोग अधिकतर शिकार मे किया जाता था। इनका खेती मे जमीन खोदने के लिए इस्तेमाल होता था। हड्डी की एक निहाई भी मिली है (छायाचित्र संख्या 31)।

कलात्मक पुरावशेष :

विन्ध्य क्षेत्र एवं मध्य गंगा घाटी के नव पाषाण कालीन लोगों के कलात्मक अभिरुचि को अभिव्यक्त करने वाले पुरावशेषों मे उपरत्नों पर बने सुन्दर मनके प्राप्त हुए हैं। चिरांद से मनको (छायाचित्र संख्या 32) के अतिरिक्त उपरत्नों पर बने लटकन, टेराकोटा और हड्डियों की चूड़ियाँ एवं पशु-पक्षी तथा नाग की मृण्मूर्तियों का उल्लेख किया जा सकता है तथा महगड़ा से छिद्रयुक्त चकरी, गोलाकार मिट्टी की गुरिया छिद्रयुक्त सीपी की लटकन हड्डी के मनके आदि प्राप्त हुए हैं।[2]

---

1. वर्मा, आर० एस०, 1998, *मध्य गंगा क्षेत्र में राज्य की संरचना*, पृष्ठ 14
2. वर्मा, आर० के० और नीरा वर्मा, 2001, पुरातत्व अनुशीलन, पृष्ठ 150-154

1 2 3
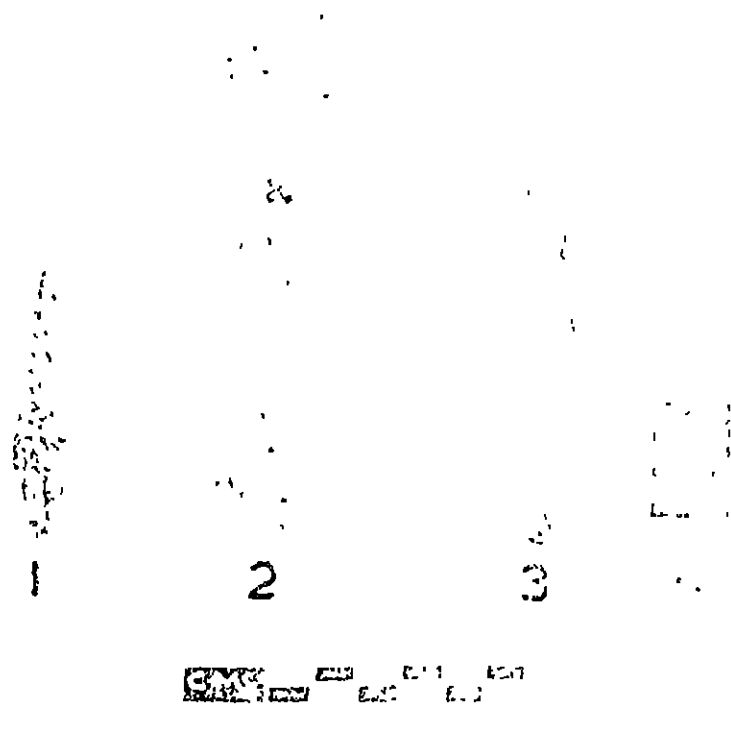
छायाचित्र संख्या 29 - महगड़ा : हड्डी के शर, मनके

छायाचित्र संख्या 30 - चिरांद : हड्डी के अवशेष

छायाचित्र संख्या 31 - चिरांद : कटाई, खनाई के उपकरण
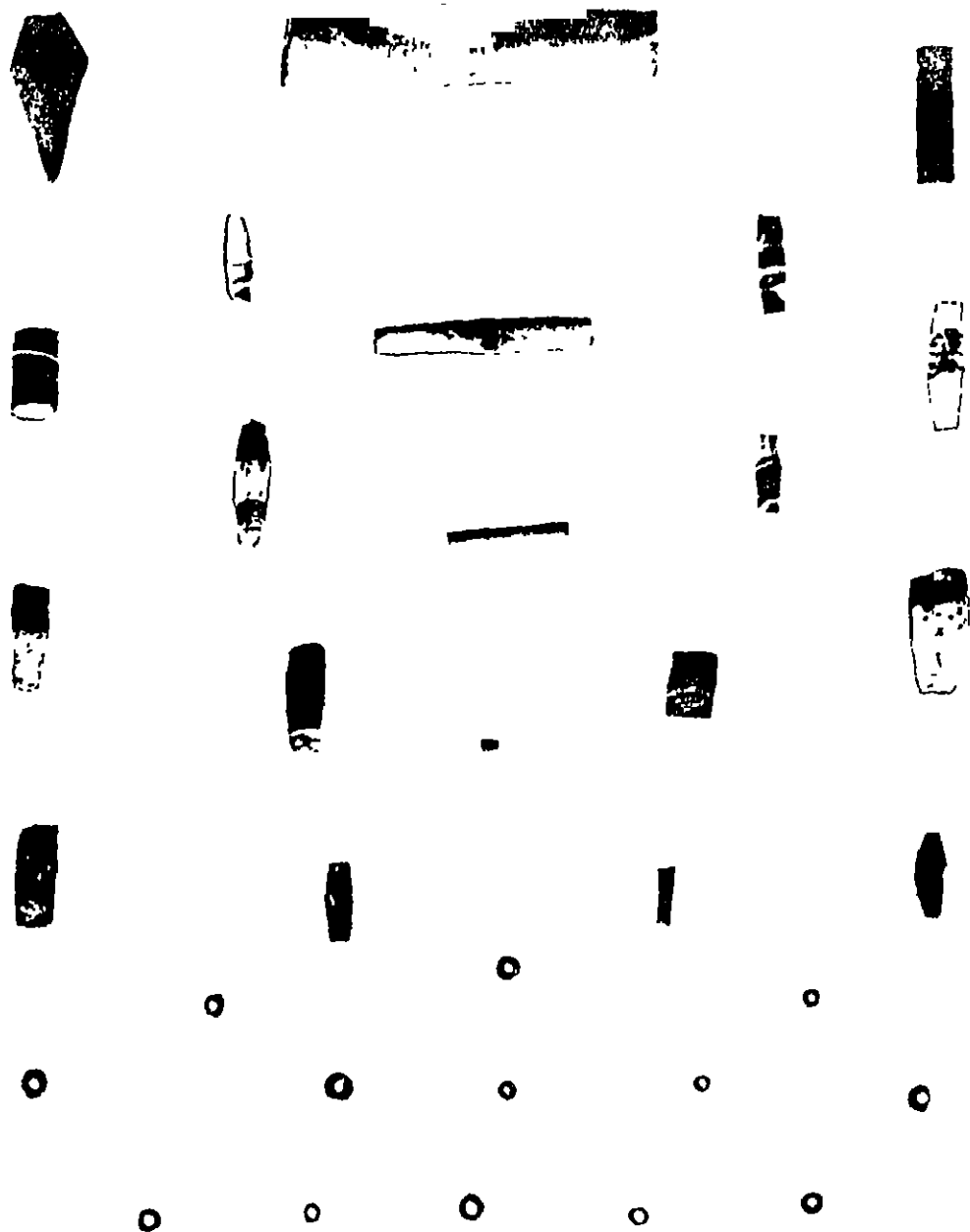
छायाचित्र संख्या 32 - चिरांद : मनके

कृषि :

कोलडिहवा, महगड़ा तथा टोकवा आदि स्थलों से धान के प्रमाण मृद्भाण्डो के सालन मे तथा कार्बनीकृत रूप मे मिले हैं और चिरांद से भी जली मिट्टी के टुकड़ो में धान की भूसी के प्रमाण मिले हैं। इन साक्ष्यो के आधार पर कहा जा सकता है कि दोनों क्षेत्रो के नव पाषाणिक संस्कृतियो के लोग चावल से परिचित थे। चावल ही इनका मुख्य भोजन था। महगड़ा से प्राप्त मृद्भाण्डो के ठीकरों पर धान के दानो, भूसी तथा पुआल के कार्बनीकृत अवशेष चिपके हुए मिले हैं (छायाचित्र संख्या 33)। कोलडिहवा के उत्खनन् की महत्वपूर्ण खोज 'पालतू' प्रकार का चावल था, जिसका परीक्षण विष्णुमित्रे तथा ते-जु-चांग ने किया था। इनके अध्ययन के आधार पर यहां से प्राप्त धान ओरिजा सताइवा (Oryza Sativa) प्रकार का था। कोलडिहवा और इन्दारी से ओरिजा सताइवा प्रकार की धान की भूसी मिली है जिससे धान की खेती का प्रमाण मिलता है। तिथि क्रम के आधार पर इसे चावल की खेती का प्राचीनतम् प्रमाण कहा जा सकता है। यह वेवीलाव (Vavilov) की इस धारणा की भी पुष्टि करता है कि भारत चावल की जन्मस्थली हो सकती है। चिरांद के नव पाषाणिक लोग गेहू और मूंग से भी परिचित थे।

मिट्टी के बने हुए घड़े और मटके जिसमें अनाज रखा जाता था, अप्रत्यक्ष रूप से कृषि के प्रचलन का संकेत देते हैं। ऐसा लगता है कि चिरांद के नव पाषाणिक मानव को कृषि चक्र के बारे में जानकारी थी क्योंकि खरीफ की फसल चावल और रबी की फसल गेहूँ और मूँग के प्रमाण मिले हैं। बरसात के बाद नम भूमि मे बीज बो दिया जाता था। फसल पक जाने पर पाषाण की हंसियाँ से काटा जाता था। कृषि प्राथमिक प्रकार की थी।

महगड़ा के उत्खनन से बैर की गुठलियाँ भी प्राप्त हुई हैं जिसका प्रयोग खाद्य सामग्री के रूप मे होता रहा होगा।

खाद्यान्न इनकी अर्थव्यवस्था मे अहम् भूमिका का निर्वाहन करते थे। इसकी पुष्टि यहां से प्राप्त सिल-लोढ़े से किया जा सकता है। दोनों क्षेत्रों से जानवरों की जली हड्डियाँ प्राप्त हुई हैं इससे पता चलता है कि मांस भी इनकी भोज्य सामग्री का एक हिस्सा रहा होगा।

छायाचित्र संख्या 33 - महगड़ा : चावल का उल्टा भाग, सीधा भाग

पशुपालन :

मध्य गंगा घाटी एवं विन्ध्य क्षेत्र की नव पाषाणिक पुरास्थलो के उत्खनन से पशुओं की हड्डियाँ प्राप्त हुई हैं। इसके आधार पर कहा जा सकता है कि पशुपालन भी इनकी अर्थव्यवस्था का प्रमुख साधन था। ये लोग भेड़, बकरी, भैंस आदि मावेशियो को पालते थे।

पशुपालन के सम्बन्ध में महगड़ा से प्राप्त पशुबाड़ा विशेष उल्लेखनीय है (छायाचित्र संख्या 34)। आयताकार पशु बाड़े में मावेशियो में बकरी/भेंड़ के खुरों के निशान मिले हैं (छायाचित्र संख्या 35)। यह 12.5 × 7.5 (उत्तर-दक्षिण) लम्बा चौड़ा था। इसमें तीन प्रवेश द्वार मिले हैं। बाड़े के ऊपर किसी भी प्रकार का छाजन नहीं था। बाड़े के भीतर की मिट्टी अपेक्षाकृत अधिक काली थी। इस बाड़े के अन्दर से कोई उपकरण अथवा मृद्भाण्ड के अवशेष नहीं मिले हैं।

चिरांद से हाथी, बारहसिंघा, हिरण, गैंडे की हड्डियाँ प्राप्त हुई हैं। यहाँ के लोग इन जानवरो का शिकार करते रहे होंगे। क्योकि हड्डी और शृंगो (बारहसिंघा तथा हिरण) के बने उपकरण से भी पता चलता है कि आखेट का इनके जीवन में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रहा होगा। बिन्ध्य क्षेत्र के नव पाषाणिक पुरास्थलों से भी जंगली सुकर, मछली, चिड़ियाँ आदि की हड्डियाँ प्राप्त हुई है। महगड़ा से कछुआ की खोपड़ी भी प्राप्त हुई है। इसके आधार पर कहा जा सकता है कि विन्ध्य क्षेत्र के नव पाषाणिक मानव इन जानवरो का शिकार करता था (छायाचित्र संख्या 36)।

कालक्रम :

उपलब्ध कार्बन तिथियो के आलोक में चिरांद की नव पाषाण संस्कृति विन्ध्य क्षेत्र की सस्कृति के काफी बाद की प्रमाणित होती है। विन्ध्य क्षेत्र के उत्खनित स्थलों कोलडिहवा, महगड़ा तथा कुन्झुन से अनेक तिथियां उपलब्ध हैं। कोलडिहवा से चार तिथियां 6570 ± 210 ई0 पू0, 4530 ± 185, ई0 पू0, 1440 ± 150 ई0 पू0, 1400 ± 100 ई0 पू0 है इन तिथियों के आधार पर यहाँ पर नव पाषाणिक संस्कृति को 3530 – 3335 से 1565 – 1265 ई0 पू0 के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

चिरांद के नव पाषाणिक धरातल से कुल 9 कार्बन तिथियाँ प्राप्त हुई हैं जिनमें से तीन तिथियाँ 1580 ± 110, 1675 ± 140 और 1755 ± 155 ई0 पू0 को उपयुक्त माना गया है।
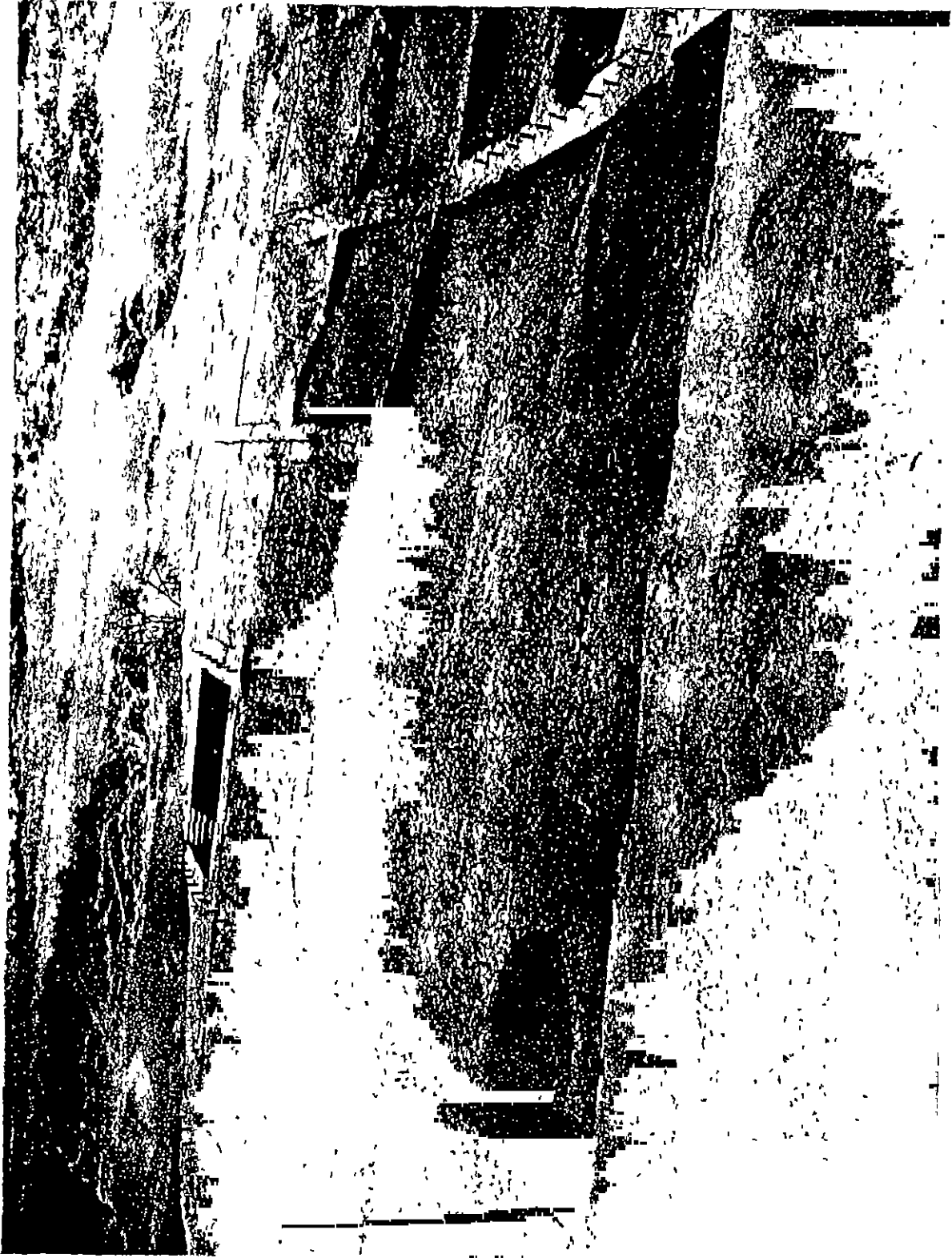
छायाचित्र संख्या 34 - महगड़ा : पशु बाड़ा
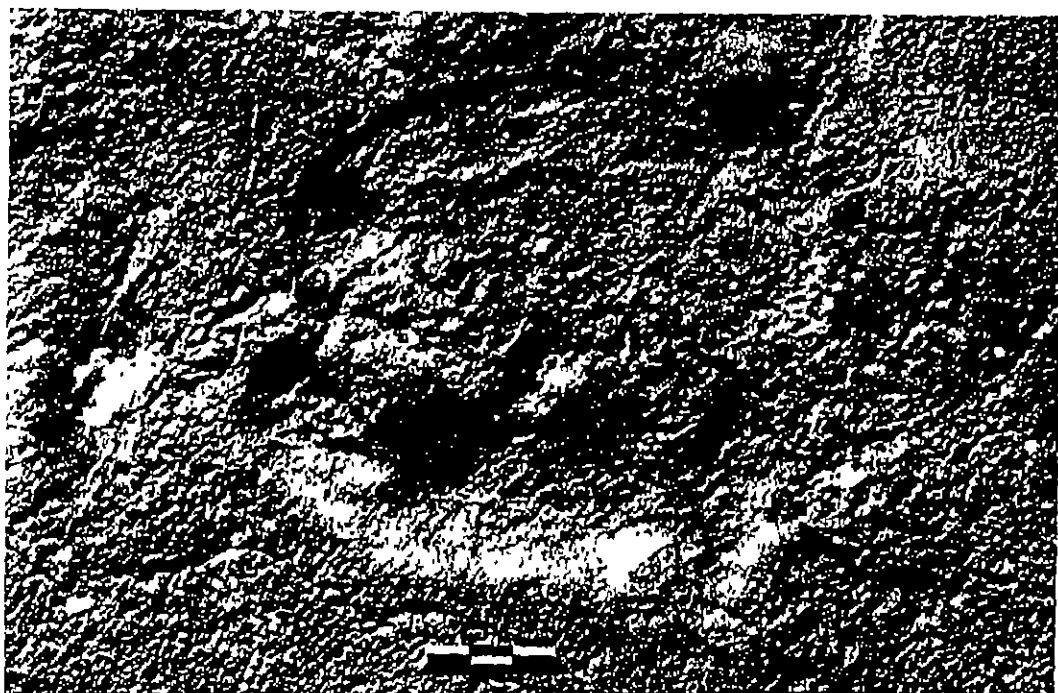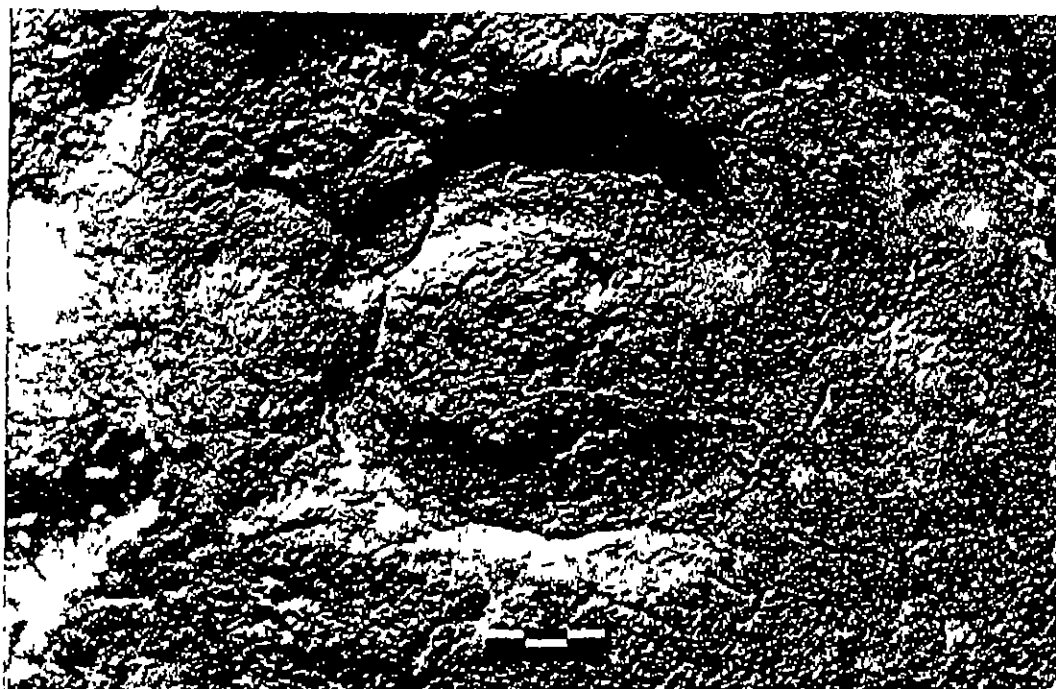
छायाचित्र संख्या 35 - महगड़ा : पशु खुर के चिन्ह

छायाचित्र संख्या 36 - महगड़ा : जानवरों की हड्डियां

सेनुवार के नवपाषाणिक और ताम्र पाषाणिक धरातलों के संधि स्थलो से 1770 ± 110 ई0 पू0 1500 ± 110 ई0 पू0, 1660 ± 120 ई0 पू0, 1440 ± 120 ई0 पू0 तिथियाँ प्राप्त हुई हैं। इस आधार पर चिरांद की नव पाषाण कालीन संस्कृति का प्रारम्भ द्वितीय सहस्राब्दी के प्रारम्भिक चरण मे रखा जा सकता है (1900 से 1600)।

अनेक प्रकार के सास्कृतिक पुरावशेष जैसे हस्तनिर्मित मृद्भाण्ड, आखेट, पशुपालन करना, खाद्य उत्पादन उपकरण, आभूषण एवं झोपड़ियों वाले अधिवास यह स्पष्ट संकेत करते हैं कि विन्ध्य क्षेत्र एवं गगा मैदान की नव पाषाणिक समाज पूर्णतः आत्म निर्भर था।

1 मण्डल डी0, 1972, *रेडियो कार्बन डेट्स एण्ड इण्डियन आर्कियोलॉजी*, पृष्ठ 106-116

2 वर्मा, आर0 के0, नीरा वर्मा, 2001, *पुरातत्व अनुशीलन*

अध्याय छः

विन्ध्य क्षेत्र एवं मध्य गंगा के मैदान की ताम्र पाषाणकालीन संस्कृतियां

- विन्ध्य क्षेत्र एवं मध्य गंगा घाटी के उत्खननोपरान्त मिले स्थलों का विस्तृत विवरण एवं अन्तर्सम्बन्ध
- विन्ध्य क्षेत्र के उत्खनित स्थल
- मध्य गंगा घाटी के उत्खनित स्थल
- विन्ध्य क्षेत्र एवं मध्य गंगा घाटी की ताम्र पाषाण संस्कृतियों के अंतर्सम्बन्धों पर प्रकाश

विन्ध्य क्षेत्र एवं मध्य गंगा घाटी के उत्खननोपरान्त मिले स्थलों का विस्तृत विवरण एवं अन्तर्सम्बन्ध

विगत दशको मे विन्ध्य क्षेत्र में किये गये अन्वेषणो से ताम्र पाषाण कालीन संस्कृति के बहुत से स्थल प्रकाश में आये है (मानचित्र सख्या 8)। इन स्थलो में चन्दौली जिले के 'ककोरिया', 'कौड़िहार' मिर्जापुर जनपद मे 'मघा', 'टोकवा' तथा इलाहाबाद जनपद के मेजा तहसील मे 'कोलडिहवा' आदि हैं। ककोरिया की ताम्र पाषाणिक संस्कृति के लोग बृहत्पाषाणिक समाधियो के भी निर्माता थे। इस क्षेत्र की पात्र परम्पराएं मध्य गंगा घाटी की तरह की ही हैं। कोलडिहवा मे कुछ पात्रो को चित्रित भी किया गया है। यहां से पुच्छल तथा छिद्रयुक्त वाणाग्र भी अत्यधिक संख्या में प्राप्त हुए हैं। बर्तनों के आकार भी दोनों क्षेत्रों मे एक जैसा है। लघु पाषाण उपकरण जिनमें 'दन्तुर कटक ब्लेड' भी सम्मिलित हैं दोनों ही क्षेत्रो मे प्राप्त होते है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि विन्ध्य क्षेत्र तथा मध्य गंगा घाटी और निम्न गंगा घाटी की ताम्र पाषाणिक संस्कृति मूल रूप से एक ही संस्कृति का विस्तार है।[1]

विन्ध्य क्षेत्र के उत्खनित स्थल

विन्ध्य क्षेत्र के ताम्र पाषाणिक पुरास्थलों मे ककोरिया, मघा, टोकवा, कोलडिहवा आदि के उत्खनन के परिणामस्वरूप प्रागैतिहासिक मानचित्र पर ताम्र पाषाणिक संस्कृति का स्वरूप स्पष्ट होने लगा है।

ककोरिया (25^{0} 3' उत्तरी अक्षांश, 83^{0} 11' 0'' पूर्वी देशान्तर) :

ककोरिया नामक ताम्र पाषाणिक पुरास्थल चन्दौली जिले की चकिया तहसील मे स्थित है। हथिनिया पहाड़ी के ढ़ाल पर बृहत्पाषाणिक समाधियों से जिस प्रकार के मृद्भाण्ड प्राप्त हुए हैं। उनके समरूप पात्र-खण्ड इस पुरास्थल पर बिखरे हुए दिखाई पड़े हैं। यह क्षेत्र समाधि क्षेत्र के पश्चिम में चन्द्रप्रभा नदी के दोनों किनारों पर फैला हुआ है।

ककोरिया पुरास्थल पर 1962-63 और 1963-64 के मध्य इलाहाबाद विश्वविद्यालय के

---

1 मिश्रा, वी० डी०, 1977, चैल्कोलिथिक कल्चर्स ऑफ दि विन्ध्याज एण्ड दि सेन्टर गगा वैली, *इण्डियन प्रीहिस्ट्री*, 1980 (सम्पा०) मिश्रा, वी० डी० एव पाल, जे० एन०

मानचित्र संख्या 8 - विन्ध्य क्षेत्र में ताम्र पाषाण कालीन स्थल

प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग की ओर से सीमित क्षेत्र में उत्खनन कराया गया था। जिसके फलस्वरूप लगभग एक मीटर मोटे सांस्कृतिक निक्षेप में महापाषाणिक समाधि की एकांकी संस्कृति के विषय मे जानकारी प्राप्त हुई है।

ककोरिया की समाधियों तथा आवास स्थल के उत्खनन से लौह उपकरण नहीं मिले है। यहां से लघु पाषाण उपकरण मिलते हैं और कभी-कभी तांबे के उपकरण, इसलिए इस पुरास्थल की समाधियों को ताम्र पाषाणिक काल की बृहत्पाषाणिक समाधियाँ कहा गया है। बारह समाधियों को उत्खनन के लिए चुना गया जिनमें से आठ संगोरा समाधियाँ, तीन सिस्ट समाधियाँ और एक संगोरा समाधि के अन्दर स्थित सिस्ट समाधि थी। इस प्रकार इस पुरास्थल के प्रमुख समाधि प्रकारो में संगोरा और सिस्ट समाधियाँ प्रमुख हैं।

(1) संगोरा समाधियाँ :

ककोरिया की संगोरा समाधियों से पूर्ण मानव कंकाल नहीं मिले है बल्कि इन कब्रो से मनुष्यो की कुछ जीर्ण-शीर्ण हड्डियाँ मात्र प्राप्त हुई हैं। ऐसी स्थिति में इन्हे आंशिक शवाधान माना जा सकता है। संगोरा समाधि के निर्माण के लिए जमीन में 1.27 मीटर गहरा आयताकार गड्ढा खोदा जाता था। संगोरा समाधियो से अन्त्येष्टि सामग्रियाँ प्राप्त हुई हैं। जिसमें काले लेप वाले पात्र, लघु पाषाण उपकरण, जानवरो की हड्डिया (एक कब्र मे सोने की बनी एक अंगूठी) आदि रखने के बाद कब्र को गड्ढा खोदते समय निकाली हुई मिट्टी से भर दिया जाता था। अन्त्येष्टि सामग्री रखने का कोई निश्चित क्रम नही मिलता है। कभी गड्ढे के किनारे पर अथवा मध्य भाग में और समाधि संख्या VIII में नीचे मिट्टी के पात्र रखे हुए मिले हैं। समाधि को भर देने के बाद उसके ऊपर तथा अगल-बगल पत्थर के टुकड़ों का ढेर लगा दिया जाता था। बेलन की सहायक अदवा की घाटी मे सगोरा समाधियाँ 40 सेमी से 1.35 मीटर ऊँची मिलती हैं, इनका व्यास 4.25 मीटर से 5.45 मीटर तक मिलता है।

(2) सिस्ट समाधियाँ :

विन्ध्य क्षेत्र में सिस्ट समाधियो के निर्माण के लिए एक नवीन विधि का प्रयोग किया गया है। सिस्ट के चारों ओर दीवारों का निर्माण चार शिलाओं से न करके पत्थर के छोटे-छोटे टुकड़ो से किया गया है। सिस्ट समाधियों का थोड़ा-सा हिस्सा जमीन के ऊपर झांकता हुआ दिखाई पड़ता है। जो दक्षिण भारत की समाधि निर्माण विधि से भिन्न है। ककोरिया की सिस्ट समाधियों को ढँकने के

लिए शीर्ष-शिला के प्रयोग के प्रमाण नही मिले हैं। बांदा जिले में ओहन और झूरी नदियो की घाटियो से भी इसी प्रकार की समाधियाँ मिली हैं। अदवा की घाटी मे जो सिस्ट समाधियाँ मिली है, उनकी लम्बाई 1.05 मीटर से 2.25 मीटर और चौड़ाई 50 सेमी से 1.45 मीटर मिलती हैं। अदवा घाटी की सिस्ट समाधियों की शीर्ष-शिलाएँ (ढक्कन) अपने मूल स्थान से थोड़ा हटाई हुई मिली हैं। विन्ध्य क्षेत्र की सिस्ट समाधियों की शिलाओं मे छिद्र अथवा गवाक्ष नही मिलते हैं। कतिपय उदाहरणों में संगोरा समाधि के अन्दर सिस्ट समाधि के साक्ष्य मिले हैं।

(3) मेनहीर :

विन्ध्य क्षेत्र बृहत्पाषाणिक समाधियो का तीसरा प्रमुख प्रकार मेनहीर है। इस प्रकार की समाधियाँ मुख्य रूप से बांदा जिले में मंदाकिनी और पयस्वनी की घाटी मे मिली हैं। इनका अभी तक उत्खनन नही हुआ है इसलिए सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य के विषय में निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता है।

ककोरिया के आवास-क्षेत्र में जो चार खन्तियां डाली गई थी उनके निक्षेप की औसत मोटाई लगभग 1 मीटर है। कब्रों तथा आवास क्षेत्र से एक ही तरह के मिट्टी के बर्तन प्राप्त हुए हैं। कृष्ण लोहित, कृष्ण लेपित एवं लाल रग के पात्र परम्परा मुख्य रूप से मिले है (रेखाचित्र संख्या 27)। इन पात्रो पर चित्रण के साक्ष्य नहीं मिलते हैं। इस काल के मृद्भाण्ड चाक पर बने है। लाल रंग के बर्तनों में विविधता दिखायी देती है। बर्तनों के ऊपर अलंकरण नहीं मिलते हैं। बर्तनों के निर्माण में सफाई मिलती है तथा उन्हें अच्छी तरह से पकाया गया है। ककोरिया के कतिपय पात्र प्रकार मध्य भारत के ताम्र पाषाणिक संस्कृति के पात्र प्रकारो से मिलते-जुलते हैं। ककोरिया और कोलडिहवा की पात्र-परम्परा के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ककोरिया की पात्र परम्परा प्राचीनतर है। पात्रों में कटोरे, तसले, कलश, घड़े आदि प्रमुख हैं।

विन्ध्य क्षेत्र के ताम्र पाषाणिक पुरास्थल ककोरिया के आवासीय स्थलों में जो उत्खनन हुआ, वह था तो सीमित दायरे में, लेकिन तत्कालीन लोगों के आवासीय योजना के बारे मे महत्वपूर्ण जानकारियाँ मिली हैं। ताम्र पाषाण काल मे यहाँ के लोग गोलाकार या अण्डाकार झोपड़ियो में रहते थे। घरों की दीवारें बांस-बल्ली से बनाते थे तथा छाजन घास-फूस का होता था। इस काल की झोपड़ियों का आकार पूर्ववर्ती झोपड़ियों से बड़ा था। ककोरिया के उत्खनन से भी मिट्टी से बने मकानो के प्रमाण प्राप्त हुए हैं।
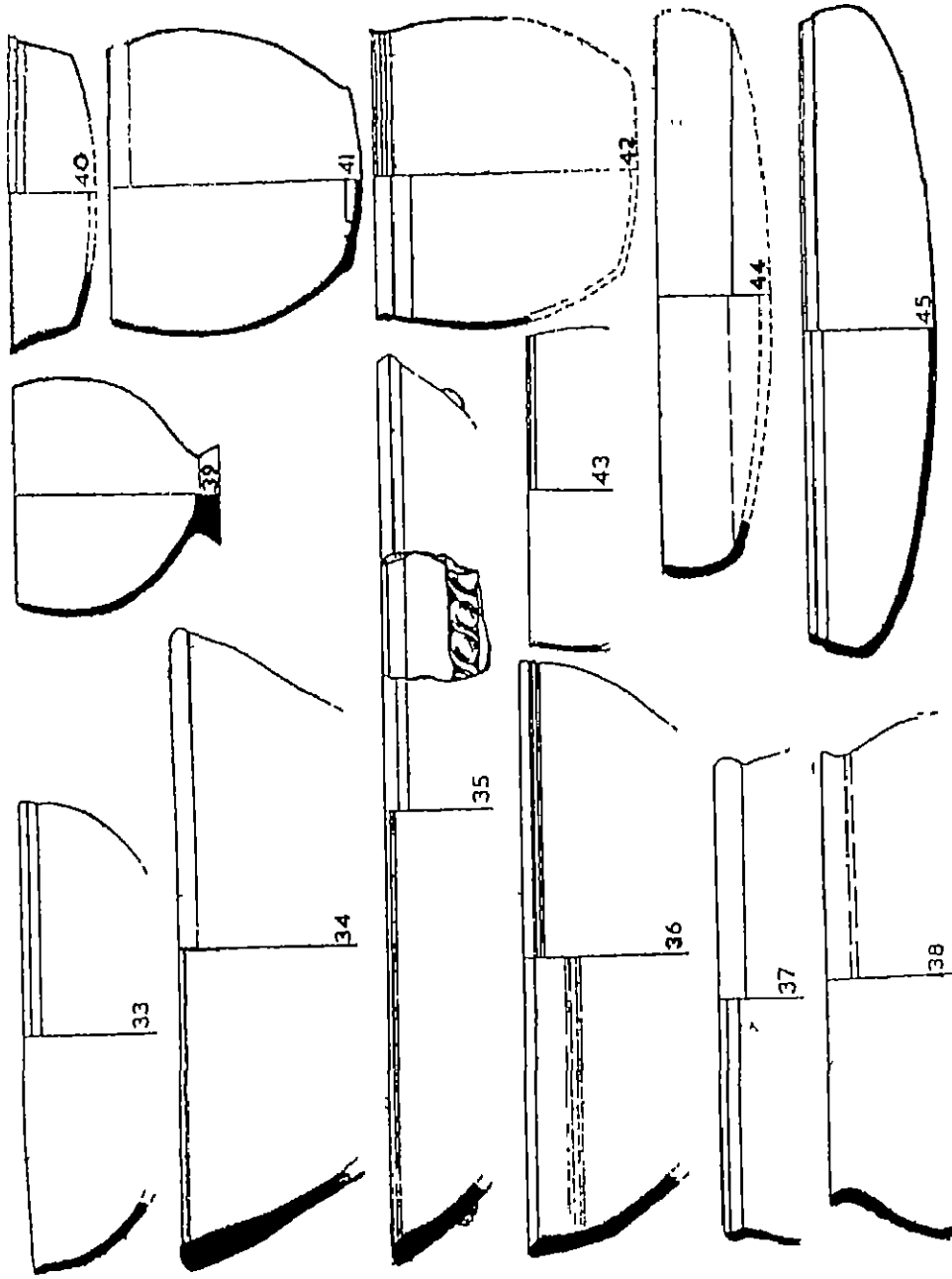
रेखाचित्र संख्या 27 - कक्कोरिया : काले व लाल पात्र, काले व स्लिप्ड पात्र

विन्ध्य क्षेत्र की ताम्र पाषाणिक पुरास्थल ककोरिया के उत्खनन से लघु पाषाण उपकरण बड़ी संख्या में प्रकाश मे आये हैं जिससे यह संकेत मिलता है कि तत्कालीन जीवन में इन उपकरणों की उपयोगिता बढ़ गयी थी। इस काल मे लघु पाषाण उपकरणों के साथ-साथ हड्डी के बने हुए उपकरण भी मिलते हैं। लोहे के उपकरण नहीं मिले हैं। तांबे के पुरावशेषो की संख्या बहुत कम है। उपरत्नो पर बने मनके भी प्राप्त हुए है।

इनकी अर्थव्यवस्था कृषि एवं पशुपालन पर आधारित थी। धान की खेती इस काल मे भी होती रही, क्योकि चावल इनका मुख्य भोजन था। गाय, बैल, भैंस, भेड़, बकरी आदि जानवरों की जली हड्डियाँ प्राप्त हुई हैं।[1]

कोलडिहवा (24° 54' 30'' उत्तरी अक्षांश, 82° 2' पूर्वी देशान्तर) :

कोलडिहवा इलाहाबाद से दक्षिण पूर्व दिशा मे 85 किलोमीटर की दूरी पर मेजा तहसील में बेलन नदी के बाये तट पर स्थित है। कोलडिहवा के उत्तर-पूर्व मे लगभग 500 मीटर की दूरी पर आयताकार एक टीला है जो 500 × 200 मीटर (पूर्व-पश्चिम) विस्तृत रहा होगा, किन्तु बेलन नदी तथा उसके सहायक नालो के निरन्तर अपरदन के फलस्वरूप अब यह अनेक छोटे-छोटे टीलों मे विभक्त हो गया है।[2]

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग के बी० बी० मिश्रा द्वारा सन् 1964 में किये गये पुरातात्विक अन्वेषण के फलस्वरूप कोलडिहवा का टीला प्रकाश में आया। यहां पर सन् 1972-73 एवं 1973-74 मे स्वर्गीय जी० आर० शर्मा के निर्देशन मे बी० बी० मिश्र तथा रंजीत सिंह के द्वारा उत्खनन कराया गया। इसके पश्चात् सन् 1974-75 एवं 1975-76 में डी० मण्डल तथा जे० एन० पाल ने उत्खनन कार्य पूरा किया। पूर्वी तथा दक्षिणी टीलों पर नवपाषाण काल से लेकर लौह काल तक के पुरावशेष प्राप्त हुए हैं। पश्चिमी टीले पर ताम्र पाषाण काल के मानव आवास के साक्ष्य मिले हैं। कोलडिहवा के पूर्वी टीले पर 1.90 मीटर मोटा जो सांस्कृतिक जमाव प्रकाश मे आया है उसे पांच स्तरों में विभाजित किया गया है। यहां पर तीन संस्कृतियां मिली हैं जो इस प्रकार हैं :

---

1. पाण्डेय, जे० एन०, 1995, *पुरातत्व विमर्श*, पृष्ठ 494-496
2. वर्मा, आर० के० और नीरा वर्मा, 2001, *पुरातत्व अनुशीलन*, पृष्ठ 148-149

1. नवपाषाणिक संस्कृति
2. ताम्र पाषाणिक संस्कृति
3 लौह काल की संस्कृति

कोलडिहवा की दूसरी संस्कृति का सम्बन्ध ताम्र पाषाण काल से है। इस काल का कुल सास्कृतिक जमाव एक मीटर मोटा है। ताम्र पाषाण काल के मृद्भाण्ड चाक पर बने हैं तथा लाल और काले पात्र (रेखाचित्र संख्या 28), काले लेप वाले पात्र (रेखाचित्र संख्या 29) एव लाल रग के पात्र (रेखाचित्र संख्या 30) हैं । नव पाषाण काल की तुलना मे ताम्र पाषाण काल के मिट्टी के बर्तन अच्छी तरह गुंथी हुई मिट्टी से निर्मित हैं, बर्तनो के निर्माण में सफाई मिलती है तथा उनको अच्छी तरह से पकाया गया है। बहुत कम बर्तनों मे अलंकरण मिलता है। काले लेप वाले पात्र परम्परा के कुछ पात्रों पर सफेद रंग से ज्यामितीय अलंकरण अभिप्राय मिलते हैं जैसे सामानान्तर रेखाए, बिन्दु समूह एवं टेढ़ी-मेढ़ी रेखाएं मिलती हैं। प्रमुख पात्र प्रकारों में कटोरे, तसले, कलश, नांद, घड़े आदि हैं।

इस सस्कृति के लोग झोपड़ियो जैसे घरों में निवास करते थे। जिनकी दीवारें बांस-बल्ली से बनायी जाती थी और उसके ऊपर मिट्टी का मोटा लेप लगाया जाता था तथा छाजन घास-फूस का होता था। फर्श को मिट्टी कूट कर बनाया जाता था। ताम्र पाषाण काल मे कोलडिहवा के पश्चिमी टीले सहित सभी भागो से मानव आवास के साक्ष्य मिले हैं। घरों के अन्दर से चूल्हे बने हुए मिले हैं। इस काल की झोपड़ियों का आकार पूर्ववर्ती काल से बड़ा था। कोलडिहवा की एक आयताकार झोपड़ी की बड़ी भुजाएं 5.25 मीटर तथा छोटी 3.20 मीटर थी।

ताम्र पाषाणिक संस्कृति के लोग लघु पाषाण उपकरणों के साथ-साथ हड्डी के बने उपकरणों का भी उपयोग करते थे। तांबे की बनी वस्तुओं की संख्या बहुत कम है। ताबे का एक चाकू फलक उल्लेखनीय है। कोलडिहवा से मिट्टी, माणिक्य तथा अस्थि के मनके मिले हैं। प्रस्तर के सिल-लोढ़े भी प्राप्त हुए हैं।

कोलडिहवा के ताम्र पाषाण काल के पालतू पशुओं मे गाय, बैल, भैंस, भेंड़, बकरी आदि प्रमुख हैं। धान की खेती इस काल में भी होती रही। यहां की ताम्र पाषाणिक संस्कृति का कालक्रम 1500 ई0 पू0 से 800 ई0 पू0 के बीच निर्धारित किया जा सकता है।[1]

---

1 पाण्डेय, जे0 एन0, 1995, *पुरातत्व विमर्श*, पृष्ठ 523
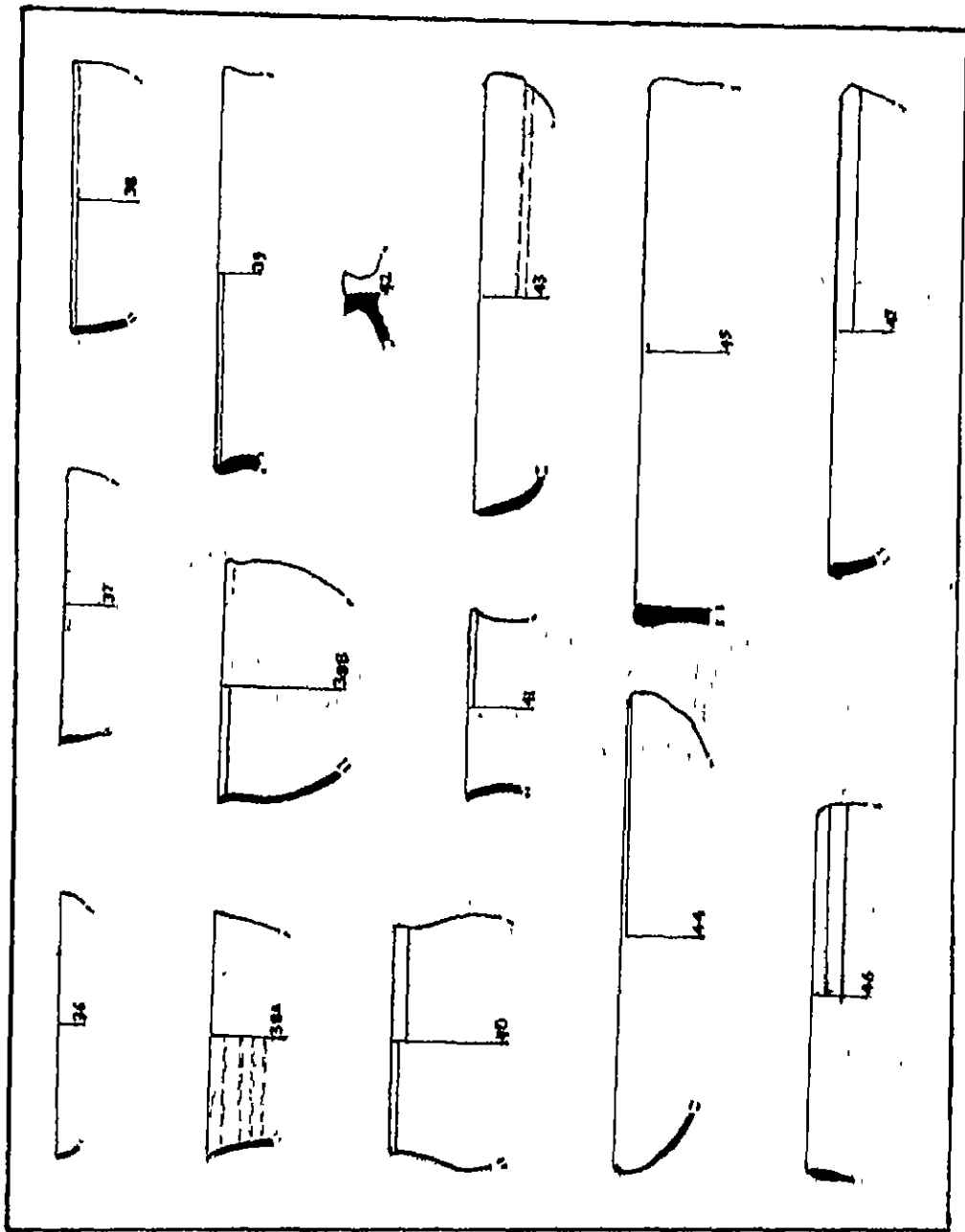
रेखाचित्र संख्या 28 - कोलडिहवा : काले और लाल पात्र
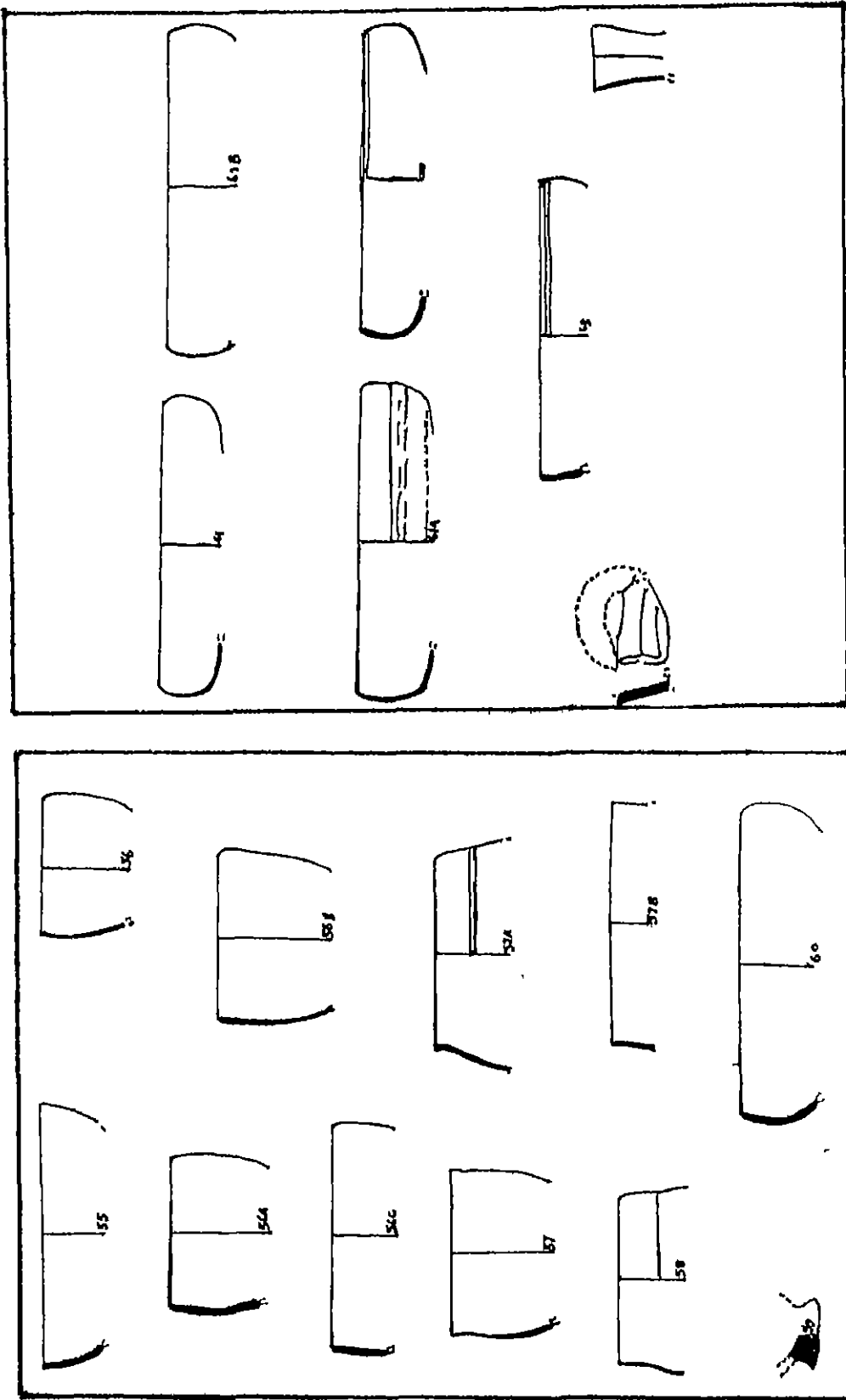
रेखाचित्र संख्या 29 - कोलडिहवा . ब्लैक स्लिप्ड एण्ड ग्रे वेयर
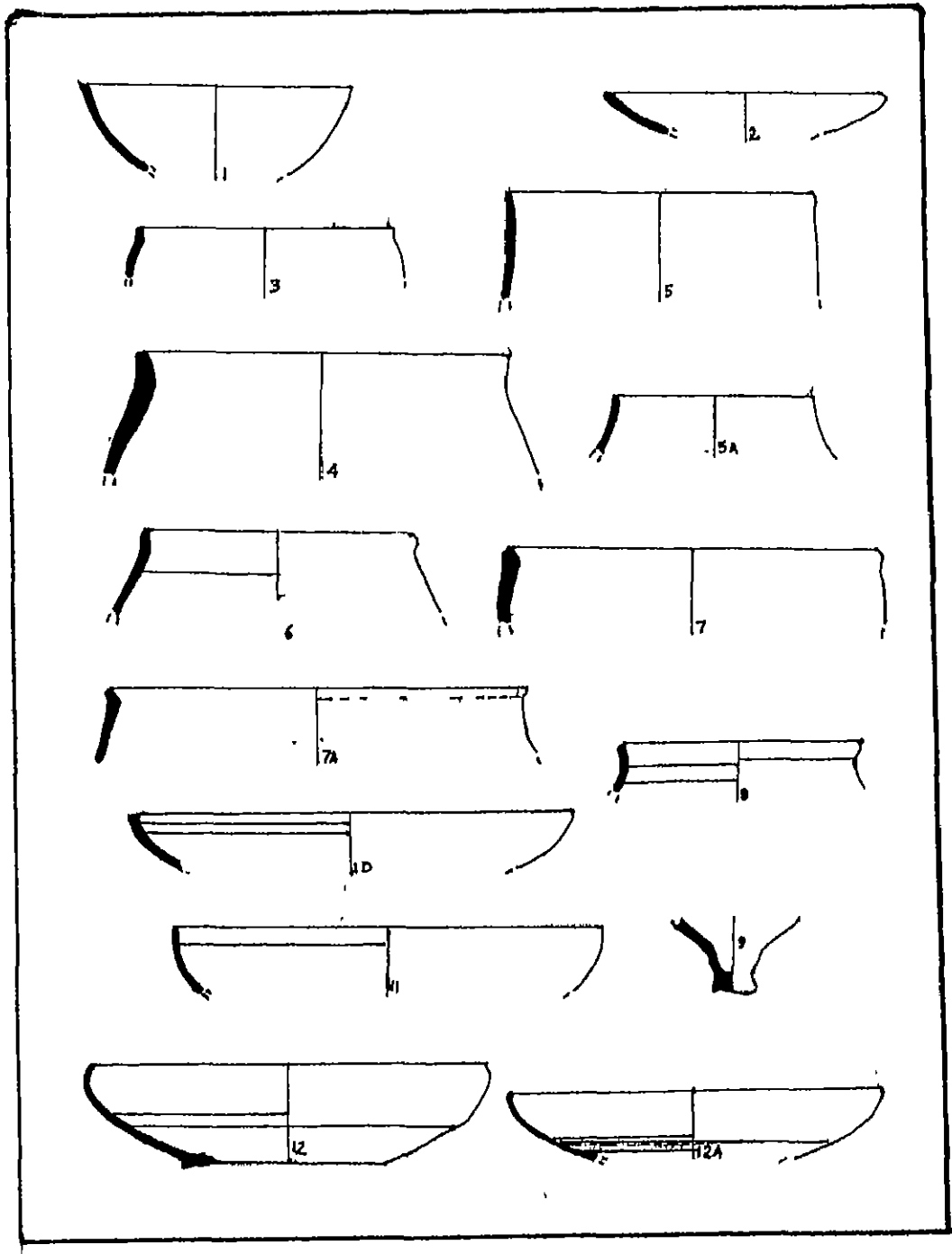
रेखाचित्र संख्या 30 - कोलडिहवा : लाल पात्र

टोकवा (24° 54' उत्तरी अक्षांश, 82° 17' पूर्वी देशान्तर) :

'टोकवा' मिर्जापुर जनपद की लालगंज तहसील के हलिया ब्लाक अन्तर्गत अदवा और बेलन नदी के संगम पर ऊँचे टीले पर स्थित है।

पुरातत्व विशेषज्ञ प्रो0 वी0 डी0 मिश्र, प्रो0 जे0 एन0 पाल एवं डा0 अनिल कुमार दुबे द्वारा टोकवा स्थल की खोज सन् 1999 में किया गया था। इस पुरास्थल के खोज तथा उत्खनन कार्य के सचालन का श्रेय इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग को है। कालानुक्रम को जानने के उद्देश्य से सन् 2000 में यहां पर विस्तृत पैमाने पर उत्खनन किया गया। जिसके फलस्वरूप दो सांस्कृतिक स्तर प्रकाश मे आये। जो नीचे से क्रमशः इस प्रकार हैं :

1. नव पाषाण काल
2. ताम्र पाषाण काल

यहाँ दूसरी संस्कृति ताम्र पाषाण काल से सम्बन्धित है। यहां से चाक पर बने कृष्ण लोहित, कृष्ण लेपित और लाल रंग के मिट्टी के बर्तन उपलब्ध हुए हैं। उल्लेखनीय है कि इस धरातल से लौह निर्मित उपकरण नहीं मिले हैं।

टोकवा से स्तम्भगर्त युक्त झोपड़ियों के प्रमाण प्राप्त हुए हैं जिससे यह पता चलता है कि इस स्थल पर मानव ने पूर्ण स्थायी जीवन यापन करना प्रारम्भ कर दिया था।

यहां से गाय, बैल, भेड़, बकरी, सुअर, हिरण, कछुआ, मछली और चिड़ियों की हड्डियाँ प्राप्त हुई हैं। इससे यह पता चलता है कि यहाँ के लोग पशुपालन एवं वन्य पशुओ का शिकार भी करते थे।[1]

---

1 *दैनिक जागरण समाचार पत्र 2000*, 14 फरवरी, 13 मार्च
मिश्रा, वी0 डी0, जे0 एन0 पाल और एम0 सी0 गुप्ता 2000, इक्सकैवेशन एट टोकवा . ए नियोलिथिक - चैल्कोलिथिक सेटेलमेण्ट, *प्राग्धारा नं0 11*, पृष्ठ 59-72

मध्य गंगा घाटी के उत्खनित स्थल

पिछले चार दशको मे मध्य गगा घाटी मे हुए पुरातात्विक सर्वेक्षण और उत्खनन मे अनेक ताम्र पाषाणिक पुरास्थल प्रकाश में आये हैं। ऐसे स्थलों मे बिहार के सोनपुर[1], चिरांद[2], ओरिअप[3], बक्सर चचेर[4] तथा उत्तर प्रदेश के सोहगौरा[5], प्रहलादपुर[6], राजघाट[7], नहुष राजा का टीला[8], बनवारी घाट[9], गुलरिहवा घाट[10], नरहन[11], माझी, इमलीडीह उल्लेखनीय हैं (मानचित्र संख्या 9)।

घाघरा नदी के उत्तर पूर्व घाघरा और गंडक नदियों के मध्य में सरयूपार क्षेत्र में गोरखपुर विश्वविद्यालय के पुरातत्वविदों ने जो सर्वेक्षण और उत्खनन किया उससे नव पाषाणिक उपकरणों की सम्भावना व्यक्त की गयी थी[12]। इस क्षेत्र के प्रमुख पुरातात्विक स्थलों मे राप्ति और आमी नदियों के संगम पर स्थित सोहगौरा और कुआनो नदी के तट पर स्थित सूसीपार, रामनगर घाट, बड़ा गांव, गेरार और लहुरादेवा उल्लेखनीय हैं। जहाँ से कार्ड इम्प्रेस्ड चित्रित कृष्ण लोहित और (पेन्टेड ब्लैक एण्ड रेड) ग्रे, ब्लैक स्लिप्ड और रेड वेयर के पात्र खण्ड लघु पाषाण उपकरणों के साथ प्राप्त हुए थे। इस क्षेत्र के अन्य महत्वपूर्ण स्थलों में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा उत्खनित बलिया जनपद में स्थित खैराडीह गोरखपुर जनपद में नरहन और मांझी तथा इमलीडीह आदि स्थलों का उल्लेख किया जा सकता है। प्रतापगढ़ जिले के पट्टी तहसील में हाल ही में किये गये सर्वेक्षण के

---

1. *इण्डियन आर्कियोलॉजी : ए रिव्यू* - 1956-57, पृष्ठ 19, 1959-60 पृष्ठ 14 1960-61, पृष्ठ 4-5, 1961-62 पृष्ठ 4-5
2. *इण्डियन आर्कियोलॉजी · ए रिव्यू* - 1963-64, पृष्ठ 6-6 और 1968-69 से लेकर 1971-72 के अक
3. वर्मा, बी० एस०, 1969 ब्लैक एण्ड रेडवेयर इन बिहार, बी० पी० सिन्हा (सम्पा०) *पाटरीज इन एंसिएन्ट इण्डिया* में पृष्ठ 107
4. *इण्डियन आर्कियोलॉजी : ए रिव्यू,* 1977-78, पृष्ठ 17-18
5 *इण्डियन आर्कियोलॉजी : ए रिव्यू,* 1961-62, पृष्ठ 56, 1974-75, पृष्ठ 47
6. नारायण, ए० के० और राय, टी० एन० 1968, *इक्सकैवेशन्स ऐट प्रहलादपुर,* पृष्ठ 63
7 नारायण, ए० के० और राय, टी० एन० 1968 - *इक्सकैवेशन्स ऐट राजघाट,* पृष्ठ 23-25
8 नेगी, जे० एस०, 1975, नहुस का टीला, *के० सी० चट्टोपाध्याय मेमोरियल वाल्युम,* पृष्ठ 51-56
9. पुरातत्व न० 3 पृष्ठ 78-88
10. भट्ट, एस० के० 1970, आर्कियोलॉजिकल इक्सप्लोरेशन इन बस्ती डिस्ट्रिक्ट पुरातत्व न० 3 पृष्ठ 78-88
11. सिंह, पुरुषोत्तम और मक्खन लाल, 1985, नरहन, 1983-84 : ए प्रिलिमिनरी रिपोर्ट, (*भारती,* बी० एच० यू० के प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग की पत्रिका न० 3, पृष्ठ 144-86
12 चतुर्वेदी, एम० एन०, 1985, एडवान्स ऑफ विन्ध्यायन नियोलिथिक एण्ड चैल्कोलिथिक, कल्चर्स टू दि हिमालय, तराई इक्सकैवेशन्स एण्ड इक्सप्लोरेशन इन सरयूपाट रीजन ऑफ, उ० प्र०, *मैन एण्ड इनवायरनमेण्ट* वैल्यूम 9, पृष्ठ 101-108

CHALCOLITHIC SITES
IN
THE MIDDLE GANGA PLAIN
N
INDIA
AREA OF MAP
INDEX
CHALCOLITHIC SITES
DISTRIC
SRAVASTI
PIPRAHWA
GANWARIA
RAPTI R
AYODHYA
Faizabad
Gorakhpur
DHURIAPAR
Deoria
NARHAN
GHAGHARA R.
Sultanpur
Azamgarh
KHAIRADIH
MANJHI
VAISALI
GANDAK R
BURHI GANDAK R
Muzaffarpur
KOSI R.
CHECHAR-KUTUBPUR
GOMTI R
Jaunpur
Ballia
Chapra
Bela-Pratapgarh
Ghazipur
Arrah
Patna
GANGA R.
Allahabad
Varanasi
YAMUNA R
Mirzapur
SENUWAR
LAHARIA-DIH
20 0 100 KM
28°
27°
26°
25°
N
E
82°
83°
84°
85°
86°
87°
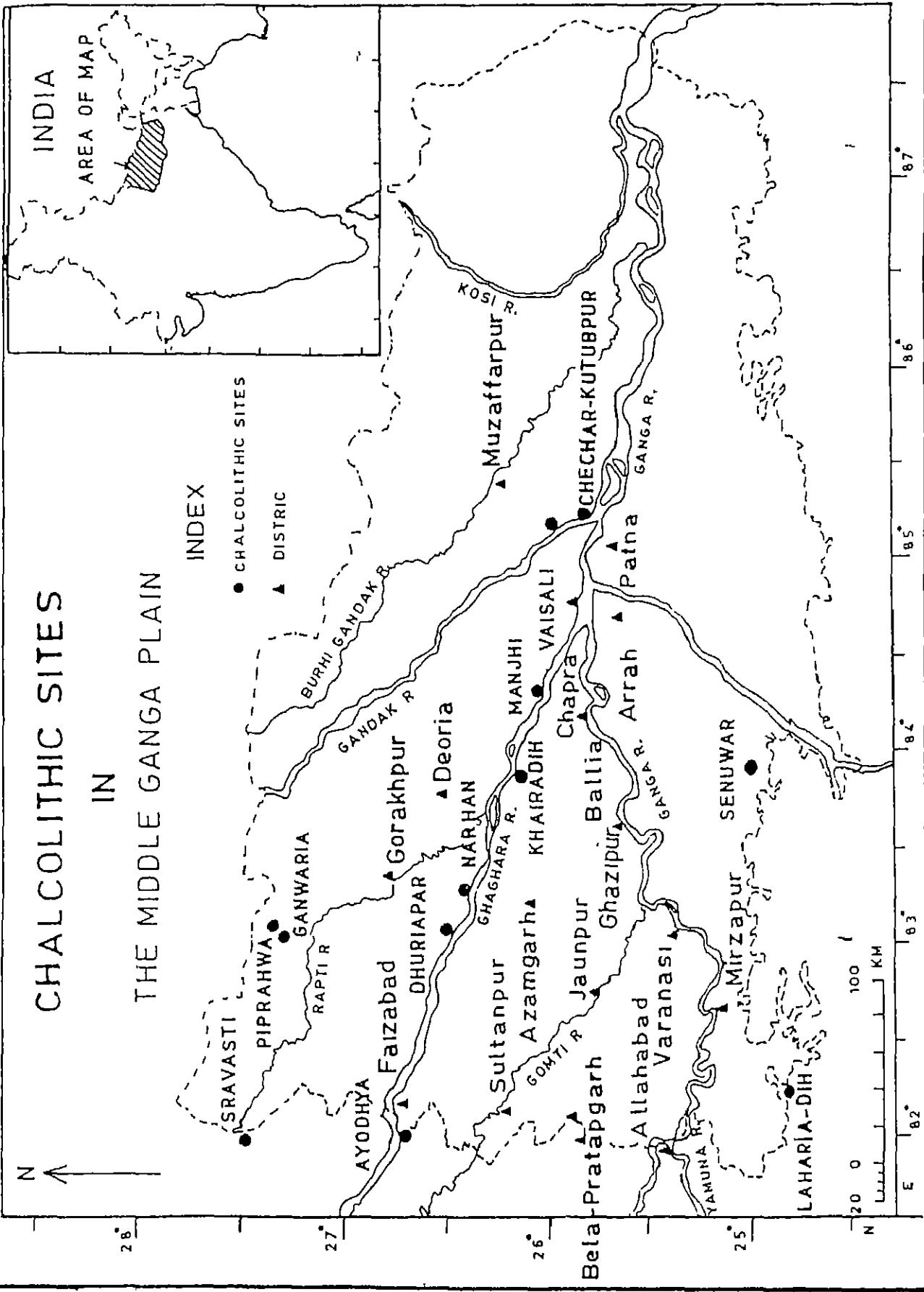
परिणामस्वरूप इस संस्कृति के कई स्थल प्रकाश में आये हैं। कौशाम्बी, झूँसी और शृंगबेरपुर स्थलो के निचले धरातल से ताम्र पाषाण संस्कृति के प्रमाण मिले हैं इन स्थलो का विवरण प्रारम्भिक ऐतिहासिक संस्कृति के सन्दर्भ मे किया गया है। अन्य प्रमुख उत्खनित स्थलो का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है।

झूँसी (25^0 26' 10'' उत्तरी अक्षांश, 81^0 54' 30'' पूर्वी देशान्तर) :

झूँसी जिसकी पहचान प्राचीन प्रतिष्ठानपुर से की गयी है - गंगा-यमुना के संगम पर इलाहाबाद नगर के ठीक पूर्व दिशा के सामने स्थित लगभग 3 किलोमीटर के क्षेत्र मे विस्तृत इस टीले का अधिकांश भाग वर्तमान झूँसी गाँव द्वारा आबाद है। इस समय यह स्थल कई छोटे-छोटे टीलों में विभाजित हो गया है। लेकिन समुद्र कूप टीला अपेक्षाकृत अधिक सुरक्षित है (छायाचित्र संख्या 37), जिसकी अधिकतम ऊँचाई लगभग 16 मीटर है। विगत चार वर्षों के उत्खनन क्रम के बाद गंगा घाटी की सस्कृति ही नही अपितु सम्पूर्ण भारत वर्ष की प्रारम्भिक ऐतिहासिक सस्कृति के विषय मे अपने में महत्वपूर्ण जानकारी समेट प्रतिष्ठानपुर (झूँसी) महत्वपूर्ण स्थल के रूप में प्रकाश मे आया है। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग द्वारा विगत चार सत्रो में (1995, 1998, 1999 और 2000) में किये गये उत्खनन से अनेक नवीन तथ्य प्रकाश में आये (रेखाचित्र संख्या 31)। इस स्थल के सर्वेक्षण से मिट्टी के बर्तन, सिक्के, मृण्मूर्तियाँ, पाषाण मूर्तियाँ, मुहरे, हड्डी, तांबे और लोहे के उपकरण आदि प्राप्त हुए हैं जो ताम्र पाषाण काल से लेकर मध्य काल तक के विस्तृत सांस्कृतिक क्रम का संकेत देते हैं।

1. ताम्र पाषाण काल
2 उत्तरी काली-चमकीली मृद्भाण्ड संस्कृति
3. शक-कुषाण काल
4. गुप्त काल
5. मध्य युग

यहा की प्रथम संस्कृति ताम्र पाषाण काल से सम्बन्धित है। इस पुरास्थल के उत्खनन से ताम्र पाषाणिक संस्कृति के मृद्भाण्ड कला के महत्वपूर्ण साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। इस धरातल से ब्लैक स्लिप्ड वेयर, ब्लैक वर्निश्ड वेयर, रेडवेयर, ब्लैक एण्ड रेड वेयर के बर्तन प्राप्त हुए हैं। लाल पात्र परम्परा के बर्तनों पर कभी-कभी काले रंग के चित्र भी बनाये गये हैं (छायाचित्र संख्या 38)। प्रमुख पात्र

छायाचित्र संख्या 37 - झूंसी : समुद्रकूप टीले का सामान्य दृश्य
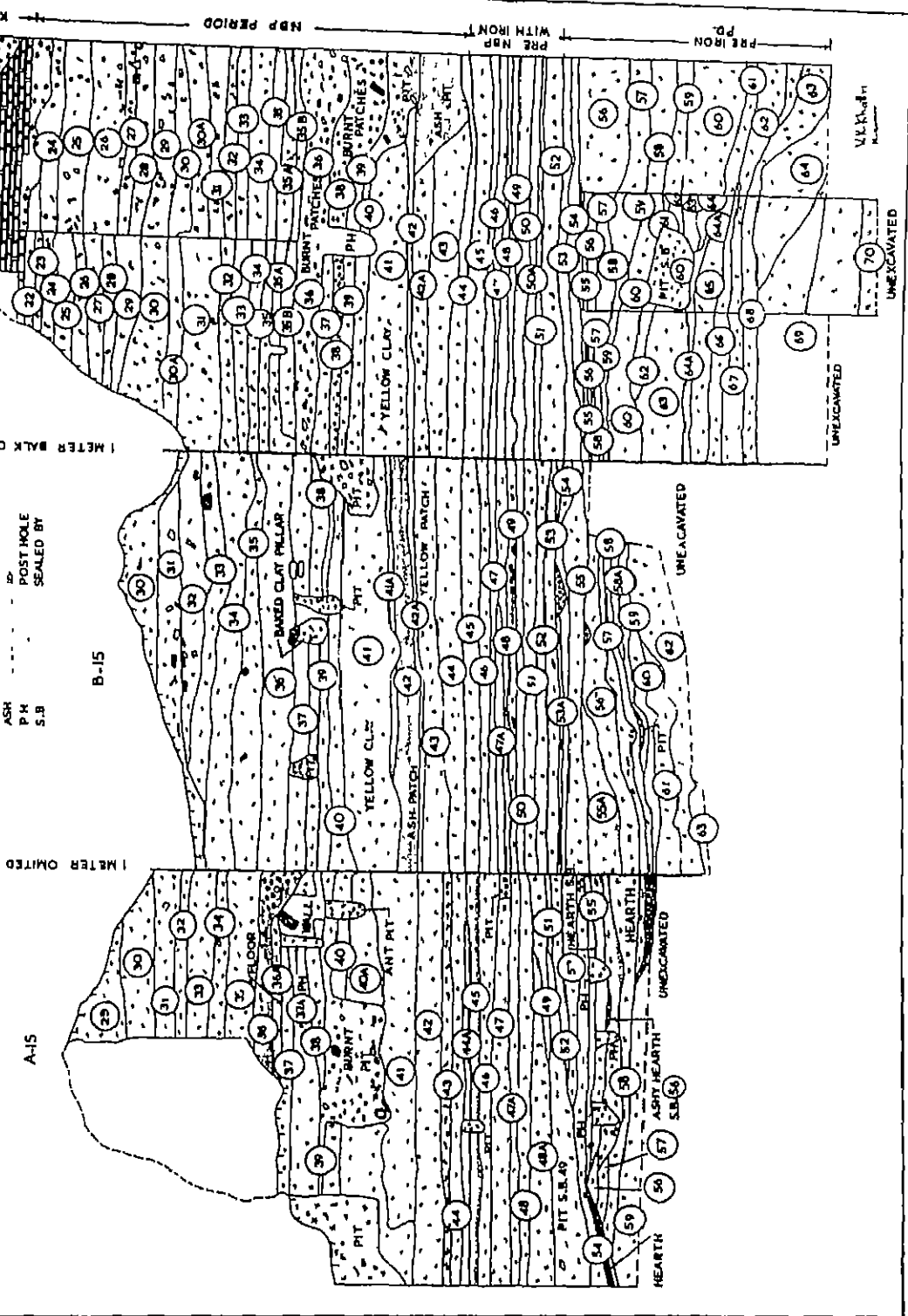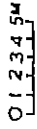
रेखाचित्र संख्या 31 - झूंसी - अनुभाग
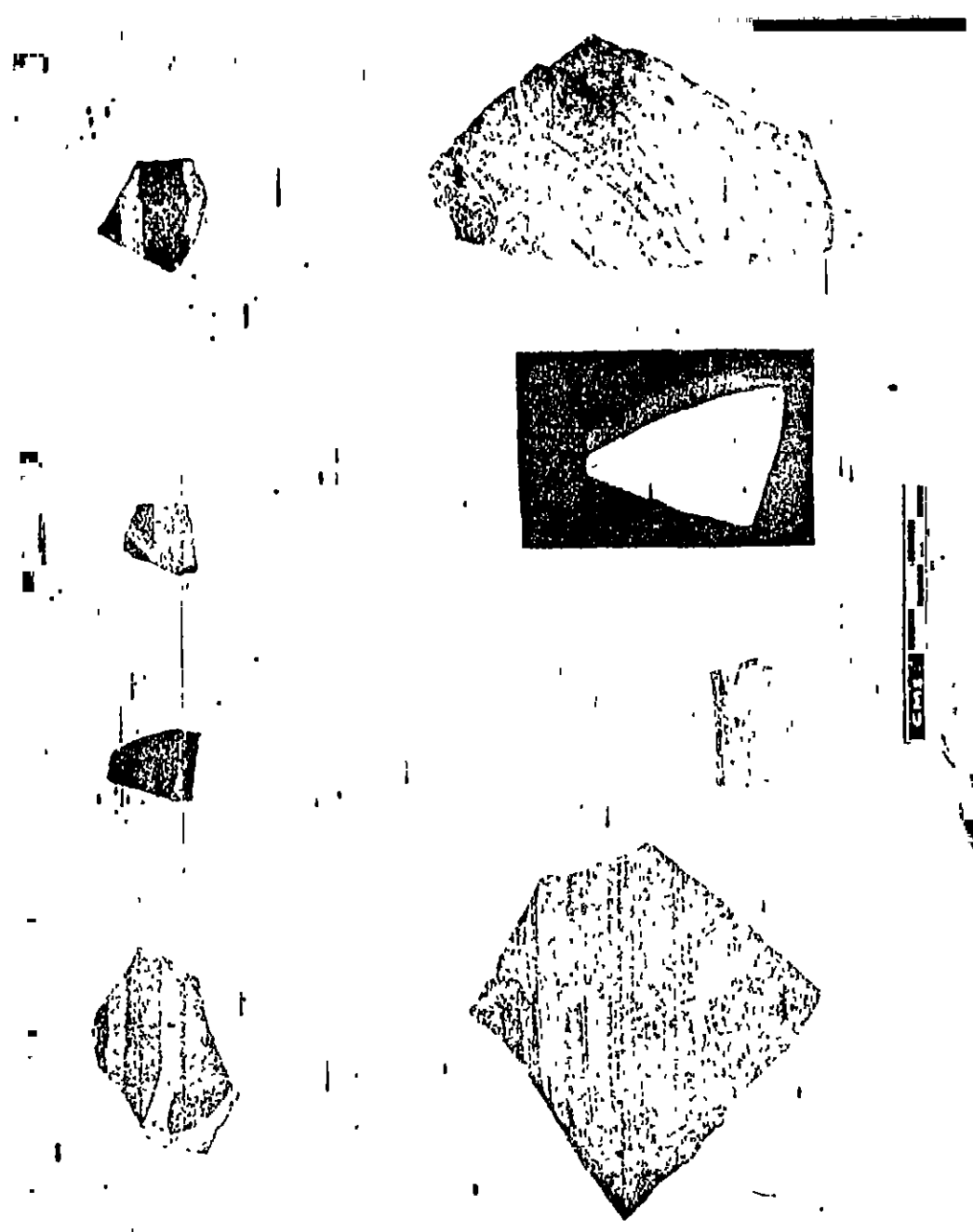
छायाचित्र संख्या 38 - झूंसी : चित्रित लाल पात्र

प्रकारो में कटोरे, थाली, ओष्ठयुक्त बर्तन, घड़े, कृष्ण लेपित थाली, ग्लास और लोटा आदि मिले हैं।

इस पुरास्थल के ताम्र पाषाणिक मानव स्तम्भगर्त युक्त झोपड़ियों मे रहते थे। जिसका प्रमाण बांस-बल्ली के निशान से युक्त जली मिट्टी के टुकड़ों से मिला है। फर्शों पर बिखरी राख, बर्तनों के टुकड़े, अधिक तापमान पर जली हड्डियां इत्यादि भी आवासीय पद्धति पर प्रकाश डालते हैं। दो मीटर मोटे जमाव से पता चलता है कि इस स्थल को ताम्र पाषाणिक मानव ने लम्बे समय तक आबाद रखा था।

लघु पाषाण उपकरणों के साथ-साथ हड्डी के बने उपकरण (छायाचित्र संख्या 39) भी प्राप्त हुए है। लघु पाषाण उपकरणों में *'दन्तुरकटक ब्लेड'* तथा हड्डी के उपकरणों मे *'वाणाग्र'* का विशेष महत्व है। मिट्टी के बने तकली उत्खनन से मिले हैं, जो मानव तकनीकी विकास का द्योतक है।

विगत वर्षों से प्राप्त अवशेषो के आधार पर जे० एन० पाल ने बताया कि यहां का मानव प्रारम्भ से ही खेती करने लगा था और पशु पालन भी उसका प्रमुख पेशा था। खेती के प्रमाण के रूप में गेहूँ, जौ, चना, मटर, उड़द, मूंग, मसूर आदि के दाने प्राप्त हुए हैं। उसके साथ ही गाय, बैल, हाथी, घोड़ा, भेंड़, बकरी, सुअर आदि की हड्डियाँ भी प्राप्त हुई हैं। यहाँ का मानव मांसाहारी था, जिसके प्रमाण में अनेक कटी एवं पकी हड्डियाँ प्राप्त हुई हैं।

यहां से दो कार्बन तिथियाँ भी प्राप्त हुई है जो पी० आर० एल० 2083-1340 ± 90 ई० पू०, पी० आर० एल० 2081-830 ± 90 ई० पू० है।[1]

नरहन (26^0 19' उत्तरी अक्षांश, 83^0 24' पूर्वी देशान्तर) :

नरहन गोरखपुर जनपद के गोवा तहसील में घाघरा नदी के बाये तट पर स्थित है। नरहन के उत्खनन से सरयूपार क्षेत्र की संस्कृति के अधिवास प्रक्रिया पर उल्लेखनीय प्रकाश पड़ता है। 1984-89 के बीच इस स्थल का विस्तृत उत्खनन बी० एच० यू० के पुरुषोत्तम सिंह ने किया था। नरहन में दो मुख्य टीले हैं। जिनमें से प्रथम टीले का दो तिहाई भाग घाघरा नदी की कटान से

---

1. झूँसी - दैनिक जागरण समाचार पत्र
   मिश्रा, वी० डी०, जे० एन० पाल और एम० सी० गुप्ता 1998-99, फारदर इक्सकैवेशन एट झूँसी, *प्राग्धारा नं० 10*, पृष्ठ 23-30
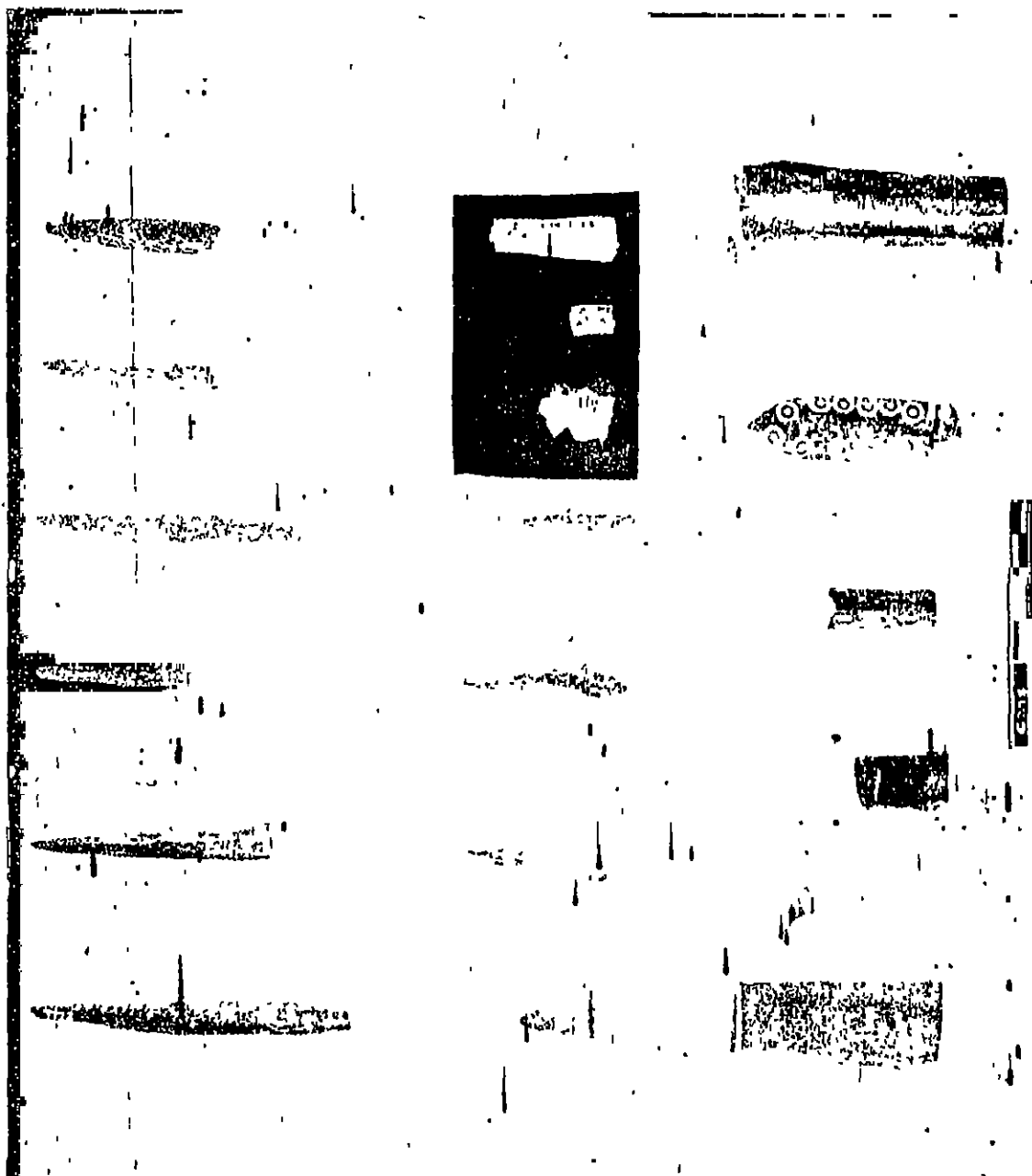
छायाचित्र संख्या 39 - हड्डी के अवशेष

पूर्णतया विनष्ट हो गया है और शेष बचे एक तिहाई भाग पर वर्तमान नरहन गांव स्थित है। लेकिन पश्चिमी दिशा मे लगभग 350 × 250 मीटर का क्षेत्र पुरातात्विक अन्वेषण के लिए उपलब्ध है। प्रथम टीले पर किये गये उत्खनन से प्रथम दो सस्कृति के प्रमाण मिले हैं। और दूसरे टीले को बौद्ध विहार के नाम से जाना जाता है, के उत्खनन के बाद तीन संस्कृतियो के प्रमाण उपलब्ध हुए हैं। प्रथम सांस्कृतिक जमाव 1 मीटर मोटा है जो अन्य ताम्र पाषाणिक सस्कृति के जमाव से अधिक मोटा है। यहां से ब्लैक एण्ड रेड वेयर पात्र परम्परा लगभग 97.7% है (रेखाचित्र संख्या 32)। यद्यपि इस सांस्कृतिक काल की पात्र परम्परा (रेखाचित्र संख्या 33, 34) और अन्य पुरा सामग्रियाँ ताम्र पाषाण काल की हैं। लेकिन लघु पाषाण उपकरणो के न मिलने के कारण उत्खनन कर्ता पुरुषोत्तम सिह ने इसे नरहन संस्कृति का नाम दिया है।

इस संस्कृति के लोग बांस बल्ली से निर्मित झोपड़ियों में रहते थे। जिनके प्रमाण स्तम्भगर्त और बांस-बल्ली के निशान से युक्त जली मिट्टी के टुकड़ो के रूप में मिलते हैं। दो क्रमिक फर्श और चूल्हे भी उत्खनन से प्राप्त हुए हैं। जौ (हार्डियन, बुल्हार), गेहूँ (कई प्रजातियाँ - क्लब व्हीट, ब्रेड व्हीट, डवार्प व्हीट) धान, दालों में मटर, मूंग, चना, खेसारी तथा सरसो, बेरी आदि अनाजों के प्रमाण मिले हैं। कटहल के प्रमाण भी मिले हैं। इस स्थल के लोगो ने बड़े पैमाने पर कृषि कार्य किया करते थे।

जली हुई और काटने के निशान से युक्त पशुओं की हड्डियों से लगता है कि मांस भी इनके भोजन का एक अभिन्न अंग था। पशुओ की हड्डियों में बैल, भेंड, बकरी, हिरण और घोड़े आदि की पहचान की गयी है।

अन्य पुरासामाग्रियों में मिट्टी के बर्तनों के टुकड़े से बने हुए छिद्र युक्त और बिना छिद्र के डिस्क, हड्डी के वाणाग्र, पकी मिट्टी के बने हुए तकुए और गोले सम्मिलित हैं। पत्थर और स्टेएटाइट के एक-एक मनके भी मिले हैं।[1]

इमलीडीह (36^0 30' 30'' उत्तरी अक्षांश, 83^0 12' 5'' पूर्वी देशान्तर) :

इमलीडीह गोरखपुर जनपद के घाघरा की सहायक कुहाना नदी के बायें तट पर स्थित है। इस

1. सिंह, पी०, 1994, इक्सकेवेशन एट नरहन 1984, *पुरातत्व न0 22* पृष्ठ 120-122
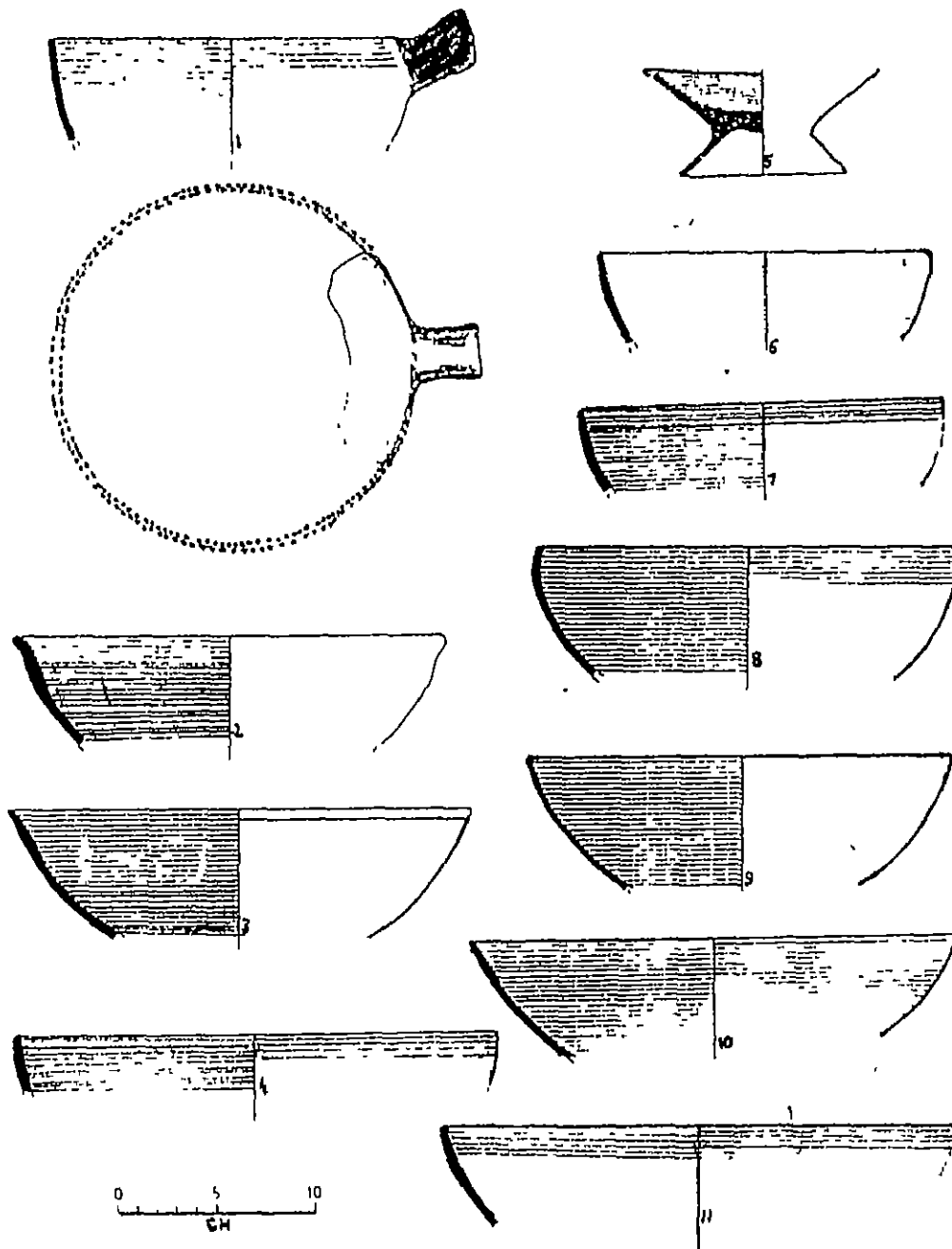
रेखाचित्र संख्या 32 - नरहन : काले और लाल पात्र
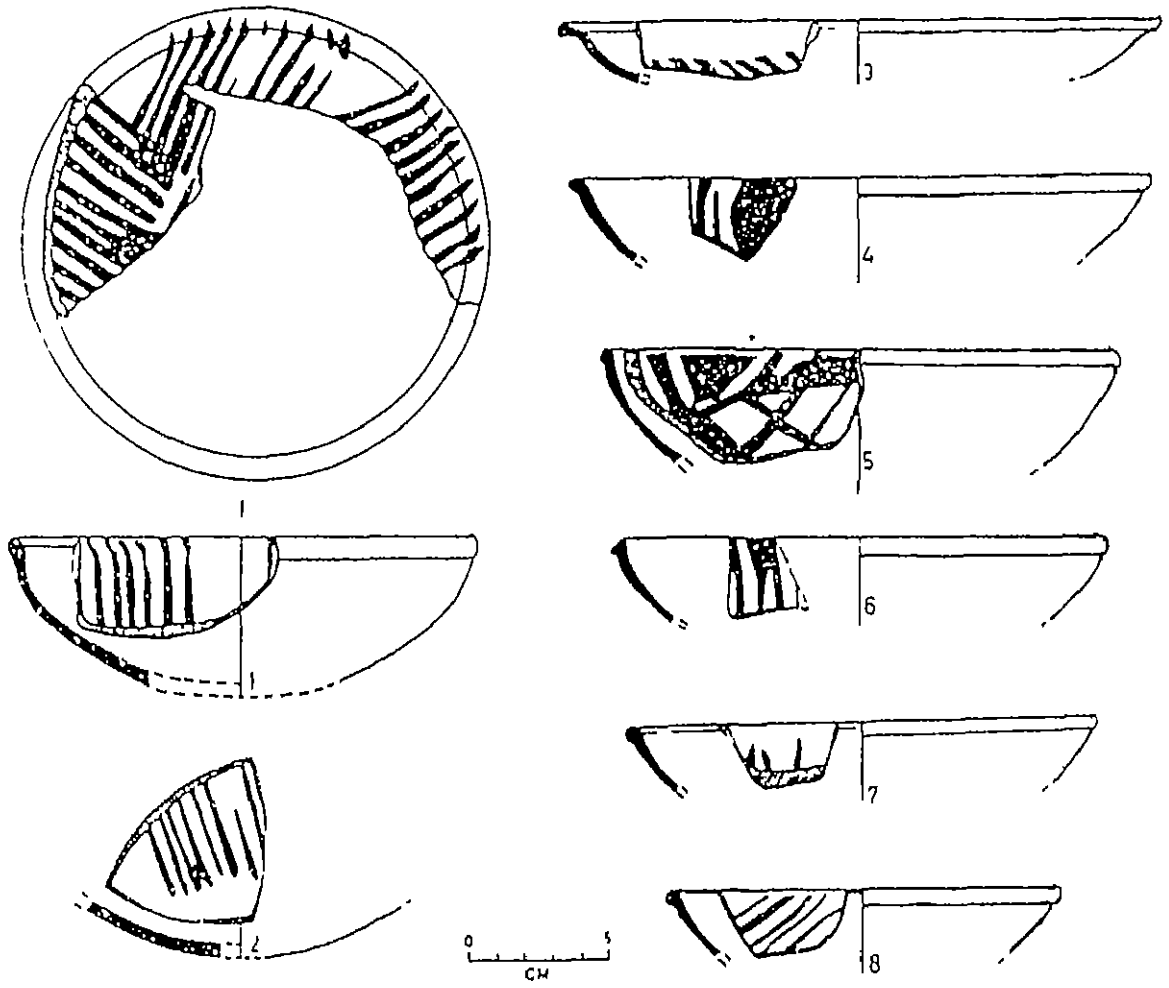
रेखाचित्र सख्या 33 - नरहन . लाल पात्र व चित्रित काले पात्र
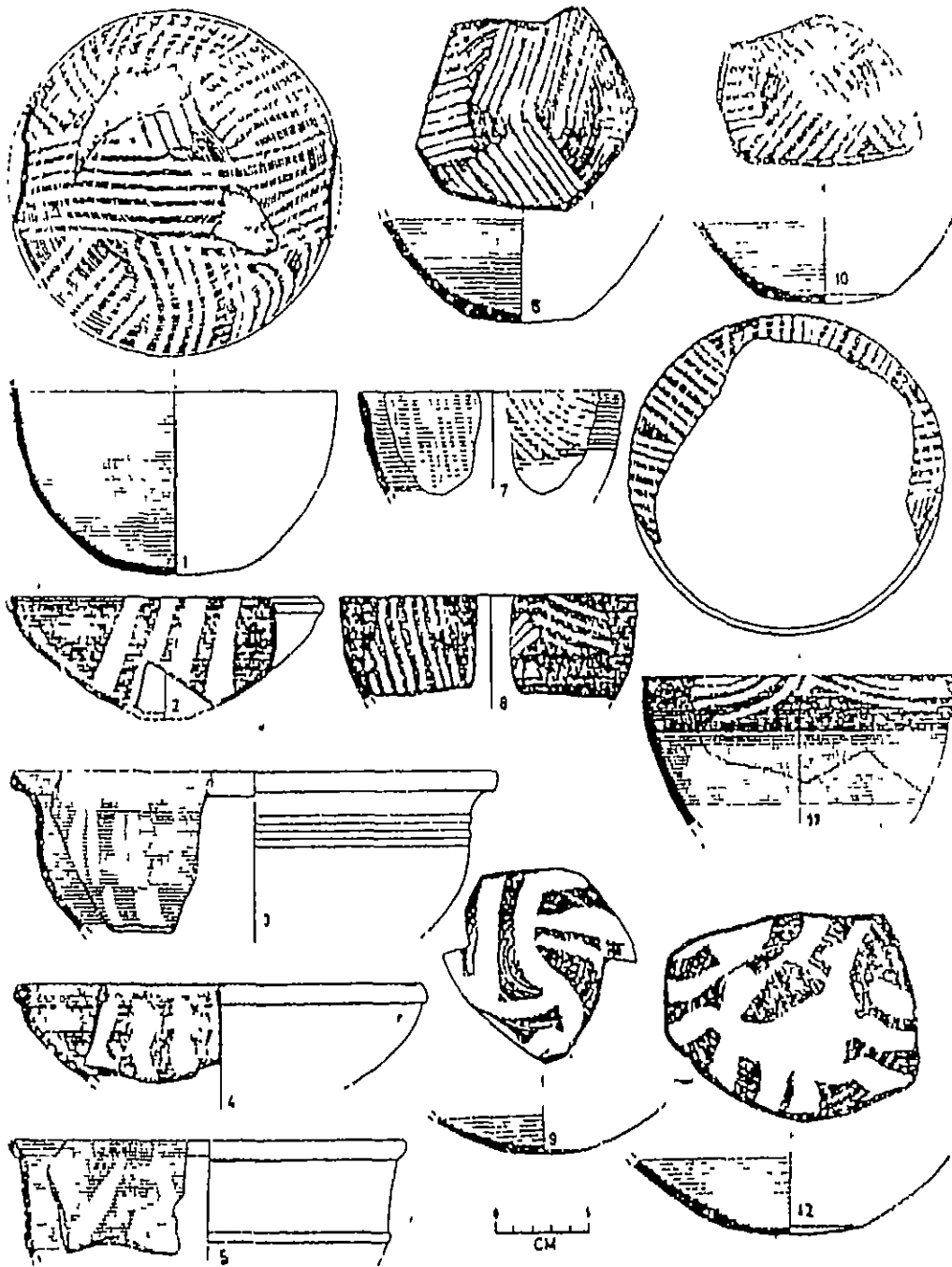
रेखाचित्र संख्या 34 - नरहन : चित्रित सफेद पात्र व काले और लाल पात्र

पुरास्थल का उत्खनन बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रो0 पुरुषोत्तम सिंह द्वारा 1992 से 1995 तक किया गया। इस स्थल के उत्खनन से तीन सांस्कृतिक कालो के प्रमाण प्राप्त हुए हैं।

प्रथम सांस्कृतिक काल से बांस-बल्ली के निशान से युक्त जली मिट्टी के टुकड़े, मिट्टी के बने फर्श और चूल्हे प्राप्त हुए हैं। 1.95 मीटर के व्यास वाले एक गोलाकार गर्त भी उपलब्ध हुए हैं। कुछ मिट्टी की पतली दीवारो से बनी हुई गोलाकार संरचनाएं भी मिली हैं, जिनका प्रयोग अनाज रखने के लिए किया जाता था। बहुत से स्टेएटाइट के लघु मनके, मिट्टी, अगेट और फ्यान्स के बने मनके, हड्डी के वाणाग्र और मिट्टी के बर्तनो के टुकड़ों से बने डिस्क भी प्राप्त हुए हैं। इस चरण से प्राप्त पात्र परम्परा का साम्य सोहगौरा की प्रथम चरण की पात्र परम्परा से है। लेकिन उत्खनन कर्ता ने इस सस्कृति को 'प्राक् नरहन संस्कृति' से अभिहित किया है। यहाँ से उपलब्ध जिन पशुओ की पहचान की गयी है उनमें गाय, बैल, भेंड, बकरी सुअर, हिरण और भेड़िया आदि सम्मिलित हैं। मछली, घोघे और कछुए के अस्थि अवशेष प्राप्त हुए हैं। धान, जौ, गेहूँ, ज्वार, सांवा, बाजरा, मटर, खेसारी, मूंग, तिल आदि अनाजों के प्रमाण मिले हैं। अनाजो के प्रमाण से ऐसा लगता है कि यहां के मानव रबी और खरीफ दोनो फसलों से परिचित थे। यहां बैर, आँवला और अंगूर जैसे फल के भी प्रमाण प्राप्त हुए हैं।

इमलीडीह का द्वितीय सास्कृतिक काल ताम्र पाषाणिक संस्कृति से है। जिसे उत्खननकर्ता ने नरहन संस्कृति का नाम दिया है। इस सांस्कृतिक काल के अवशेष प्रथम सांस्कृतिक काल की तरह है।

इमलीडीह का तीसरा सांस्कृतिक धरातल अधिक विस्तृत नहीं है। क्योंकि इस स्थल का उपरिवर्ती भाग आधुनिक कृषि कार्यों से प्रायः विनष्ट हो गया है। इस धरातल से ब्लैक एण्ड रेड वेयर के पात्र नही मिलते हैं। लाल पात्र परम्परा, ब्लैक स्लिप्ड वेयर और कुछ एन0 बी0 पी0 डब्ल्यू0 पात्र परम्पराओं के प्रमाण उपलब्ध हुए हैं। इसे पुरुषोत्तम सिंह ने इमलीडीह के तृतीय सास्कृतिक काल को नरहन के द्वितीय सांस्कृतिक काल के समकक्ष रखा है। जिसके लिए 800 से 400 ई0 पू0 का समय निर्धारित किया है।[1]

1. सिह, पी0, 1994, इक्सकेवेशन एट इमलीडीह 984, *पुरातत्व न0 22*

श्रृंगबेरपुर (25^0 35' उत्तरी अक्षांश, 81^0 39' पूर्वी देशान्तर) :

श्रृगबेरपुर नामक पुरास्थल इलाहाबाद जिले की सोरांव तहसील मे इलाहाबाद उन्नाव मार्ग पर उत्तर-पश्चिम दिशा मे लगभग 36 किलोमीटर की दूरी पर गंगा नदी के बायें तट पर स्थित है। यहां पर 10 मीटर ऊँचा एक प्राचीन टीला है जिसके काफी बड़े भाग को गंगा नदी ने काट डाला है। बाल्मीकी रामायण के अनुसार वनवास के लिए अयोध्या से प्रयाग की ओर जाते समय राम ने सीता, लक्ष्मण के साथ यहां पर एक रात विश्राम किया था। दूसरे दिन निषाद राज ने उन्हें गगा पार कराया और वे भरद्वाज के आश्रम मे पहुँचे।

इस पुरास्थल का उत्खनन शिमला उच्च अध्ययन संस्थान और भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के संयुक्त तत्वावधान मे बी0 बी0 लाल और के0 एन0 दीक्षित के निर्देशन में दिसम्बर सन् 1977 से 1982 तक हुआ।

श्रृंगबेरपुर के उत्खनन के फलस्वरूप जो पुरावशेष तथा पुरानिधियाँ मिली हैं उनको सात विभिन्न सांस्कृतिक कालों मे विभाजित किया गया है।

प्रथम सांस्कृतिक काल गैरिक मृद्भाण्ड संस्कृति का है। यहाँ से सरकण्डो की छाप से युक्त मिट्टी के जले हुए टुकड़े मिले हैं जिससे लगता है कि ये लोग बांस-बल्ली से बनी झोपड़ियो में रहते थे। मृण्मय चक्रिक खण्ड और कार्नेलियन के फलक का एक खण्डित टुकड़ा मिला है। इसके पश्चात यह पुरास्थल संभवतः कुछ समय तक वीरान रहा। इस संस्कृति का समय 1050 से 1000 ई0 पू0 रखा गया है।

द्वितीय सांस्कृतिक काल (950-700 ई0 पू0) की प्रमुख पात्र-परम्पराओ में कृष्ण-लोहित, कृष्ण-लेपित और चमकाई गई धूसर पात्र-परम्परा का उल्लेख किया जा सकता है। हड्डी के बने बेधक और बाण-फलक, हड्डी का एक लटकन, जैस्पर तथा मिट्टी के बने मनके अन्य महत्वपूर्ण पुरावशेष हैं।

तृतीय सांस्कृतिक काल (700-250 ई0 पू0) उत्तरी काली ओपदार पात्र-परम्परा से सम्बन्धित है। इस काल के पुरावशेषों में मृद्भाण्डों के अतिरिक्त तांबे के तीन बड़े कलश, एक कड़छुल, नारी मृण्मूर्तियाँ, माणिक्य, मिट्टी, स्वर्ण के मनके, पशु मूर्तियाँ, ताम्बे और लोहे के उपकरण तथा आहत

एवं लेख-रहित ढले हुए सिक्के विशेष उल्लेखनीय हैं। भवन निर्माण मे इस काल के अन्तिम चरण मे पकी हुई ईंटों का उपयोग होने लगा था। ये लोग अपने घरों मे मिट्टी के कुएं और सोख्ता घड़ों का प्रयोग करते थे। पुरातात्विक आधार पर 600 ई0 पू0 से 300 ई0 पू0 के मध्य उत्तरी काली चमकीली पात्र-परम्परा का कालक्रम निर्धारण किया गया है। शृंगबेरपुर के उत्तरी काली चमकीली पात्र-परम्परा के स्तर से एकत्र किए गए एक नमूने की उष्मा दीप्ति तिथि 700 ई0 पू0 निर्धारित की गई है। यह नमूना मध्यवर्ती स्तर से एकत्र किया गया था। इसके आधार पर तृतीय काल के प्रारम्भ की तिथि 700 ई0 पू0 निर्धारित की गयी है। यह उल्लेखनीय है कि भारत के विभिन्न पुरास्थलों के सन्दर्भ में उष्मा दीप्ति तिथियों की संख्या बहुत अधिक नहीं है। अन्य देशों के संदर्भ में भी अभी तक तिथि निर्धारण की यह प्रणाली प्रयोग के स्तर पर ही है। अतः शृंगबेरपुर की उष्मा दीप्ति तिथि को उत्तरी काली चमकीली पात्र परम्परा की प्राचीनता की अन्तिम तिथि नहीं माना जा सकता है।

चतुर्थ काल (250 ई0 पू0-200 ई0) की संस्कृति दो उपकालों में विभाजित है। लाल रग के मिट्टी के बर्तन, शुंग कालीन मृण्मूर्तियाँ, अयोध्या के शासकों के सिक्के मिले हैं। शृंगबेरपुर के मुख्य टीले के उत्तर-पूर्व में पकी ईंटों का एक आयताकार तालाब के साक्ष्य मिले हैं। कुल मिलाकर आर्थिक समृद्ध का संकेत मिलता है।

पंचम काल (300-600 ई0) में गहरे लाल रंग के मिट्टी के बर्तन प्रचलित थे। इस काल से गुप्त शैली की मृण्मूर्तियाँ मिली हैं। टूटे-फूटे ईंटो के बने हुए भवन मिले हैं।

छठवे सांस्कृतिक काल (1000-1300 ई0) का समय प्राप्त पुरावशेषों के आधार पर छठवीं-सातवी शताब्दी से तेरहवीं शताब्दी ईसवी के बीच में रखा गया है। इस काल के एक मृद्भाण्ड में कतिपय आभूषण और गढ़वाल राजवंश के शासक गोबिन्द चन्द्र (1114-1154 ई0) के द्वारा चलाए गये चांदी के 13 सिक्के मिले हैं।

शृंगबेरपुर का पुरास्थल 13वीं शताब्दी ईस्वी के बाद चार सौ वर्षों तक वीरान रहा। यहां पर अन्तिम बार 17वीं-18वीं शताब्दी ईसवी में पुनः लोग आकर बसे। इस बात की पुष्टि यहां से प्राप्त पुरावशेषों से होती है।

शृंगबेरपुर के उत्खनन से मध्य गंगा घाटी की प्रारम्भिक संस्कृति के रूप में गैरिक मृद्भाण्डों की प्राप्ति विशेष महत्वपूर्ण है। द्वितीय सांस्कृतिक काल की कृष्ण लोहित, कृष्ण-लेपित एवं धूसर पात्र-

परम्परा पश्चिमी बिहार तथा विन्ध्य क्षेत्र की ताम्र पाषाणिक संस्कृति से अनुप्रमाणित मानी जा सकती है। प्रथम शताब्दी ईस्वी के कुषाण कालीन पक्के तालाब को शृंगबेरपुर के उत्खनन की विशिष्ट उपलब्धि माना जा सकता है। शृगबेरपुर से ताम्र पाषाण काल की एक कार्बन तिथि पी0 आर0 एल0 669-750 ± 134 ई0 पू0 प्राप्त हुई है।[1]

विन्ध्य क्षेत्र एवं मध्य गंगा घाटी की ताम्र पाषाण कालीन संस्कृतियों के अन्तर्सम्बन्धों पर प्रकाश

विन्ध्य क्षेत्र और उसके समीपवर्ती मध्य गंगा घाटी के उत्खनित और सर्वेक्षित ताम्र पाषाणिक स्थलो से प्राप्त प्रमाणों से प्रतीत होता है कि इन दोनों क्षेत्रो की ताम्र पाषाणिक संस्कृतियों का स्वरूप एक ही है।

विन्ध्य क्षेत्र के महगड़ा, इन्दारी जैसे स्थल प्राकृतिक भू-तात्विक जमावों की प्राचीर से घिरे हुए प्राप्त हुए हैं। जो सम्भवतः तीव्र लू और ठण्डी हवाओं से उनकी रक्षा करते थे। अधिकाश ताम्र पाषाणिक स्थलों के समीप घने जंगल थे जहाँ से जंगली वनस्पतियो और वन्य जीवों का दोहन होता था। मध्य गंगा घाटी के ताम्र पाषाणिक स्थल नदियों के तट पर कुछ ऊँचाई पर स्थित है। जहाँ पर वार्षिक बाढ़ का पानी नही पहुँच पाता था। जल की सुलभता और वार्षिक बाढ़ से समीपवर्ती क्षेत्रों में उपजाऊ भूमि नदियो के तट पर स्थिति के मुख्य कारण हैं।

आवास :

विन्ध्य क्षेत्र और मध्य गंगा घाटी के ताम्र पाषाणिक पुरास्थलों के उत्खनन से प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर अधिवास नियोजन के सम्बन्ध में, अध्ययन से कुछ रुचिकर तथ्य सामने आये हैं। दोनों ही क्षेत्रों मे ताम्र पाषाणिक मानव झोपड़ियों में रहते थे। झोपड़ियों के किनारे-किनारे स्तम्भगर्त मिले है, जिससे अनुमान किया जाता है कि स्तम्भो के ऊपर सरकण्डों तथा घास-फूस से छाजन बनाते थे। जली मिट्टी के टुकड़ों से इंगित होता है कि झोपड़ियों की दीवारें बांस-बल्ली से बनायी जाती थी जिस पर मिट्टी का मोटा लेप लगाया जाता था। कोलडिहवा से एक आयताकार झोपड़ी जिसकी बड़ी भुजाएं 5.25 मीटर तथा छोटी 3.30 मीटर थी। इस काल की झोपड़ियों का आकार पूर्ववर्ती काल

---

1. पाण्डेय, जे0 एन0 (1996) *पुरातत्व विमर्श*, पृष्ठ 578-580

से बड़ा था। यहां झोपड़ियो के फर्श मिट्टी को कूट कर बनाया जाता था। मघा से भी गोलाकार या अण्डाकार झोपड़ियों के अवशेष प्राप्त हुए हैं। ककोरिया के एक घर की फर्श पक्के मिट्टी के टुकड़ों और पात्रों के टुकड़ो से बनी है। इससे पता चलता है कि विन्ध्य क्षेत्र की ताम्र पाषाण काल की झोपड़ियाँ आकार में बड़ी तथा आयताकार, गोलाकार या अण्डाकार थी। जबकि मध्य गंगा घाटी मे विस्तृत उत्खनन के अभाव मे आवास सम्बन्धी प्रमाण कम प्राप्त हुए हैं। यहा अधिवास स्थलो का आकार प्रायः छोटे अथवा मध्यम आकार के हैं। यहाँ से फर्शों के प्रमाण के आधार पर कहा जा सकता है कि यहां की झोपड़ियाँ, आकार में गोलाकार थी। मध्य गंगा घाटी के ताम्र पाषाणिक पुरास्थल सेनुआर के उत्खनन से मिट्टी की दीवारो से घर बनाने के कुछ संकेत मिलते हैं। उल्लेखनीय है कि मध्य गंगा घाटी के दक्षिणावर्ती विन्ध्य क्षेत्र की ताम्र पाषाणिक संस्कृति के उत्खनित स्थलों में ककोरिया और कोलडिहवा से भी मिट्टी के दीवारों के प्रमाण उपलब्ध हुए हैं। झूँसी के उत्खनन से फर्शों पर बिखरी हुई राख बर्तनों के टुकड़े, अधिक तापमान मे जली हड्डियां आदि मिली हैं। ये सभी आवासीय पद्धति पर प्रकाश डालते है। विन्ध्य क्षेत्र के ताम्र पाषाणिक पुरास्थलों में टोकवा के उत्खनन से स्तम्भगर्त युक्त झोपड़ियों के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं जिससे यह पता चलता है कि इस स्थल पर मानव ने पूर्ण रूप से स्थायी जीवन यापन करना प्रारम्भ कर दिया था। टोकवा स्थल का महत्व प्रागैतिहासिक दृष्टि से भी है क्योंकि भारत में टोकवा ही एकमात्र क्षेत्र से मानव सभ्यता पूर्ण पाषाण काल से लेकर नवपाषाण काल तक के स्पष्ट प्रमाण मिले हैं और आदि मानव इसी क्षेत्र से आगे बढ़ता हुआ गंगा के मैदान में अपनी संस्कृति और सभ्यता का विस्तार किया।

मृद्भाण्ड :

विन्ध्य क्षेत्र एवं मध्य गंगा घाटी के ताम्र पाषाणिक पुरास्थलो के उत्खनन से चाक पर बने बर्तन प्राप्त हुए हैं। यदा-कदा मध्य गंगा घाटी ताम्र पाषाणिक स्थलों से हाथ से बने बर्तन भी मिल जाते हैं। यहां से प्राप्त बर्तनों में प्रयुक्त मिट्टी अच्छी तरह से गुथी हुई नहीं दिखायी पड़ती है। मिट्टी में भूसी, बालू, अभ्रक के कण मिले हुए हैं। जबकि विन्ध्य क्षेत्र के पुरास्थलों से प्राप्त बर्तनो में प्रयुक्त मिट्टी अच्छी तरह से गुथी हुई है। बर्तनों के निर्माण में सफाई मिलती है तथा उनको अच्छी तरह से पकाया गया है।

लाल और काले, लाल तथा काले लेप की पात्र परम्परायें मध्य गंगा घाटी एवं विन्ध्य क्षेत्र की

ताम्र पाषाण संस्कृति की चारित्रिक विशेषताएं मानी जाती हैं। मध्य गंगा घाटी के स्थलों से कभी-कभी भूरे रंग के पात्र भी प्राप्त होते हैं।

चित्रित पात्र खण्ड दोनो ही क्षेत्रों से प्राप्त हुए हैं। परन्तु विन्ध्य क्षेत्र के पुरास्थलो से प्राप्त ज्यादातर पात्र अनलंकृत हैं। काले और लाल पात्र परम्परा के बर्तनों के भीतरी सतह पर सफेद या क्रीम रंग से चित्रण किया गया है। जबकि मध्य गंगा घाटी के स्थलो से प्राप्त पात्रों के भीतरी और बाहरी दोनों सतहों पर रेखीय चित्र बनाये गये है। काले रंग के पात्रों पर लाल रंग से चित्रण अभिप्राय दोनो क्षेत्रो से मिलते हैं। विन्ध्य क्षेत्र के ताम्र पाषाणिक पात्रों के ऊपर किये गये चित्रण अभिप्रायों मे सामानान्तर रेखाएं, बिन्दु समूह तथा टेढ़ी-मेढ़ी रेखाएं मिलती हैं इस प्रकार चित्रण के प्रमाण कोलडिहवा तथा टोकवा से मिले है जबकि मध्य गंगा घाटी मे चित्रण अभिप्राय आसंजन विधि से उत्कीर्ण तथा रस्सी की छाप से भी बर्तनों को अलकृत किया जाता था। चित्रित काले लेप वाले पात्र चिरांद, सोनुवार, सोहगौरा, प्रहलादपुर, ताराडीह, गुलरिहवा घाट, पूरे देवजानी से प्राप्त हुए है। विन्ध्य क्षेत्र से इसी तरह के पात्र कोलडिहवा, ककोरिया, तथा टोकवा से प्राप्त हुए हैं।

सोहगौरा और ताराडीह जैसे स्थलो से बर्तनों के पक जाने के बाद उत्कीर्ण करके अलंकरण बनाने के प्रमाण प्राप्त हुए हैं। विन्ध्य क्षेत्र के ताम्र पाषाणिक पुरास्थलो से इस तरह के प्रमाण नही मिले हैं।

बर्तनों के आकार भी दोनो क्षेत्रों मे एक जैसे हैं। मध्य गंगा घाटी के उत्खनित स्थलों से प्राप्त बर्तन आकारो में गहरे, छिछले कटोरे, ओठयुक्त अथवा सादार कटोरे, ताश्तरियाँ, नांद, छोटे अथवा बड़े गले के घड़े, हांडी, लोटा, गिलास, हैंडिल युक्त कढ़ाई आदि प्रमुख है।

पात्रो के आकार मे विविधता के प्रमाण लाल पात्र परम्परा में भी प्राप्त होते हैं - कटोरे, आधार वाले कटोरे, थालियाँ, नांद, तीन पैर वाले तथा छिद्र युक्त कटोरे और नांद, ओठदार कटोरे और नाद, बड़े और मध्यम आकार के घड़े तथा साधारण तश्तरियाँ। चिरांद मे नव पाषाणिक संस्कृति की तरह इस संस्कृति में भी टोंटीदार बर्तन प्राप्त हुए हैं।

काले लेप वाले पात्र परम्परा में बर्तनो के अधिक आकार नहीं मिलते हैं। कटोरे और थालियाँ ही प्रायः इस परम्परा के बर्तन हैं। सम्भवतः इस पात्र परम्परा के बर्तनों का प्रयोग खाने-पीने के लिए ही किया जाता था। इसी पात्र परम्परा से परवर्ती काल मे उत्तरी कृष्ण ओपदार पात्र परम्परा का

विकास हुआ होगा। काले लेप वाले बर्तनों को भी सफेद या काले रंग से चित्रित किया गया है।

मध्य गंगा घाटी के ताम्र पाषाणिक पुरास्थलो से लाल रंग के पात्र खण्ड बड़ी सख्या मे मिलते हैं इन्हे कई उपवर्गों मे रखा जा सकता है। जहा कहीं इनके ऊपर चित्रण संजोये गये हैं, वहाँ पर लाल धरातल के ऊपर काले रंग के चित्रण मिलते है। नरहन से लाल रंग के कुछ ऐसे पात्र खण्ड मिले हैं जिन पर गैरिक रंग के चित्रण सजोये गये हैं।

मध्य गंगा घाटी की यह संस्कृति पूर्व में निम्न गंगा घाटी और दक्षिण में विन्ध्य क्षेत्र की ताम्र पाषाणिक संस्कृतियो से कई सन्दर्भों में जुड़ी हुई प्रतीत होती है। निचली गंगा घाटी की ताम्र पाषाणिक संस्कृति के दो उत्खनित स्थल पाण्डुराजारढ़िवि, महिषदल और भरतपुर हैं। पश्चिमी बंगाल के वर्दमान जिले में स्थित पाण्डुराजरढ़िवी के उत्खनन से हस्तनिर्मित भूरे या पीताभ, लाल काले और लाल, लाल और चमकीले लाल पात्र परम्परा के बर्तन प्राप्त हुए हैं। काले और सफेद से काले और लाल तथा लाल पात्र परम्परा के बर्तनों को चित्रित किया गया है।[1] महिषदल में इन परम्पराओं के बर्तनों को चित्रित किया गया है। बर्तन आकारों मे कटोरे, नाद, ओठदार या टोंटीदार कटोरे, साधारण तश्तरी और कटोरे, ढक्कन, थालियाँ, छिद्र युक्त बर्तन तथा लम्बे गले के बर्तन सम्मिलित थे।[2]

चमकीली लाल पात्र परम्परा के बर्तनों के मध्य गंगा घाटी में अनुपस्थिति के आधार पर मध्य गंगा घाटी और निम्न गगा घाटी की संस्कृतियो को अलग-अलग मानने की सम्मति प्रस्तुत की गयी है। लेकिन कुछ स्थानीय विभेदों को छोड़कर दोनो क्षेत्रों में एक ही संस्कृति का विस्तार मानना अधिक तर्कसंगत है।[3]

---

1 दास गुप्ता, पी० सी०, 1964, *इक्सकैवेशस एट पाण्डुराजारढ़िवि*

2 *इण्डियन आर्क्यिलॉजी : ए रिव्यू*, 63-64, पृष्ठ 59-60

3 मिश्र, वी० डी०, 1970, चल्कोलिथिक कल्चर्स ऑफ ईस्टर्न इण्डिया, *ईस्टर्न एन्थ्रोपोलाजिस्ट*

उपकरण :

विन्ध्य क्षेत्र एवं मध्य गंगा घाटी के ताम्र पाषाण युगो मे तांबे की अपेक्षा पत्थर और हड्डी के औजारो का अधिक महत्व था। ताम्र पाषाण काल में तांबा की इतनी कमी थी, तथा हड्डी और पत्थर की इतनी बहुतायत थी कि इसे अस्थि-पाषाण युग कहना अधिक समीचीन होगा। उपकरणों के निर्माण के लिए ताबा, हड्डी, हिरण की सीग, पत्थरो का प्रयोग दोनों क्षेत्रों में किया गया है। उल्लेखनीय है कि तांबे का प्रयोग अपेक्षाकृत कम हुआ है। क्योंकि तांबे को गलाने की भट्ठी के स्पष्ट प्रमाण कही से नही मिले हैं। इसलिए ऐसा कहा जा सकता है कि ये लोग तांबे के उपकरणों का निर्माण स्वयं करते थे अथवा ये उपकरण बाहर से लाये जाते थे। तांबे की वस्तुओ में वाणाग्र और शलाकाएं दोनो क्षेत्रो में प्रमुख हैं।[1] कोलडिहवा से एक तांबे का चाकू-पलक प्राप्त हुआ है।[2] मध्य गंगा घाटी के पुरास्थल ओरिअप से एक ताम्र चूड़ी का उल्लेख किया जा सकता है।

पुच्छल तथा छिद्रयुक्त वाणाग्र दोनो क्षेत्रो की संस्कृति के अभिन्न अंग थे। विन्ध्य क्षेत्र के ताम्र पाषाणिक पुरास्थल कोलडिहवा से वाणाग्र अधिक संख्या मे प्राप्त हुए हैं। मध्य गगा घाटी के ताम्र पाषाणिक पुरास्थलों से हड्डियों और मृगशृंगो पर बने वाणाग्र प्राप्त हुए हैं। अधिकतर वाणाग्रो का अनुभाग गोला है लेकिन कुछ तिकोने अनुभाग वाले वाणाग्र भी प्राप्त हुए हैं। बहुत से वाणाग्र निर्माण की विभिन्न अवस्थाओं मे प्राप्त हुए हैं। चम्पा[3], सेनुवार[4], मनेर[5], ताराडीह[6], खैराड़ीह[7] और नरहन[8] में हड्डियों की नोंक और वाणाग्र बहुत बड़ी संख्या में मिले हैं। जबकि विन्ध्य क्षेत्र के ताम्र पाषाणिक स्थलों से हड्डी के उपकरणों के प्रमाण कोलड़िहवा, टोकवा आदि से प्राप्त हुए हैं। ताम्र पाषाण काल में हड्डियों के उपकरणों का उपयोग ज्यादातर शिकार के लिए होता था।

लघु पाषाण उपकरणों में ब्लेड तथा 'दन्तुरकटक ब्लेड' भी सम्मिलित है। दोनों ही क्षेत्रों से प्राप्त

---

1 शर्मा, आर० एस०, 1998, *मध्य गंगा क्षेत्र मे राज्य की संरचना*, पृष्ठ 14-15

2 पाण्डेय, जे० एन०, 1995, *पुरातत्व विमर्श*, पृष्ठ 525

3. *इण्डियन आर्क्यिलॉजी : ए रिव्यू*, 1982-83, पृष्ठ 525

4 सिन्हा, बी० पी० और बी० एस० वर्मा, *सोनपुर एक्सकैवेशस*, पृष्ठ 18, 130

5 *इण्डियन आर्क्यिलॉजी : ए रिव्यू*, 1985-86, पृष्ठ 11

6 *इण्डियन आर्क्यिलॉजी : ए रिव्यू*, 1983-84, पृष्ठ 12

7. *इण्डियन आर्क्यिलॉजी · ए रिव्यू*, 1982-83, पृष्ठ 93

8 *इण्डियन आर्क्यिलॉजी : ए रिव्यू*, 1985-86, पृष्ठ 81

हुए है। विन्ध्य क्षेत्र के ककोरिया, मघा, से लघुपाषाण उपकरण बड़ी सख्या में प्राप्त हुए हैं जिससे यह सकेत मिला है कि तत्कालीन जीवन में इन उपकरणों की उपयोगिता बढ़ गई थी। मध्य गगा घाटी में पत्थर पिण्ड नहीं थे तथा इस क्षेत्र का ताम्रपाषाणिक मानव लघु पाषाण उपकरण तथा पत्थर के अन्य उपकरणो के लिए विन्ध्य क्षेत्र पर निर्भर था।

अन्य पुरा सामग्रियां :

अन्य पुरासामाग्रियों मे मिट्टी, हड्डी तथा उपरत्नों पर बने मनके दोनो क्षेत्रों से प्राप्त हुए हैं। गंगा घाटी के ताम्रपाषाणिक मानव मनके, लटकन, चूड़ियाँ, छल्ले, कुण्डल आदि आभूषणों का प्रचुर प्रयोग करता था। गंगा घाटी के स्थलों से चर्ट, चाल्सेडनी, कार्नेलियन, क्वार्टज और सीप एव ताबे के बने मनके भी प्राप्त हुए हैं। विन्ध्य क्षेत्र के कोलड़िहवा से माणिक्य के बने मनके मिले हैं। पत्थर के बने सिल-लोढ़ा दोनो क्षेत्रों से प्राप्त हुए हैं मध्य गंगा घाटी के पुरास्थलों से पत्थर के बने हथौड़े तथा हथगोले भी प्राप्त हुए हैं। यहां से प्राप्त मिट्टी के बने खिलौने तथा जानवरों की प्रतिमाएं उल्लेखनीय है।

कृषि :

ताम्र पाषाणिक मानव दोनों क्षेत्रों मे स्थायी रूप से रहना प्रारम्भ कर दिया था। दोनो क्षेत्रों के पुरास्थलों से प्राप्त अस्थी अवशेषों तथा वानस्पतिक अवशेषों के आधार पर कहा जा सकता है कि विन्ध्य क्षेत्र एवं मध्य गंगा घाटी के ताम्रपाषाणिक मानव कृषक और पशुपालक थे। पशुओं की जली, अधजली हड्डियों से पता चलता है कि मांस भी इनके भोजन का एक भाग था। चावल के प्रमाण दोनों क्षेत्रों से मिले हैं। मध्य गंगा घाटी के ताम्र पाषाणिक पुरास्थलो से चावल के अतिरिक्त जौ, तीन प्रकार के गेहूँ, मटर, मूंग, हरा चना, कुसिया, केराव, सरसो तथा तिलहन आदि सम्मिलित हैं। यहां से कटहल, अंगूर, तुलसी जैसी वनस्पतियों के प्रमाण प्राप्त हुए हैं। नरहन से धान, जौ, गेहूं, मटर, हरा चना, तिल आदि के प्रमाण प्राप्त हुए हैं। विन्ध्य क्षेत्र के पुरास्थल कोलडिहवा से चावल के प्रमाण मिले हैं।

खाद्यान्न इनकी अर्थव्यवस्था में अहम् भूमिका का निर्वहन करते थे। इसकी पुष्टि दोनो क्षेत्रों से प्राप्त सिल-लोढ़े से किया जा सकता है।

पशुपालन :

विन्ध्य क्षेत्र एवं मध्य घाटी के ताम्र पाषाणिक पुरास्थलों के उत्खनन से जानवरों की जली तथा अधजली हड्डियाँ प्राप्त हुई हैं। इन हड्डियो में गाय, बैल, भेड़, बकरी, सुअर, हिरण तथा जलचरों मे कछुआ, मछली और चिड़ियों की मुख्य है। इससे पता चलता है कि ताम्र पाषाणिक मानव पशुओ को पालते थे और वन्य पशुओं का शिकार भी करते थे। पशु पालन भी इन लोगों की अर्थ व्यवस्था का मुख्य साधन था।

कालक्रम :

दोनों प्रमाणों-पुरातात्विक एवं रेडियो कार्बन तिथि से पता चलता है कि ताम्र पाषाणिक संस्कृति का लम्बा इतिहास रहा है। ताम्र पाषाण कालीन संस्कृति के कालक्रम निर्धारण इसके सांस्कृतिक तत्वों जैसे मिट्टी के पात्र, लघु पाषाणिक ब्लेड एवं अस्थि उपकरण, ताम्र वस्तुओं, पुरातात्विक अवशेषों, अधिवास एवं जीविकोपार्जन, प्रतिरूपों आदि के अन्य क्षेत्रो जैसे ऊपरी एवं निचली गंगा घाटी एवं मध्य भारतीय क्षेत्रों में उपलब्ध तत्वो से तुलनात्मक अध्ययन, स्तरीकरण प्रमाणों एवं रेडियो कार्बन तिथियो आदि के आधार पर किया जा सकता है। ताम्र पाषाणिक संस्कृति के मृद्भाण्ड तथा ऊपरी एवं निचली गंगा घाटी एवं मध्य भारत (मालवा संस्कृति) की मृद्भाण्डों की विशेषताओं में काफी समानता है। इस क्षेत्र की ताम्र पाषाणिक संस्कृति के सम्पर्क से अनेक सांस्कृतिक विशेषताओ का आरम्भ हुआ जैसे विशेष प्रकार के मृद्भाण्ड - गोड़ेदार तस्तरी, गोड़ेदार तसले, लम्बी गर्दन वाले कलश जार इसी प्रकार अस्थि वस्तुए विशेष रूप से नोंक एवं बाण अतरंजीखेड़ा, बासखेड़ा, पाण्डु-राजरढिबी, में पाये गये हैं। मध्य भारत एवं निचली गंगा घाटी की ताम्र पाषाण संस्कृति मे लघु ब्लेड उद्योग से संबंधित लघुपाषाण उपकरण भी मौजूद हैं। सभी उपरोक्त ताम्र पाषाणिक संस्कृतियों में लेपदार टट्टर की झोपड़ियाँ भी समान रूप से पायी गयी है।

स्तरविन्यास के आधार पर अध्ययन क्षेत्र के कुछ स्थल सतत सांस्कृतिक अनुक्रम प्रस्तुत करते हैं, जिनमें ताम्र पाषाणिक संस्कृति, प्रारम्भिक नवपाषाण काल की उत्तरवर्ती अवस्था, मध्य गंगा घाटी की एन0 बी0 पी0 संस्कृति एवं विन्ध्य क्षेत्र की प्रारम्भिक लौह युग से आच्छादित मिलती है इस प्रकार समय के आधार पर नव पाषाणिक एवं एन0 बी0 पी0 एवं प्रारम्भिक लौह युग के मध्य इसकी मध्यवर्ती स्थिति है।

अध्ययन क्षेत्र के विविध स्थलों से प्राप्त रेडियो कार्बन तिथियाँ निम्न सारणी में सूचीबद्ध है।

तालिका 16

ताम्र पाषाण काल के विभिन्न स्थलों से प्राप्त रेडियो कार्बन तिथियां

स्थल	नमूना नं0	कार्बन तिथि सी-14	काल
सेनुवार		1770 ± 110 ई0 पू0 1500 ± 110 ई0 पू0 1660 ± 120 ई0 पू0 1440 ± 120 ई0 पू0	नवपाषाण काल ताम्र पाषाण काल
झुसी	पी0 आल0 एल0 2083 पी0 आर0 एल0 2081	1340 ± 90 ई0 पू0 830 ± 90 ई0 पू0	प्रथम ए काल (ताम्र पाषांण काल)
शृगबेरपुर	पी0 आर0 एल0 669	750 ± 134 ई0 पू0	द्वितीय काल (ताम्र पाषाण काल)
नरहन		1123 ± 110 ई0 पू0 1133 ± 110 ई0 पू0	प्रथम काल (ताम्र पाषाण काल)
खैराडीह	बी0 एम0 आई0 पी0 पी0 आर0 एल0 1049	1120 ± 90 ई0 पू0 1030 ± 160 ई0 पू0 940 140 ई0 पू0	प्रथम काल (ताम्र पाषाण काल)
चिराद	टी0 एफ0 445 टी0 एफ0 1030 टी0 एफ0 1028 टी0 एफ0 1029 टी0 एफ0 336 टी0 एफ0 444 टी0 एफ0 334	1655 ± 103 ई0 पू0 1585 ± 103 ई0 पू0 1540 ± 93 ई0 पू0 1050 ± 88 ई0 पू0 770 ± 98 ई0 पू0 715 ± 105 ई0 पू0 845 ± 125 ई0 पू0	द्वितीय काल (ताम्र पाषाण काल)
सोनपुर	टी0 एफ0 376	635 ± 103 ई0 पू0	प्रथम काल (ताम्र पाषाण काल)
सोहगौरा	पी0 आर0 एल0 178 पी0 आर0 एल0 179	1375 ± 103 ई0 पू0 1235 ± 134 ई0 पू0	द्वितीय काल (ताम्र पाषाण काल)

इस प्रकार प्रमाणों के आधार पर ताम्र पाषाण संस्कृति का समय 1800 ई0 पू0 एवं 700 ई0 पू0 के मध्य मे रखा जा सकता है। निष्कर्ष रूप में उत्तरी विन्ध्य क्षेत्र एवं मध्य गंगा घाटी की ताम्र पाषाणिक सस्कृति का अध्ययन अभी शैशवावस्था मे है।[1]

---

1 मिश्रा, वी0 डी0 और मिश्रा, बी0 वी0, चैल्कोलिथिक कल्चर्स ऑफ द नार्दन विन्ध्याज एण्ड दि मिडिल गंगा वैली : सम आब्जर्वेशन, मिश्रा, वी0 डी0 एण्ड पाल, जे0 एन0, 2000, *सोसल हिस्ट्री एण्ड सोसल थ्योरी*, पृष्ठ 14-22

अध्याय सात

◆ उपसंहार

उपसंहार

विन्ध्य क्षेत्र मे मानव संस्कृति का प्रारम्भ प्रातिनूतन काल में निम्न पुरा पाषाण काल से ही प्रारम्भ होती है, जो निरन्तर चलती रही और इस क्षेत्र मे सांस्कृतिक अनुक्रम पुरा पाषाण काल से लेकर ऐतिहासिक काल के प्रारम्भ तक प्राप्त होती है। मध्य गंगा घाटी मे मानव सस्कृति का प्रारम्भ उच्च पुरापाषाण काल के समाप्ति एवं मध्य पाषाण काल के प्रारम्भ के बीच मे आरम्भ होती है। गंगा मैदान, गगा और उसकी सहायक नदियो द्वारा एक उपजाऊ क्षेत्र का निर्माण किया और भारत की संस्कृति के निर्माण एवं विकास मे इस क्षेत्र का अद्वितीय योगदान रहा है।

विन्ध्य क्षेत्र में मानव का अस्तित्व प्रागैतिहासिक युग में पुरापाषाण काल से था, पुरा पाषाणिक मानव तत्कालीन जटिल परिस्थितियों पर निर्भर था, इसीलिए उसने वन्य पशुओ से सुरक्षा और उनके अखेट से अपनी क्षुब्धा शान्त करने के लिए विभिन्न प्रकार के पाषाण उपकरणों का निर्माण किया। पुरा पाषाण काल में मानव नदियों के किनारे अथवा जंगलों की तलहटियो में, किसी जलाशय के समीपस्थ रहना पसन्द करता था, क्योकि वहां पर उसे अपने औजार बनाने के लिए पर्याप्त (पत्थर) कच्चा माल मिल जाता था। और जंगली पशुओ के शिकार, प्राकृतिक कन्दमूल, फल, फूल आदि खाद्य पदार्थों के संग्रहण से अपना उदर पोषण करता था और साथ ही वहां पर उसे पीने के लिए पानी की सुविधा थी।

पुरा पाषाण काल का समय इतना लम्बा था कि पुराविदों ने पुरापाषाण काल को तीन भागों मे, निम्न पुरापाषाण काल, मध्य पुरापाषाण काल और उच्च पुरापाषाण काल मे विभाजित किया।

विन्ध्य क्षेत्र मे पुरातत्वविदों ने 1962-63 में सर्वेक्षण के द्वारा निम्न पुरापाषाणिक उपकरण एकत्रित किये। आवेवीलिया तथा प्रारम्भिक एश्यूलियन प्रकार के पेबुल, कोरों एवं फलकों पर बने उपकरण बेलन घाटी के निम्नवर्ती जमावों मे तथा विन्ध्य क्षेत्र की अनेक उपत्यकाओ के अनेक स्थलो से प्राप्त हुए हैं। बेलन घाटी से कुछ विशिष्ट प्रकार के उपकरण प्राप्त हुए हैं, जिनमें मूठ लगाने के स्पष्ट प्रमाण मिले हैं। बेलन घाटी मे निम्न पुरापाषाण कालीन स्तर या प्रथम गैवेल से बहुत अधिक संख्या में बॉस इक्वस तथा एलीफस के जीवाश्मित अवशेष प्राप्त हुए हैं। सोन घाटी के सिहावल जमाव से निम्न पुरापाषाण कालीन उपकरण प्राप्त हुए हैं।

निम्न पुरापाषाणिक संस्कृति की ही भाँति विन्ध्य क्षेत्र में मध्य पुरापाषाण काल के पुरास्थल प्रकाश मे आये हैं। बेलन घाटी एवं सोन घाटियों के प्रातिनूतन कालीन जलोढ़ जमाव से मध्य पुरापाषाण उपकरण प्राप्त हुए हैं। बेलन घाटी के द्वितीय ग्रैवेल जमाव से निम्न पुरापाषाण कालीन उपकरणों से मध्य पुरापाषाण कालीन उपकरणों के विकासात्मक क्रम दिखायी पड़ता है। सोन घाटी के पटपरा जमाव से भी इनकी पुष्टि होती है। इसके अतिरिक्त बटाऊबीर, खूटाबीर, मुडवा, नाउनकला से भी मध्य पुरापाषाणिक उपकरण प्राप्त हुए हैं। पटपरा के टुफा जमाव से काफी मात्रा में पत्ती के जीवाश्म मिले हैं। इस जमाव से मध्य पुरापाषाण कालीन उपकरण बहुतायत में मिले हैं।

मध्य पुरापाषाणिक संस्कृति की ही तरह उच्च पुरा पाषाणिक संस्कृति के अवशेष भी बेलन घाटी के अनेक पुरास्थलों से प्राप्त हुए हैं। बेलन घाटी के लोहंदा नाला से हड्डी की बनी मातृ देवी की प्रतिमा मिली है, जो कलात्मक एवं आस्था की अभिव्यक्ति का एक विशिष्ट प्रमाण है। सोनघाटी में बाघोर नामक स्थल पर हुए उत्खनन से उच्च पुरापाषाण काल के प्राचीनतम् पूजा स्थल के प्रमाण प्राप्त हुए हैं।

बेलन एवं सोन के तृतीय उच्चयन काल के स्तरित जमावों से हाथी, गाय, भैंस, नील गाय, घोड़ा, सुअर तथा हिरणों के काफी संख्या में जीवाश्मित अवशेष प्राप्त हुए हैं।

विन्ध्य क्षेत्र के पुरास्थलों से भी अनुपुरापाषाण काल के उपकरण भैंसोर ग्राम के निकट शिलाश्रयों के निम्न स्तरों से तथा देवघाट के निकट बूढ़ी बेलन के बायें किनारे पर चोपनी माण्डों के उत्खननों से भी मिले हैं। चोपनी माण्डों से दो गोलाकार झोपड़ियों के प्रमाण प्राप्त हुए हैं।

मध्य गंगा घाटी में प्रथम मानव संस्कृति के प्रमाण प्रातिनूतन काल के अन्त और नूतन काल के प्रारम्भ की अनुपुरापाषाण (एपीपैलियोलिथिक) संस्कृति से सम्बन्धित है, जो स्पष्टतः विन्ध्य क्षेत्र से आकर गंगा के मैदान को अपना उपनिवेश बनाने वाली प्रथम संस्कृति है। एक बार इन दोनो मैदानी और पठारी क्षेत्रों का जो पारस्परिक सांस्कृतिक सम्पर्क प्रारम्भ हुआ, वह निरन्तर बना रहा।

उच्च पुरापाषाण काल के बाद मध्य पाषाण काल में, विन्ध्य क्षेत्र मे बेलन की उपत्यका में तो मानव विकास की कहानी निरन्तर चलती रही, लेकिन इस काल में मानव दक्षिण के पहाड़ी और पठारी इलाकों के अतिरिक्त उत्तर की ओर गंगा मैदान तक आया। शायद इसका कारण प्रातिनूतन काल के अन्त मे जलवायु मे हुए परिवर्तन रहा हो। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रारम्भ में यह आगमन

अल्पकालिक और वस्तुनिष्ठ था। मानव मैदान में जाता था, वही उपकरण निर्माण करता और शिकार तथा संग्रह में प्रयोग करता और कुछ दिनो के बाद पुनः वापस चला जाता था। यही कारण है कि अनुपुरापाषाण काल के सभी स्थलो इलाहाबाद में अहिरी और कुढ़ा, वाराणसी में गढ़वा और प्रतापगढ़ मे सुलेमान पर्वतपुर, साल्हीपुर एवं मन्दाह पर दीर्घकालिक आवास के प्रमाण नहीं प्राप्त होते हैं। जैविक अवशेष भी ऐसे स्थलो से कम मिले हैं। इस सस्कृति के स्थलो को शिविर स्थल के अन्तर्गत रखा गया है, जो यायावर मानव के अल्पकालिक आवास क्षेत्र थे। विन्ध्य क्षेत्र के स्थल चोपनी माण्डो के उत्खनन से पता चलता है कि इस संस्कृति के लोग गोलाकार झोपड़ियां बनाते थे।

नूतन काल में उपयुक्त जलवायु का आर्विभाव हुआ। प्राकृतिक सम्पदा मे सम्पन्नता आई। तकनीकी विकास के कारण लघु पाषाण उपकरणों का धनुष-बाण के लिए प्रयोग और भोजन मे वन्य अन्न का प्रयोग सिल-लोढ़े में पीसकर खाद्यान्नों का भोजन में उपयोग आदि कारणो से मध्य पाषाण काल में मानव जीवन अपेक्षाकृत बेहतर हुआ।

विन्ध्य क्षेत्र के उत्खनित मध्य पाषाणिक स्थलों में मोरहना पहाड़, बघहीखोर, लेखहिया एवं चोपनी माण्डों प्रमुख हैं तथा मध्य गंगा घाटी के उत्खनित मध्य पाषाणिक पुरास्थलो मे सराय नाहर राय, महदहा, दमदमा प्रमुख हैं। इनमें से मोरहना पहाड़ बघहीखोर एवं लेखहिया मिर्जापुर जिले मे हनुमानगंज के निकट ग्रेट डेकन रोड पर उत्तर प्रदेश के अन्तिम ग्राम भैंसीर से 5 किलोमीटर पर अवस्थित है। इन पुरास्थलो का उत्खनन 1962-63 एवं 1963-64 मे किया गया। चोपनी माण्डों के उत्खनन से दो गोलाकार झोपड़ियों के फर्श के साक्ष्य मिले हैं जिनके औसत व्यास 3.80 मीटर है। फर्श पर घास-फूस के निशान से युक्त जली मिट्टी के टुकड़ों, पशुओं की हड्डियाँ, हाथगोले एवं निहाई इत्यादि मिले हैं। मोरहना पहाड़, लेखहिया, बघहीखोर आदि पुरास्थलो से सबसे निम्नवर्ती जमाव में अज्यामितिक प्रकार के उपकरण ब्लेड, भूथड़े ब्लेड, स्क्रेपर, वाणाग्र, छिद्रक एवं ब्यूरिन एवं उसके ऊपर ज्यामितिक प्रकार के उपकरण ब्लेड, खात युक्त स्क्रेपर, बोरर, ब्यूरिन, अर्द्धचान्द्रिक त्रिभुज एवं समलम्ब चतुर्भुज तथा उसके ऊपर लघु पाषाण उपकरणों से सम्बन्धित मृद्भाण्ड मिले है। बर्तनों का निर्मण बिना गुथी मिट्टी से हाथ द्वारा किया गया है। इन बर्तनों का आकार टेढ़ा-मेढ़ा और इनकी दीवारें कहीं मोटी और कहीं पतली हैं। ये पात्र अधिकांशतया सादे हैं, लेकिन कुछ के ऊपरी सतह पर कुछ विशिष्ट आकृतियों की छाप मिलती है।

गंगा के मैदान के प्राकृतिक सम्पन्नता के कारण इस क्षेत्र को मध्य पाषाणिक मानव ने बड़े पैमाने

पर आबाद किया, जिसके प्रमाण मध्य पाषाणिक स्थलो के रूप में मिलते हैं। ये स्थल यहां की प्राचीन धनुषाकार झीलों अथवा इन झीलो से निकलने वाली नदियो के तट पर स्थित हैं। उल्लेखनीय है कि आवासो के निर्माण के लिए मध्य पाषाणकाल से ही ऐसी भू-भागो का चयन किया गया जो कुछ ऊँचाई पर स्थित था जहां बाढ़ का पानी आसानी से नहीं पहुँचता था। मध्य गंगा घाटी के मध्य पाषाणिक मानव गोलाकार झोपड़ियों मे रहते थे। लेकिन इन झोपड़ियो का निर्माण किस प्रकार किया गया इसके बारे में जानकारी नहीं है। स्तम्भगर्त के प्रमाण सिर्फ सराय नाहर राय के सामुदायिक झोपड़ी के फर्श और चोपनी माण्डों के फर्शों से प्राप्त हुए है। ये फर्श कई पर्तों मे प्राप्त होती है। फर्श के भीतर तथा बाहर गोलाकार गर्त चूल्हे प्राप्त हुए हैं। विन्ध्य क्षेत्र से भी एक सामुदायिक चूल्हे का साक्ष्य मिला है।

विन्ध्य क्षेत्र की तरह मध्य गंगा की घाटी के मध्य पाषाणिक संस्कृति की अर्थ व्यवस्था भी शिकार एवं संचयन पर आधारित थी। सराय नाहर राय, महदहा एवं दमदमा से अनेक चूल्हों के साक्ष्य मिले हैं। भैंसे, दरियाई घोड़े, हिरण, बारहसिंघे, हाथी, सुअर आदि जंगली पशुओं का शिकार किया जाता था। ये लोग वन्य अनाजों को भी एकत्र करते थे। जिसके प्रमाण दमदमा एवं महदहा से प्राप्त सिल-लोढ़े से मिलता है।

लघु पाषाण उपकरणों में परिष्कृत ब्लेड, पृष्ठ ब्लेड, हसुवे, खुरचनी (स्क्रेपर) वाणाग्र, त्रिभुज और समलम्ब चतुर्भुज आदि मुख्य हैं। इन उपकरणो का प्रयोग शिकार करने एवं घास काटने में किया जाता था। महदहा एवं दमदमा से प्राप्त हड्डी के बने उपकरणों का प्रयोग भी इन्ही कार्यों मे होता था।

दोनों क्षेत्रों के कुछ मध्य पाषाणिक स्थलों से विस्तृत मानव शवाधान के प्रमाण प्राप्त हुए हैं जिससे मध्य पाषाणिक लोगों की सामाजिक संरचना के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होती है। मध्य पाषाणिक मानव अपने मृतकों को उसी क्षेत्र मे दफन करते थे, जिस क्षेत्र मे वे रहते थे, तथा दैनिक जीवन के विविध क्रिया-कलाप करते थे।

मध्य गंगा मैदान के दक्षिण मे विन्ध्य क्षेत्र से नव पाषाणिक सस्कृति के बहुत से स्थल प्रकाश मे आये हैं। और मध्य गंगा घाटी के पूर्वी भाग में (पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार मे) नव पाषाणिक संस्कृति के बहुत से स्थल प्रकाश मे आये हैं। कई स्थलों का उत्खनन भी हुआ है लेकिन यहां मध्य

पाषाणिक सस्कृति के प्रमाण नहीं प्राप्त होते। पुरातात्विक प्रमाण ऐसा संकेत देते हैं कि जिस प्रकार मध्य गंगा घाटी के पश्चिमी भाग की मध्य पाषाणिक संस्कृति को विन्ध्य क्षेत्र की मध्य पाषाणिक संस्कृति ने जन्म दिया, उसी प्रकार पूर्वी क्षेत्र की नव पाषाणिक संस्कृति को भी विन्ध्य क्षेत्र की नव पाषाणिक संस्कृति ने अंकुरित और पल्लवित किया। विन्ध्य क्षेत्र एवं मध्य गंगा घाटी की नव पाषाणिक संस्कृति के तुलनात्मक अध्ययन से इनके अन्तर्सम्बन्धो पर कुछ महत्वपूर्ण तथ्य प्राप्त होते है। विन्ध्य क्षेत्र का नव पाषाणिक मानव अपने आवासों का निर्माण गोलाकार एव अण्डाकार झोपड़ियों के रूप में करते थे। जिसका व्यास 6.40 से 4.30 मीटर था। नरकुल एवं बास के छाप से युक्त जली मिट्टी के टुकड़ों से स्पष्ट है कि झोपड़ियो की दीवारें गीली मिट्टी से दोनो ओर लीपा जाता था। जबकि गंगा मैदान में चिरांद से गोलाकार एवं अर्द्धगोलाकार झोपड़ियों के प्रमाण प्राप्त हुए है। जिनकी फर्श मिट्टी कूटकर बनाया गया था। महगड़ा के उत्खनन के आधार पर कहा जा सकता है कि एक घर मे दो या दो से अधिक झोपड़ियाँ थीं, जिनका अलग-अलग कार्यों के लिए प्रयोग होता था। कुछ का उपयोग आवास अथवा रसोई घर के रूप में और कुछ का उपकरण निर्माण के लिए अथवा कुटीर उद्योगों के लिए किया जाता था। झोपड़ियों के फर्श पर प्राप्त विभिन्न प्रकार की सामग्रियों के विश्लेषण से इस प्रकार के निष्कर्ष निकाले गये हैं कि परवर्ती काल मे कृषि द्वारा उत्पादित बहुत से अनाजों के प्रमाण नव पाषाणिक धरातल से मिले हैं और कई प्रकार के पालतू पशुओं की हड्डियां प्राप्त हुए हैं। सूजे, त्रिभुज एवं हड्डी के बाणों आदि की प्राप्ति से यह कहा जा सकता है कि अभी भी लोग वन्य जानवरों हिरण, बारहसिंघा, सुअर (विन्ध्य क्षेत्र मे) तथा हाथी, गैंडा, हिरण, बारहसिंघा (गंगा मैदान मे) आदि का शिकार करते थे और जंगलो से वनस्पतियो का सग्रह तथा जलाशयों का मछली इत्यादि के लिए प्रयोग किया जाता था। आत्मनिर्भर अर्थ-व्यवस्था के आर्विभाव के बावजूद पूर्ववर्ती अर्थ व्यवस्था के पूर्णतः परित्याग नहीं किया जा सकता था।

कुछ पात्र परम्पराएं विशेषतः रस्सी की छाप वाले और घोंटकर चमकाई गई पात्र परम्पराएं तथा कुछ अन्य पात्र प्रकार भी दोनो संस्कृतियों मे एक ही जैसे हैं। चिरांद में मिट्टी के बर्तनों को खरोंच कर अलंकृत किया गया है। विन्ध्य क्षेत्र एवं मध्य गंगा मैदान से लघुपाषाण उपकरण नव पाषाणिक, कुल्हाड़ियां तथा सिल-लोढ़े आदि प्राप्त हुए हैं। चिरांद से हड्डियों के उपकरण अधिक सख्या में मिले हैं। जबकि विन्ध्य क्षेत्र में इनका अभाव है।

नव पाषाणिक मानव आभूषणो को पसन्द करते थे। मनके, घोंघे के लटकन, चिरांद से प्राप्त

मनके एवं हड्डी की चूड़ियाँ, सोहगौरा से प्राप्त हड्डी के मनके आदि उनके कलात्मक पक्ष पर प्रकाश डालते हैं।

ताम्र पाषाणिक संस्कृति काल में अधिवास का स्वरूप नव पाषाणिक संस्कृति से अधिक भिन्न नहीं था। इस काल के लोग अपने घरो का निर्माण गोलाकार झोपड़ियो के रूप मे करते थे। कोलडिहवा और ककोरिया से मिट्टी के घर बनाने के साक्ष्य मिले हैं। ककोरिया के एक घर की फर्श पके मिट्टी के टुकड़ों एवं पात्रों के टुकड़ों से बनी थी। इस काल में तकनीकी विकास के लक्षण-चाक पर बने हुए बर्तनो अथवा तांबे पर बने हुए उपकरणों के रूप में देखे जा सकते हैं, लेकिन इनकी अर्थ-व्यवस्था मे कोई परिवर्तन नहीं दिखाई पड़ता। इमलीडीह और चिरांद जैसे स्थलो के उत्खनन से बहुत से चौड़े मुँह वाले चूल्हे प्राप्त हुए है।

चित्रित पात्र-परम्पराओं, बिन्दुओं से अलंकृत हड्डी के पुच्छल और वाणाग्र तथा मृण्मूर्तियां और मनके उनके कलात्मक पक्ष पर प्रकाश डालते हैं। यद्यपि चित्रित और सादी, ब्लैक एड रेड वेयर और ब्लैक स्लिप्ड वेयर पात्र परम्परा ताम्र पाषाणिक संस्कृति की विशेषता है।

गंगा घाटी के दक्षिण में स्थित विन्ध्य क्षेत्र, जो मानव सभ्यता के प्रारम्भिक विकास का साक्षी है, मानव के उद्भव एवं विकास की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। विन्ध्य क्षेत्र से आखेटक एवं संग्रहक लोगो के लिए उपयुक्त पर्यावरण के कारण आदिकाल से ही लगातार मानव संस्कृतिया विकसित होती रही हैं। मध्य गगा घाटी की भूमि की उर्वरता और जैविक परम्परा की सम्पन्नता के कारण ही यह क्षेत्र मध्य पाषाण काल से लेकर आधुनिक काल तक निरन्तर सांस्कृतिक विकास होता रहा। जैसा कि चिरांद के उत्खनन से प्रतीत होता है कि यहां के स्थलो पर बार-बार प्राकृतिक विपदा के प्रमाण मिलते हैं। लेकिन मनुष्य ने इन स्थलो का परित्याग नही किया, उसने हर आपदा के बाद नये सिरे से अपने आवासों का निर्माण प्रारम्भ किया। इस प्रकार यह प्रक्रिया सतत चलती रही।

सन्दर्भ सूची

अग्रवाल, के0 एम0 और एस0 एल0 गुप्ता, *भारत का भूगोल*, आगरा

अग्रवाल, डी0 पी0 — 1984 — दि *आर्कियोलॉजी ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली*

अग्रवाल, डी0 पी0 और शीला कुसुमगार — 1974 — *प्रीहिस्टारिक क्रोनोलॉजी एण्ड रेडियो कार्बन डेटिंग इन इण्डिया, नई दिल्ली*

अग्रवाल, डी0 पी0 — 1975 — *भारतीय पुरातिहासिक पुरातत्व*

अलुर, के0 आर0 — 1980 — फौउनल सिमेन्स फ्राम दि विन्ध्याज एण्ड दि गंगा वैली इन शर्मा (सम्पादित), *बिगनिंग ऑफ एग्रीकल्चर*, इलाहाबाद

कनेडी, के0 ए0 आर,
जे0 आर0, लूकस, एन0 सी0 लावेल,
सी0 बी0 बरो, जे0 एन0 पाल — 1992 — *मेसोलिथिक ह्यूमन रिमेन्स फ्राम महदहा* : ए गंगेटिक मेसोलिथिक साइट, कार्नेल विश्वविद्यालय

घोष, ए0 — 1973 — *दि सिटी इन अर्ली हिस्टारिक इण्डिया*, सेण्टर ऑफ एडवान्स स्टडी, शिमला

चतुर्वेदी, शैलनाथ — 1980 — अर्ली पाटरी फ्राम मोहगौरा, इलाहाबाद मे इण्डियन आर्कियोलॉजी सोसाइटी के सम्मेलन में पढ़ा गया शोधपत्र

1985 — एडवान्स आफ विन्ध्याज नियोलिथिक एण्ड चैल्कोलिथिक कल्चर्स टू दि हिमालय तराई · इक्सकैवेशन एण्ड अक्सप्लोरेशन इन दि सरयूपार रीजन ऑफ उत्तर प्रदेश, *मैन एण्ड इनवायरमेण्ट*, वैल्यूम 9, पृष्ठ 101-108

चाइल्ड, वी0 जी0 — 1958 — *दि प्रीहिस्ट्री ऑफ यूरोपियन सोसायटी* पेगुइनवुक्स।

चाइल्ड, वी0 गार्डन — 1942 — मैन मेक हिम सेल्फ से उद्धरित *सोसल इवोल्यूसन*, 1951 न्यूयार्क, पृष्ठ 24

जायसवाल, विदुला — 1989 — *भारतीय इतिहास का मध्य प्रस्तर युग*, वाराणसी

जैन, के० सी० — 1979 *प्रीहिस्ट्री एण्ड प्रोटोहिस्ट्री ऑफ इण्डिया,* नई दिल्ली

जोशी, आर० वी० — 1978 *स्टोन एज कल्चर ऑफ सेन्टर इण्डिया आन दि इक्सकैवेशन ऑफ रॉक सेल्टर एट आदमगढ़,* डेक्कन कालेज, पुणे

टामस, पी० के० पी० पी० जोगलेकर, वी० डी० मिश्रा, जे० एन० पाण्डेय, जे० एन० पाल — 1995 ए प्रीलिमिनरी रिपोर्ट ऑफ दि फौनल रिमेन्स फ्राम दमदमा *मैन एण्ड इन्वायरेमेण्ट* नं० 20-21, पृष्ठ 29-36

नारायन, एल० ए० — 1970 नियोलिथिक सेटिलमेन्ट एट चिराद, *जरनल ऑफ बिहार रिसर्च सोसायटी* वैल्यूम 56

नारायन, ए० के० और टी० एन० राय — 1977 *इक्सकैवेशन एट राजघाट,* पृष्ठ 223, 25

1968 *इक्सकैवेशन एट प्रलादपुर,* पृष्ठ 63

नारायन, एल० ए० — 1979 दि नियोलिथिक कल्चर्स ऑफ इस्टर्न इण्डिया, इन डी० पी० अग्रवाल और डी० चक्रवर्ती (सम्पादित) *ऐसे ऑन पोटो हिस्टोरिक इण्डिया,* नई दिल्ली

नेगी, जे० एस० — 1975 नहुष का टीला, *के० सी० चट्टोपाध्याय मेमोरियल वैल्यूम,* इलाहाबाद

पाल, जे० एन० — 1977 सेरेमिक इण्डस्ट्री ऑफ दि मेसोलिथिक पीरियड ऑफ दि विन्ध्याज इन वी० डी० मिश्रा, जे० एन० पाल (सम्पादित) *इण्डियन प्रीहिस्ट्री,* 1980

1986 *आर्कियोलॉजी ऑफ सार्दन उत्तर प्रदेश*

1977 नव पाषाणिक संस्कृतिया, डा० राधा कान्त वर्मा द्वारा लिखित *भारतीय प्रागैतिहासिक संस्कृतियां,* इलाहाबाद

1994 मेसोलिथिक सेटेलमेंट इन दि गगा प्लेन, *मैन एण्ड इन्वायरेमेन्ट,* नं० 17(2), पृष्ठ 91-101

	1984	इपीपैलियोलिथिकि साइट इन प्रतापगढ़, जनपद, उत्तर प्रदेश, *मैन एण्ड इन्वायरमेंट* नं0 8, पृष्ठ 31-38
	1985	आर्कियोलॉजी ऑफ सर्दन उत्तर प्रदेश, सेरेमिक इण्डस्ट्री ऑफ नार्दन विन्ध्याज
	1985	सम न्यूलाइट ऑन दि मेसोलिथिक ब्यूरियल प्रेक्टीसेज ऑफ दि गगा वैली, इवीडेस फ्राम महदहा, प्रतापगढ़, उ0 प्र0 *मैन एण्ड इन्वायरमेन्ट, वैल्यूम 9,* पृष्ठ 28-37।
पन्त, डी0 डी0 और आर0 पन्त	1980	प्रीलिमिनरी अब्सरवेशन, ऑन पोलेन फ्लोरा एट चोपनी माण्डो (विन्ध्याज) एण्ड महदहा (गंगा घाटी) इन जी0 आर0 शर्मा *बिगनिंग ऑफ एग्रीकल्चर,* इलाहाबाद
पन्त, पी0 सी0	1982	*प्रीहिस्टारिक उत्तर प्रदेश,* दिल्ली
पन्त, आर0 के0	1979	माइक्रोलिथिक स्टडीज ऑन बुर्जहोम नियोलिथिक टूल्स, *मैन एण्ड इन्वायरमेण्ट नं0 3,* पृष्ठ 90-101
	1979	फंकसनल स्टडीज ऑन स्टोन ब्लेड, माइक्रोवेयर पैटर्नस, *मैन एण्ड इन्वायरमेण्ट नं0 3,* पृष्ठ 83-85
पाण्डेय, जे0 एन0	1995	*पुरातत्व विमर्श*
बेन्डर, बारबरा	1975	फ्राम हन्टर गेदर टू फूड प्रोडूसर, जानवेदर लन्दन
बसल, एस0 सी0	1997	*भारत का भूगोल*
	2001	*भारत सरकार जनगणना*
भट्ट, एस0 के0	1970	आर्कियोलॉजिकल इक्सप्लोरेशन इन बस्ती डिस्ट्रिक्ट, *पुरातत्व नं0 3,* पृष्ठ 78-88
मेमोरिया, चतुर्भुज	2001	*भारत का वृहत् भूगोल*

मिश्रा, वी0 डी0 1977 *सम एसपेक्ट ऑफ इण्डियन आर्कियोलॉजी,* इलाहाबाद

मिश्रा वी0 डी0 2000 *मेगालिथिक कल्चर्स ऑफ इलाहाबाद डिस्ट्रिक्ट,* उत्तर प्रदेश

मिश्रा, वी0 डी0 1970 चैल्कोलिथिक कल्चर्स ऑफ ईस्टर्न इण्डिया, दि *ईस्टर्न एन्थ्रोपोलाजिस्ट*

मिश्रा, वी0 डी0 और जे0 एन0 पाल 2000 *सोशल हिस्ट्री एण्ड सोशल थ्योरी*

मिश्रा, बी0 बी0 2000 चैल्कोलिथिक कल्चर ऑफ नार्दन विन्ध्याज, एण्ड दि मिड गंगा वैली, पीपिंग थ्रो दि पास्ट, *प्रो0 जी0 आर0 शर्मा मेमोरियल वैल्यूम*

मिश्रा, वी0 डी0, बी0 बी0 मिश्रा, जे0 एन0 पाण्डेय और जे0 एन0 पाल 1995-96 ए : प्रिलिमिनरी रिपोर्ट ऑन इक्सकैवेशन एट झूंसी, 1995 *प्राग्धारा नं0 6*

मिश्रा, वी0 डी0, बी0 बी0 मिश्रा, जे0 एन0 पाल, एम0 सी0 गुप्ता 2000 इनसप्लोरेशन ऑफ टोकवा ए नियोलिथिक चैल्कोलिथिक सेटेलमेंट

मिश्रा, वी0 एन0 2002 मेसोलिथिक कल्चर इन इण्डिया : की नोट वी0 डी0 मिश्र और जे0 एन0 पाल द्वारा सम्पादित *मेसोलिथिक इण्डिया,* इलाहाबाद

मनी, बी0 आर0 1995-96 फरदर आर्कियोलॉजी, इंवेस्टीगेशन इन सरयूपार एरिया, *प्राग्धारा नं0 6,* पृष्ठ 153-156

मण्डल, डी0 1972 रेडियोकार्बन डेट्स एण्ड इण्डियन आर्कियोलॉजी, इलाहाबाद

1997 नियोलिथिक कल्चर्स ऑफ दि विन्ध्याज : इक्सकैवेशन एट महगड़ा इन दि बेलन वैली, वी0 डी0 मिश्रा और जे0 एन0 पाल सम्पादित *इण्डियन प्रीहिस्ट्री* 1980

मिश्रा, वी0 एन0 — 1973 बागोर ए लेट मेसोलिथिक सेटेलमेंट इन नाथरवेस्ट इण्डिया वर्ड आर्कियोलॉजी, वैल्यूम-5, पृष्ठ 92-110

मिश्रा, वी0 डी0 और जे0 एन0 पाल — 1980 *इण्डियन प्रीहिस्ट्री*, प्राचीन इतिहास, सस्कृति एव पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद

मिश्रा, वी0 डी0, बी0 पी0 मिश्रा, जे0 एन0 पाल, एम0 सी0 गुप्त — 2000 इक्सलोरेशन एट टोकवा . ए नियोलिथिक चैल्कोलिथिक सेटेलमेण्ट आन दि कान्फ्लुएन्स ऑफ बेलन एण्ड अदवा रिवर्स, इन एस0 सी0 भट्टाचार्या, वी0 डी0 मिश्रा, जे0 एन0 पाण्डेय, जे0 एन0 पाल (सम्पादित) पीपिंग थ्रो दि पास्ट *प्रो0 जी0 आर0 शर्मा मेमोरियल वैल्यूम*, पृष्ठ 45-57

लाल, बी0 बी0 और के0 एन0 दीक्षित — 1981 शृंगबेरपुर : ए की साइट फार दि प्रोटोहिस्ट्री एण्ड अर्ली हिस्ट्री ऑफ दि सेन्ट्रल गंगा वैली, *पुरातत्व नं0 19*, पृष्ठ 1-7

वर्मा, आर0 के0 — 1977 *भारतीय प्रागैतिहासिक संस्कृतियां*

1964 *स्टोन ऐज कल्चर ऑफ मिर्जापुर डिस्ट्रिक्ट, डी0 फिल0 शोध प्रबन्ध*, इलाहाबाद विश्वविद्यालय

1984 *दि मेसोलिथिक एज इन मिर्जापुर*

1984 मेसोलिथिक कल्चर ऑफ इण्डिया, *पुरातत्व नं0 13-14*

2001 *भारतीय प्रागितिहास*

वर्मा, आर0 के0 और डा0 नीरा वर्मा — 2000 *पुरातत्व अनुशीलन*

वर्मा, आर0 के0, वी0 डी0 मिश्रा, जे0 एन0 पाण्डेय एवं जे0 एन0 पाल — 1985 ए प्रीलिमिनरी रिपोर्ट ऑन इक्सकैवेशन एट दमदमा (1982-85) *मैन एण्ड इन्वायरमेन्ट वैल्यूम 9*, पृष्ठ 45-65

वर्मा, बी0 एन0 — 1969 ब्लैक एण्ड रेड वेयर इन बिहार पाटरीज, इन एंसिएण्ट इण्डिया बी0 पी0 सिन्हा द्वारा सम्पादित

शर्मा, जी0 आर0 — 1965 इक्सकैवेशन एट लेखहिया, इण्डियन प्रीहिस्ट्री, 1964

1973 स्टोन एज इन दि विन्ध्याज एण्ड दि गंगा वैली, *रेडियोकार्बन डेट्स एण्ड इण्डियन आर्कियोलॉजी* (सम्पादक) डी0 पी0 अग्रवाल

1973 मेसोलिथिक लेक कल्चर्स इन दि गगा वैली, *प्रोसिडिंग्स ऑफ दि प्रीहिस्टारिक सोसायटी वैल्यूम 31*

हिस्ट्री टू प्रीहिस्ट्री : आर्कियोलॉजी ऑफ दि गंगा वैली एण्ड विन्ध्याज, इलाहाबाद

1977 *इक्सकैवेशन एट चोपनी माण्डो*

शर्मा, जी0 आर0, वी0 डी0 मिश्रा, डी0 मण्डल, बी0 बी0 मिश्रा और जे0 एन0 पाल — 1980 *बिगनिंग्स ऑफ एग्रीकल्चर*, इलाहाबाद

शर्मा, जी0 आर0, वी0 डी0 मिश्रा और जे0 एन0 पाल — 1980 *इक्सकैवेशन एट महदहा, इलाहाबाद*

शर्मा, जी0 आर0 और जे0 डी0 क्लार्क — 2000 *पैलियो इन्वायरमेण्ट एण्ड प्रीहिस्ट्री इन दि मिडिल सोन वैली*, इलाहाबाद

सिंह, आर0 एल0 — 1971 *इण्डिया : ए रीजनल जाग्रफी वाराणसी*

1979 नियोलिथिक कल्चर ऑफ गंगेटिक वैली, *आर्कियोलॉजी एण्ड आर्ट ऑफ इण्डिया*, नई दिल्ली

संकालिया, एच0 डी0 — 1974 *प्रीहिस्ट्री एण्ड प्रोटोहिस्ट्री ऑफ इण्डिया एण्ड पाकिस्तान*, दक्कन कालेज, पुणे

सिंह, टी0 ए0 के0 सिंह और इन्द्रजीत सिंह — 91-92 ट्रायल डिगिग एट धुरियापार, *प्राग्धारा नं0 2* पृष्ठ 55-60

सिह, पी0, ए0 के0 सिंह — 97-98 *दि इक्सकैवेशन एट भूनाडीह, जनपद बलिया* (उ0 प्र0) *प्राग्धारा नं0 8* पृष्ठ 11-20

सिंह, पी0, ए0 के0 सिंह — 95-96 इक्सकैवेशन एट वैना, *प्राग्धारा न0 6* पृष्ठ 41-66

सिंह, पी0 — 1994 *इक्सकैवेशन एट नरहन*

92-93 इक्सकैवेशन एट इमलीडीह खुर्द *प्राग्धारा नं0 3*, पृष्ठ 21-35

सिंह, शीतला प्रसाद — 1996 *अदवा घाटी में पुरा पर्यावरण एवं प्रागैतिहासिक संस्कृतियां*

पत्रिका

इण्डियन आर्कियोलॉजी : ए रिव्यू

प्राग्धारा

पुरातत्व